परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला संख्या - ११३

श्रीभुवनदेवाचार्योक्ता सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशापरनामधेया

अपराजितपृच्छा

(बृहच्छिल्पस्थापत्यशास्त्रञ्च)

(संस्कृत मूल, 'मोहनबोधिनी' हिन्दी व्याख्या एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित)

प्रथम भाग

(सूत्र : १-१३८ तक)

M.Katyayana

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

प्रो. भँवर शर्मा

परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

प्रकाशक :
परिमल पब्लिकेशन्स
२७/२८ शक्ति नगर
दिल्ली - ११०००७
दूरभाष : २३८४५४५६, ४७०१५१६८
ई-मेल : order@parimalpublication.com

ISBN : 978-81-7110-386-7 (सेट)
978-81-7110-387-4 (भाग- १)

प्रथम संस्करण : वर्ष २०११

मूल्य - १८५०.०० रुपये (भाग १-२)

मुद्रक
विशाल कौशिक प्रिंटर्स
नजदीक जी.टी.बी. हॉस्पिटल,
जगतपुरी विस्तार, दिल्ली-११००९३

Parimal Sanskrit Series No. 113

Bhuvanadevācārya's Sūtrasantānaguṇakīrtiprakāśāparanāmadheyā

APARĀJITAPṚCCHĀ

(Treatise of Housing, Architecture, Mathematics, Iconography, Music and Dance etc.)

[Along with Sanskrit Text & 'Mohanabodhinī' Hindi commentary]

Vol. I

(Sūtra : 1-138)

M.Katyayana

Translated & Edited with scholarly notes
by
Dr. Shri Krishna 'Jugnu'
Prof. Bhanwar Sharma

PARIMAL PUBLICATIONS
DELHI

Published by
PARIMAL PUBLICATIONS
Office : 27/28, Shakti Nagar, Delhi-110007 (INDIA)
Retail Outlet : 22/3, Shakti Nagar, Delhi-110007 (INDIA)
ph. : +91-11-23845456, 47015168
e-mail : order@parimalpublication.com
url : http://www.parimalpublication.com

First Edition : Year 2011

ISBN : 978-81-7110-386-7 (Set)
978-81-7110-387-4 (Vol. I)

PRICE : Rs. 1850.00 (Set of 2 Vols.)

Printed at
Vishal Kaushik Printers
Near G.T.B. Hospital, Jagat Puri Vistar, Delhi-93

गृहग्रामनगरशोभा नाम चतुरशीतितमं सूत्रम् ॥ 84 ॥

प्रतोल्योपर्यु माडनिर्देशं। विश्वकर्मोवाच —

प्रतोलीपरतः सर्वे कार्या माडास्तथोत्तमाः।
देवताग्रेषु सर्वत्र बलाणकोपरि तथा॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि सभी प्रतोलियों के ऊपर (शोभा के प्रयोजन से) उत्तम माडों (मेडियों, कक्षों) की रचना होनी चाहिए और सभी देवमन्दिरों के द्वारों पर बलाणक बनाने चाहिए।

यतश्च भवनादग्रे माड उच्चैः प्रशोभते।
कर्णेषु च समस्तेषु माडान् कुर्यात्सभूमिकान्॥ 2 ॥

जहाँ-जहाँ भी भवनों के आगे की ओर ऊँचे माड अर्थात् कक्ष शोभायमान हो, वहाँ-वहाँ सभी कोनों पर भी समान भूमि के अर्थात् समान मंजिलों की ऊँचाई वाले माड-कमरे बनाने चाहिए।

राजद्वारे पञ्चभौमास्तुङ्गा माडाश्च शोभनाः।
चतुःकर्णेषु श्रीहट्टाश्चत्वरे हट्टतः परम्॥ 3 ॥

राजद्वारों पर पाँच मंजिले ऊँचे-ऊँचे माड-कमरे शोभायुक्त होते हैं। इसी तरह सभी व्यापारिक बाजारों के चौराहे पर भी चारों कोनों पर माड़ों या कमरों की शोभा होनी चाहिए।

श्रीधरश्च श्रीगृहाख्यो माडस्तुङ्गस्सुशोभनः।
दानाधिकरणं **यत्र** मण्डपाभिधमुच्यते॥ 4॥
कर्तव्यो माडउत्तुङ्गस्त्रिभूमिश्च **तथोत्तमः**।
घण्टाकलशशोभाढ्या **कर्तव्या शुभलक्षणा**॥ 5॥

यदि श्रीधर जाति के भवन हो तो उन पर श्रीगृह नामक उतुङ्ग माड की शोभा होती है। वहीं दानाधिकरण मण्डप अर्थात् दाणी चबूतरों का मण्डप बाजार के चौहाहे पर हो। उस पर तीन मंजिला उत्तम माड़-कमरों से युक्त मकान बनाना कर्तव्य होना चाहिए जिस पर घण्टा-गुम्बज और उस गुम्बज के ऊपर कलश की शोभा के शुभ लक्षण बनाने चाहिए।

श्रीहट्टेषु समस्तेषु द्वितीयभूमिकोपरि।
कार्या काष्ठचतुष्की **तु मालाख्या** छाद्यभूषिता॥ 6॥
पट्टादिकं तु राज्ञीनां राजगेहस्य **मध्यतः**।
पञ्चभौमं पटराज्ञ्याः शेषाणां तु त्रिभूमिकम्॥ 7॥

इसी प्रकार सभी बड़े-बड़े बाजारों की दूसरी मंजिलों के ऊपर लकड़ी से बनी चौकियाँ सुन्दर छतों के साथ बनाई जाए। इन्हें माला नाम दिया गया है।[1] ऐसे ही राजभवन-राजमहल के मध्य में पटरानियों के भवनों पर पांच मंजिले तथा अन्य रानियों के भवनों पर तीन मंजिले माड हो।

माडाकृतिस्तु **कर्तव्या** पङ्क्त्यनुक्रमशोभिता।
गृहाणां पिण्डवास्यादि **यद्भवेद् वामदक्षिणम्**॥ 8॥
कुर्यादुपयकभूमेस्तथा **काष्ठचतुष्किकाः**।
सर्वकामप्रदाः **कार्याः** कलशाश्छाद्यकोपरि॥ 9॥

वे माड़-कमरे सब एक ही पङ्क्तियुक्त बनाए हुए शोभायमान होते हैं। उनके बायें-दायें जो पिण्डवास्यादि गृह अर्थात् रानियों के भवनों के उभय पार्श्व में जो गोलाकार बुर्ज के बने भवन होते हैं उनके ऊपर की ओर एक मंजिला लकड़ी की बनी हुई चौकी हो जिस पर सुन्दर छत और कलशों की शोभा बनानी चाहिए जो

---

1. जैसे मुम्बई आदि नगरों में लकड़ी से बने कई मंजिले भवन आज भी 'माला' नाम से जाने जाते हैं- यथा पहला माला, दूसरा माला, ऊपर का माला आदि।

सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है।

गजशाला शोभाङ्गं —

गजशालाः समाश्छाद्यघण्टाकलशसम्युताः।
उन्नताः पञ्चकलशैः पट्टहस्ताधिकोद्भवाः ?॥ 10॥

इसी तरह गजशाला को भी सुन्दर छत घण्टा-गुम्बज और कलशों से शोभित बनाना चाहिए जो पाँच ऊँचे-ऊँचे कलशों से पट्ट अर्थात छत से एक गज ऊँचे उठे हुए हों (आशय यह लगता है कि गजशाला के बीच में घूमट या गुम्बज पर एक कलश और उसके चारों कोनों पर छत से एक गज ऊँचे तक चार कलश— इस तरह कुल पाँच कलशों की शोभा होनी चाहिए)।

राजाधिकरणमाह —

सर्व श्रीकरणाद्यं च राजाधिकरणं तथा।
व्ययाधिकरणं चैव धर्माधिकरणं तथा॥ 11॥
द्विभूमिकाः समस्ताश्च ऊर्ध्वे छाद्यचतुष्किका।
घण्टाकलशशोभाढ्याः कर्तव्या लक्षणान्विताः॥ 12॥

अब समस्त राज्य अधिकरणों अर्थात् कार्यालय भवन के बारे में बताते हैं। श्रीकरण अर्थात् राजा के निवास से आरम्भ करते हुए, राजाधिकरण (राजसभा), व्ययाधिकरण (खजाना, हिसाब दफ्तर या कोष कार्यालय), धर्माधिकरण (न्यायालय) आदि सभी को दो मंजिला बनाने चाहिए और इनके ऊपर चौकोर छत पर गुम्बज बनाए जिन पर कलश बड़े ही शोभायुक्त लक्षणों वाले हों।

मालमौलिशुद्धशृङ्गं चतुःप्राकारसम्भवम्।
सप्तभौमं नवभौमं कर्तव्यं राजमन्दिरम्॥ 13॥

राजमहलों को चारों ओर परकोटे युक्त तथा शुद्ध शृङ्गों की कतार में एक माला रूप में, सात मंजिले, नौ मंजिले तक करना चाहिए।

श्रीराजपुरमध्ये तु श्रीमाडा उत्तमाच्छ्रिताः।
कलशैर्दिव्यशोभाढ्याः कर्तव्याः सर्वकामदाः॥ 14॥

साथ ही श्रीराजपुर मध्ये तु—अर्थात् राजा के श्रीराजपुर या राजधानी के मध्य में भी उत्तम ऊँचाई युक्त श्रीमाड–नामक कमरों का महल बनाना चाहिए जिस पर दिव्य चमकदार, शोभाकारक कलशावली हो जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली है।

कुर्याद्धर्म्यादिगेहानां पट्टच्छन्दं जनाकुले।
एकभौमा द्विभौमाश्च वरण्ड्य मालबन्धने॥ 15॥

नागरिकों के हर्म्य अर्थात धनवानों, ठाकुरों आदि बड़े लोगों की हवेलियों को भी जनाकुल या भीड़ भरे मोहल्लों में अच्छे पट्टछन्दों अर्थात् सुन्दर छतों से युक्त और एक मंजिली या दो मंजिली बनानी चाहिए। उनकी छतें (वलण्डी) एक-दो मंजिल बनानी चाहिए। उनके चारों ओर बरामदा की माला एक कतार में बनी हुई हों।

शेषाः सङ्कीर्णजातानां छाद्याः कपिलिकाः क्रमात्।
तस्य सङ्कीर्णास्तु येषां तृणच्छाद्यादिसम्भवाः॥ 16॥

इनके अलावा जनता के अन्य शेष सामान्य सङ्कीर्ण जाति के लोगों के मकानों को क्रम से खपरेल की छत युक्त ही बनाना चाहिए अर्थात् सामान्य जनों के घरों की छत डांडा-केवलु की ही हो। उनके घरों की पक्की छत या चाँदनी आदि न बनाएँ और इनसे भी सङ्कीर्ण अर्थात् गरीब श्रेणी के जो लोग हो उनके झोंपड़ों की रचना घास-पूस से हो और छत भी उनकी घास-पूस की ही हो।

तस्योपयोगीवृक्षादीनां —

सालतालब्रह्मवृक्षैः शाकाद्यैश्च दलाद्रिकैः।
शुष्कैरनार्द्रैः ख्याताश्छाद्यास्तु वै गृहोत्तमाः॥ 17॥

गृहों, भवनों की छत बनाने के काम में आने वाले पेड़ों में साल, ताल-ताड़, ब्रह्मवृक्ष (ढाक, पलाश), गूलर, अद्रि पहाड़ के वृक्ष, सूखे हुए न कि गीले— वे छवाई के लिए उत्तम गृहों का निर्माण कराते हैं।

तृणाच्छादनकार्यमाह —

प्रावृषे भवेद् छिन्नानि गूढांस्तु पुरस्तारकाग्र?।
प्राकारस्य गुप्तिघटैरर्ध(ग्र) निर्गमतस्तथा॥ 18॥
अधश्चाग्रं घनमूर्ध्वे संच्छन्नाः क्रमयोगतः।
तदूर्ध्वं तु तृणैश्चाद्यं सपत्रैस्त्राणकारणम्॥ 19॥

वर्षाकाल के पूर्व ग्रीष्म में भिन्न ढके घरों के छाद्य के अग्रभाग छिन्न-भिन्न हो जाए या फट जाए, उनमें तारक-जाल से दिखाई दें और प्राकार अर्थात् परकोटा भींत आदि की सुरक्षा हेतु घड़े गए (घटैरग्र), चुनाई किए गए पत्थर भी निकल गए हों तब नीचे के अग्रभाग से घनमूर्ध्वे अर्थात् छाद्य के शहतीर-बलेवण की ऊँचाई तक क्रमयोग से संछन्न करते या ढँकते जाएँ। उनके ऊपर आरम्भ में तृण-घास से और बाद में उसके ऊपर पेड़ के पत्तों से त्राणकारण अर्थात् सुरक्षा का उपाय करें।

दोराकारैर्नालबन्धैर्विविधैश्च यथाक्रमम्।
केवलर्दर्भकैश्छन्ना केचिच्च वीरणैस्तथा॥ 20॥

इसी प्रकार तृण और पत्तों को काट-छाँट कर डोरी से बाँधते हुए तरह-तरह के बन्धनों से क्रमवार कुछ को तो केवल दाभ के गुच्छों से और कुछ को वीरण अर्थात् खस की घास से बने गुच्छों से छादन करें यानी ढँकते जाएँ।

एवं समस्तं संच्छन्नं पुरग्रामगृहादिकम्।
ग्रीष्मकालाभ्यन्तरेषु वृष्टिकाले न वै घने॥ 21॥

इस प्रकार से पुर और ग्राम के सभी गृहों की ग्रीष्मकाल के अभ्यन्तर अर्थात् बीच में ही अच्छी छवाई कर लेनी चाहिए ताकि वर्षाकाल में घने बादलों के बीच फिर यह छवाई नहीं करनी पड़े।

आरोहणं च निश्रेणीकार्यमाह —

अन्यभूम्यारोहणाय कार्यास्सोपानपङ्क्तयः।
सदृशायामनिश्रेणिः सारदारुमयी तथा॥ 22॥
विस्तीर्णैः फलकैः पट्टै सोपानसदृशैस्तथा।
सोपानानुक्रमैः स्थाप्यं गृहारोहणमुत्तमम्॥ 23॥
पादोन्नतं शिरोभागे द्विहस्तानां₂ तु विस्तरे।
वंशं चोभयतः कुर्यात्कराधारं तु रोहणे॥ 24॥

अन्य भूमि अर्थात् अन्य मंजिलों पर चढ़ने के लिए सोपानपङ्क्ति यानी सीढ़ियाँ बनानी चाहिए। उसी के आयाम के अनुसार निश्रेणी (निसरनी, निसैनी) भी बनाई जा सकती है जो सारदारु अर्थात् मजबूत लकड़ी की बनी हो। उसके पट्टे सोपान सदृश अर्थात् सीढ़ियों के समान ही फलकाकार-चौड़े हों, ऐसे स्थाप्य या लगाए जाएँ जो कि गृह पर आरोहण के लिए उत्तम हो। निश्रेणी शिरोभाग की ओर जाने में पादोन्नत— एक-एक पाँव की ऊँचाई जितनी और दो गज की चौड़ाई वाले पट्टों से बनाए जिनके दोनों ओर बांस का दृढ़ आधार ऊपर चढ़ने में सहारे के लिए बनाए अर्थात् बांस का रोस (रेलिंग) सहारे के लिए बनाए, जिससे ऊपर आरोहण करते समय सुरक्षा बनी रहे।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
गृहग्रामनगरशोभाधिकारो नाम चतुशीतितमं सूत्रम्॥ 84॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गृह-ग्राम-नगर शोभा अधिकार नामक चौरासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 84॥

गृहग्रामनगरशोभावर्णनं[1] नाम पञ्चाशीतितमं सूत्रम् ॥ 85 ॥

विश्वकर्मोवाच —

राजपुरे च नगरे ग्रामे खेटे तु [2]सुव्रत।
पुराणां बाह्यतः कुर्यात् स्वस्था वै नगरोत्तमाः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि राजधानी और नगर में, ग्राम, खेटे अर्थात् खेड़ा में धार्मिक सुव्रत स्थान बनाने चाहिए। पुरों के बाहर भी वैसे ही स्वस्थ नगरोत्तम धार्मिक स्थानों का निवेशन करना चाहिए।

राजलिङ्गोद्भवां पूजां स्वयम्भूधर्मसोच्यते ?।
पुरबाह्यतो ये देवा महारम्यांस्तुकारयेत् ॥ 2 ॥

राजलिङ्ग से होने वाली पूजा को स्वयंभू-धर्म नाम से जाना जाता है। अतः पुर के बाहर की ओर जो भी देवमन्दिरादि बनाएँ, वे बहुत रमणीक, सुन्दर बनाने चाहिए।

प्रतापतेजोभवं च स्वर्गे वा भूमिशासने।
देवाभिधानतः कुर्यात् पूज्यं सुरनरोरगैः ॥ 3 ॥

ऐसे देवाभिधान, देवता के मन्दिर प्रताप और तेज को बढ़ाने वाले तथा भूमि और शासन के लिए स्वर्ग तुल्य माने जाते हैं।[3] अस्तु, उन्हें सुर, नर और नागों के लिए पूजार्थ बनाने चाहिए।

देवालाश्रित पुरनिवेशनं —

अष्ट$_{8}$द्व्यष्ट$_{16}$द्वात्रिंशद्भिः$_{32}$ पुरैश्च परिवेष्टितम्।
अष्टाविंशति$_{28}$श्चतुर्विंशति$_{24}$र्विंशत्याथ$_{20}$ द्वादश$_{12}$ ॥ 4 ॥

ऐसे देवस्थानों को चारों ओर से घेरे हुए आठ, सोलह, बत्तीस अथवा

---

1. पूर्व सूत्र भी इसी नाम का होने से यहाँ 'वर्णनं' शब्द को जोड़ा गया है।
2. यहाँ सुव्रत सम्बोधन भी हो सकता है किन्तु पूर्वकाल में सुव्रत के साथ-साथ सदाव्रत नामक स्थान भी होते थे जहाँ पर निराहारों, असहायों को भोजन की नियमित व्यवस्था रहती थी। स्वामी रामानन्दाचार्य के शिष्य सन्त पीपाजी महाराज (वि. सं. 1380) द्वारा गुजरात के पीपावाव बन्दरगाह पर सदाव्रत स्थान की स्थापना का वर्णन भक्तमाल की प्रियादास कृत टीका और अनन्तदास कृत 'पीपाजी की परिचयी' में आया है।
3. यहाँ यह अर्थ भी कल्पित होता है कि देव मन्दिरों के साथ भूमिदान करने से प्रताप, तेज मिलता या स्वर्ग की सिद्धि भी होती है। स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्ड में 34वें अध्याय के 5वें श्लोक 'शासनं तत्र रामस्य राघवस्य च नामतः। शृणु ताम्राश्रयं तत्र लिखितं धर्मशास्त्रतः' में इसी अर्थ की फलश्रुति देखने में आती है।

अठाईस, चौबीस, बीस या बारह पुरों (मोहल्लों) को बसाना चाहिए जो इस केन्द्रीय देवस्थान की पूजा का लाभ उठा सके।

षोडशपुर$_{16}$सम्युक्तं ज्येष्ठं तन्नगरं भवेत्।
मध्यमं द्वादशपुरैः$_{12}$ कनिष्ठं दशभिः$_{10}$ पुरैः ॥ 5 ॥

जिस नगर के भीतर सोलह पुर (सम्भवतया मोहल्ले जैसे कि तेलीपुरा, गुर्जरपुरा, मालीपुरा, ब्रह्मपुरी आदि) हो वह ज्येष्ठ, जिसमें बारह पुर हो वह मध्यम और जिसमें दस पुर हो वह कनिष्ठ नगर होता है।

संस्थानेषु तत्र तत्र रम्यं कुर्यात्पुरं तथा।
शिवाश्रमं महारम्यं वाटिकापरिवेष्टितम् ॥ 6 ॥

जहाँ-जहाँ देवमन्दिर स्थित हों, वहाँ के आस-पास के पुरों को यानी आवासीय मोहल्लों को रम्य या साफ-सुथरे, सुन्दर और आकर्षक बनाने चाहिए। वहाँ महारम्य शिवालय या शिवाश्रम बनाएँ जिसके चारों ओर वाटिकाएँ बनाई गईं हों।[1]

तत्र मठनिवेशनं —

यः कारयेन्महारम्यं मठस्थानं तु दक्षिणे।
त्रिभौमं पञ्चभौमं वा मध्ये वेदिसमन्वितम् ॥ 7 ॥

इनको और भी सुन्दर, महारम्य बनाने चाहिए। इनके दक्षिण की ओर के भूभाग में साधुओं, ब्रह्मचारियों, विद्यार्थियों के आवास हेतु मठ बनाने चाहिए।[2] ये

---

1. मेवाड़ के एकलिङ्गजी महातीर्थ में शिवाश्रम के आस-पास पार्वती विलास, शिवाश्रम जैसी निर्मितियाँ रही हैं। एकलिङ्ग माहात्म्य (रचना लगभग 1462 ई.) में धारेश्वर, नागह्रदादि तीर्थ स्थितियों का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार नगरी (चित्तौड़गढ़) में ईसापूर्व ही विष्णु प्रासादों के साथ वाटिकाओं का निर्माण होने लगा था। वहाँ से प्राप्त ब्राह्मी अभिलेख में सङ्कर्षण-वासुदेव के पूजागृह के चतुर्दिक प्राकार और नारायण वाटिका का वर्णन मिलता है। (प्रो. आर. डी. भाण्डारकर : वैष्णव, शैव और अन्य सम्प्रदाय में उल्लिखित) इस प्रकार वराहपुराण एवं सात्त्वतसंहिता में भी उल्लिखित है।
वराहमिहिर ने देवालयों के निमित्त निम्न स्थानगत अर्हताएँ स्वीकृत की हैं— सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च। स्थानेष्वेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः॥ सरःसु नलिनीच्छत्रनिरस्तरविरश्मिषु। हंसांसाक्षिप्तकह्लारवीथीविमल वारिषु॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु। पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु॥ (बृहत्संहिता 56, 3-5) अर्थात्— निर्मित अथवा प्राकृत जल एवं उद्यान से युक्त स्थानों में देवता सान्निध्य प्रदान करते हैं। कमलों के छत्र से जहाँ सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर पाती जिनमें हंसों के कन्धों से प्रेरित श्वेत कमलों से निर्मित मार्ग से युक्त विमलवारि हो, जिनमें हंस, बतखें, क्रौञ्च, चक्रवाक पक्षियों का कलरव होता हो, जिसके तट पर वृक्ष की छाया में जलचर विश्राम करते हों, देवतागण ऐसे सरोवराश्रित होते हैं।
2. मेवाड़ में एकलिङ्गजी मन्दिर में इसी प्रकार से निर्मित लाकुलीश सम्प्रदाय का मन्दिर और उससे लगा मठ रहा है। शंकराचार्य से मठों की जो परंपरा चली, वह बहुत लोकप्रिय हुई और उनकी दशनामी

मठ तीन मंजिले, पाँच मंजिलों तक बनाए जाए, उनमें वेदी या प्रधानपीठ बनाई जाएँ।

कारयेत् कपिलीगर्भे गर्भसूत्रेण **मण्डपम्।**
जगत्या अग्रकर्णेषु **समसूत्रे तथोच्यते॥ 8॥**

इसी प्रकार उनके मण्डप में गर्भसूत्र से कपिलीगर्भ बनाए जो जगती पीठ के आगे के कोने से समसूत्र या जैसे उचित हो, वैसे ही रखना चाहिए।

जगतीक्षेत्रमानेन मठस्यान्तरमादिशेत्।
तदर्धं तु प्रकर्तव्यं पादोनांशमथापिवा॥ 9॥

इस मठ के जगतीमान क्षेत्र के अनुसार ही अन्य मठों के अन्तर को रखें। इन मठों की जगती-पीठ पहले मठ की जगती से आधी की जा सकती है और उससे चतुर्थांश कम भी की जा सकती है।

दिशानुसारेण मठस्य फलाफलम् —

दक्षिणायामथाग्नेय्यां **मठं वै** सर्वकामदम्।
नैर्ऋत्ये चैव वायव्ये शोकसन्तापकारकम्॥ 10॥

ये मठ दक्षिणतः आयाम और आग्नेय आयाम में बनने पर सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले और शुभ होते हैं परन्तु नैर्ऋत्य और वायव्य कोण की ओर बनने वाले मठ शोक, सन्तापकारक व अशुभ होते हैं।

वारुणे चोत्तरे प्रोक्तं मोक्षदं मोक्षकारकम्।
ईशान्यां पूर्वतश्चैव पूजितं दानपुण्यतः॥ 11॥

इसी प्रकार पश्चिम और उत्तर में बनने वाले मठों को मोक्षदायक, मोक्षकारक कहा जाता है, ये सब आपत्तियों से मुक्त रखते हैं। ऐसे ही ईशान कोण में बनने वाले मठ भी शुभ होते है और पूर्व में बनने वाले भी प्रशस्त होते हैं। अस्तु, इन्हें दान-पुण्य से पूजित किया जाता है।

जगत्युच्छ्रयत **ऊर्ध्वं** मठभूम्यादिकोच्छ्रये।
मठं स्थाप्यं तदुपरि प्रशस्तं लक्षणान्वितम्॥ 12॥
सुवेदीसहितं कुर्यात्तदूर्ध्वे भूमिकाक्रमम्।
गूढं पञ्चापवरकैर्मैत्रस्थाने **समाश्रितम्॥ 13॥**

परम्परा के अनेकानेक शिष्यों ने इस प्रकार से गाँव-गाँव लघु मठ-शिवाश्रमों का प्रवर्तन किया था। शंकरदिग्विजय और एकलिंग माहात्म्य में शंकराचार्य की शिष्य परम्परा सहित मठों की परंपरा का वर्णन मिलता है।

इनमें जगती-पीठ की ऊँचाई से ऊपर मठ की मंजिलों की ऊँचाई रखते हुए उनके ऊपर भी प्रशस्त लक्षण से युक्त मठों की स्थापना करनी चाहिए, जो सुवेदिकाओं से युक्त हों और उनमें गूढ़मण्डप, पाँच अपवरक या बरण्डे हों एवं वे मैत्रस्थान से समाश्रित होने चाहिए।

इष्टध्यानालयं **कुर्यात्** प्रलीनास्तपशासने।
एवं युक्त्या विधातव्यं द्वारसोपानसञ्चयम्॥ 14॥
धूमनिर्गमसंयुक्तं दिश्याग्नेय्यां महानसम्।

यहीं पर अपने इष्टदेव के ध्यान करने के लिए ध्यानालय बनाना चाहिए जहाँ साधकगण तप के शासन-नियम में रहकर ध्यान में प्रलीन रहे लगे रहें। इन मठों के लिए बड़े युक्ति क्रम से समझ-बूझकर द्वार और सोपानों की संरचना करें। इन मठों के लिए बड़ा रसोईघर आग्नेय दिशा में बनाना चाहिए। इनमें अच्छे धूमनिर्गम अर्थात् धुआँकश भी बनाएँ।

सत्रमण्डपादीनां —

पुरतोऽग्रे तु संस्थाने कर्तव्यं सत्रमण्डपम्॥ 15॥

इस तरह मठ सङ्कुल के निर्माण के बाद पुर अर्थात् नगर के आगे के विस्तारयुक्त भाग में सत्र मण्डप संस्थान (यज्ञशाला) का निवेशन करें।

संस्थानं पत्रसमिधामायुधानां तु नैर्ऋते।
वापीकूपतडागं **च वारुणे चोदकाश्रयम्**॥ 16॥
कोष्ठागारं तु वायव्ये भाण्डागारं तथोत्तरे।
पुष्पागारं **तथेशाने कर्तव्यं पट्टसंयुतम्**॥ 17॥

वहाँ नैर्ऋत्य कोण में पत्र, समिधा और आयुधों के संग्रह का स्थान बनाया जाए तथा पश्चिम दिशा में वापी, कूप, तड़ाग, जलसंग्रह के लिए जलाशय बनाएँ। वायव्य कोण में कोठार बनाएँ और उत्तर दिशा में भाण्डों, बर्तनों के रखने के भाण्डागार अर्थात् भण्डार बनाएँ। ईशान कोण में पुष्पागार अर्थात् फूलघर बनाए जहाँ पाटले-चौकियाँ आदि भी होनी चाहिए।

कुर्यान्मठस्योपरि च विद्याव्याख्यानमण्डपम्।
वलभीकारमध्ये **तु सगवाक्षं सदोगृहम्**॥ 18॥

मठ के ऊपरी भाग में विद्या व्याख्यान मण्डप बनाना चाहिए अर्थात् छात्रों को पढ़ाने के कक्ष, कमरे आदि बनाए जो मध्य में वलभीकार हो अर्थात् उन पर ढलवा छत बनी हो और झरोखे, गोखड़े व साथ में छोटे गृह भी बनाए।

गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलैः शुभैः।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत्॥ 19॥
प्राकारस्यान्तबाह्यांशं कपिशीर्षसमन्वितम्।
हस्तान्तरे तस्य बाह्ये कर्तव्यं परिखादि च॥ 20॥

गृहों के अन्तर में, अर्थात् बीच-बीच में सभी स्थानों में जल की व्यवस्था और केलों के बाग लगे हों तथा पाँचों प्रकार के रंगों के पुष्पों की वाटिकाएँ भी बनाएँ जिनके बाहर-भीतर बाड़ बनी हो, प्राकार परकोटे की सुरक्षा भी हो तथा परकोटे पर सुन्दर कपिशीर्ष अर्थात् कंगूरों की शोभा हो। उनके एक-एक गज की दूरी पर परिक्खा बाहर की ओर बनाएँ।

प्रतोली चाग्रतः कार्या कपाटपुटसंयुता।
प्रतोल्यूर्ध्वे भूमिकोर्ध्वे वाद्यं समयसूचकम्॥ 21॥

मठ के भवन के आगे की ओर प्रतोली बनाए। उसके खोलने-बन्द करने हेतु कपाट, किंवाड़ भी बने हों। वहाँ इस बात की भी व्यवस्था हो कि पोल के ऊपर की मंजिल पर समय-सूचक वाद्य अर्थात् घण्टी (जैसी कि पूर्वकाल में व्यवस्था थी) भी लगी हों जिसके बजने से समय की सूचना छात्रों, अन्य निवासियों को भी मिलती रहे।

याम्योत्तरानुगाश्चैव प्राकाराः समसूत्रतः।
निर्गमः सूत्रमानेन प्रतोल्यग्रसमन्वितः॥ 22॥
युग्मं गृहाणां कर्तव्यं पक्षयोश्चैव सन्मुखम्।
प्रासादस्य प्रमाणेन पादूनं वा तदुच्यते॥ 23॥

प्रतोली के दक्षिण और उत्तर की ओर जाती हुई एक सीध में प्राकार भित्ति अर्थात् परकोटा बनाए और प्रतोली की सीध में ही दो गृहों का निर्माण किया जाए जिनके पक्ष प्रासाद के सामने बनाए जाए जिनका प्रमाण चतुर्थांश कम हो या जैसा भी उचित लगे वैसा बनाया जा सकता है।

एकभौमा द्विभौमा वा शाला निर्गमभूषिताः।
मत्तवारुणसंयुक्ता निर्मिताश्चित्रशालिकाः॥ 24॥

ऐसे ही मठ और विद्यालय के छात्रों, आध्यापकों व नागरिकों के मनोरञ्जन और ज्ञानवर्धन के लिए एक मंजिला या दो मंजिला निर्गम से भूषित अर्थात् बाहर आने-जाने के खुले स्थान से युक्त बरामदे वाली चित्रशाला अति सुन्दर बनाई जाए जिसके द्वार के झरोखे पर सुन्दर मत्तवारणों की बनावट के अलङ्करण हो।

जगत्यग्रे वामतश्च भिट्टं स्याद् भूमिकोच्छ्रितम्।
महोत्सवे च वासन्ते तत्र हिन्दोलकं भवेत्॥ 25॥

मठ की जगती के आगे, बाईं ओर ऊँची भूमि पर भिट्ट बनाएँ जहाँ किसी महोत्सव के अवसर पर, विशेषकर वसन्तोत्सव में आमोद-प्रमोद के लिए हिण्डोला, झूला लगाया जाए।

घटीस्थानोत्तरे कार्या विचित्रा नृत्यशालिका:।
वितानै: शालभञ्जीभिर्घण्टाछाद्यैर्विभूषिता:॥ 26॥

मठ में घड़ी, घण्टा बजाने के स्थान से उत्तर दिशा की ओर आकर्षक नृत्यशाला बनाई जाए जिस पर सुन्दर वितान, चन्दोवा लगे हों। उसकी भीतरी छत अलंकृत होनी चाहिए और द्वारों, भीतों पर शालभञ्जिकाओं की मूर्तियाँ विविध शृङ्गार की मुद्राओं में बनाई जाए। चित्रकारी में पुतलियाँ बनी हों तथा इस नृत्यशाला पर सुन्दर घण्टा अर्थात् गुम्बज की शोभाजनक छत होनी चाहिए।[1]

तत्रैव वाटिकाविधानमाह —

तासामुत्तरत: कार्या दक्षिणे वामतोऽपि वा।
अथवा वारुणे कुर्यात् क्षेत्रालाभे सुवाटिका:॥ 27॥
तासु वै विविधा वृक्षा जातिपुष्पाण्यनेकधा।
सर्वे च देवतरवो नोपरिष्ठा: समन्तत:॥ 28॥

उसके उत्तर तथा दक्षिण अथवा पश्चिम की ओर समस्त क्षेत्रवासियों के लाभ के लिए सुन्दर वाटिका भी बनाई जाए जिसमें विविध वृक्ष ऐसे हों जिनमें नाना जातियों के पुष्प खिलते हो जो सभी देवतरुवत् हों अर्थात् देवपूजनार्थ काम में आएँ। उनके समान 'नोपरिष्ठा:' यानी पूजा में काम न आने योग्य कोई अन्य न हों,

---

1. मेवाड़ के महाराणा कुम्भा कृत सङ्गीतराज के नृत्यरत्नकोश में नाट्यशाला के अलङ्करण के प्रसङ्ग में निम्न निर्देश है— मूर्ध्नि तेषां विचित्राणि काष्ठानि परिकल्पयेत्। भरणाख्येषु काष्ठेषु विचित्रा: शालभञ्जिका:॥ कार्या मूर्द्धसु तेषां स्युर्धरिण्य: शिल्पिसंस्कृता:। तास्वथ स्थापनीयं स्यात् तिर्यग् दारुचयं दृढम्॥ परस्परं संहता: स्यु: पट्टिकास्तत्र दारुजा:। सुश्लिष्टसन्धिकं रन्ध्रं निर्मुक्तं स्याद् यथा तथा॥ छादनीयं प्रयत्नेन काष्ठानामन्तरालकम्। छादनक्रममाश्रित्य परं लोहानुसारत:॥ तथा सुधा निधेयाऽत्र यथा चन्द्रकरा: परम्। तत्रानुबिम्बमासाद्य चन्द्रकोटिभ्रमावहा:॥ स्युरेवं भित्तिकर्माथो शिल्पिवर्य: प्रयोजयेत्। स्तम्भं वा नागदन्तं वा वातायनमथापि वा॥ कोणं वासप्रतिद्वारं विद्धं न कारयेत्। दृढमूला समा भित्ति: पक्वेष्टकचिता दृढा॥ यथोचितद्वारदेशस्तम्भ र्द्रच्छादनोचिता। चन्द्रबिम्बप्रतिकाशा सुधालेपविभूषिता॥ विचित्रचित्र संयुत.। वात्सायनविनिर्मितै:। रतप्रबन्ध रुचिरा नानानाटकचित्रिता॥ नायिकानायकोपेत नानारूपविचित्रता। लताशृङ्खलिकापिण्डी भेद बन्धविनिर्मितै:॥ श्रीकुम्भकर्णसङ्गीतगीतगोविन्दरूपकै:। कर्तव्या चित्रिता भित्तिर्विचित्रा चित्रकर्मठै:॥ इत्यादि... (नृत्यरत्नकोश 1, 1, 85-96)

ऐसे देवतरु चारों ओर लगाएँ।

तत्र रोपणीय वृक्षादीनां —

प्रियङ्गुशिरीषाशोका **जीवे करिटकैः शुभैः** ?।
पुन्नागनागबकुलैः पाटलैर्बिल्वचम्पकैः ॥ 29 ॥
श्वेतमन्दारविजयाजातीतगरकुब्जकैः।
अनङ्गैः सुवर्णपुष्पैश्च **बाणा भ्रान्ताः** [1]काकाण्डकैः ॥ 30 ॥
मुद्गरैः शतपत्रैश्च रम्भाकाञ्चनपुष्पकैः।
नारङ्गैः कर्णजम्बीरैस्तालतमालकेतकैः ॥ 31 ॥
पनसैर्नारिकेलैश्च **वृक्षैः** पूगीफलैस्तथा।
द्राक्षनागरवल्लीनां **विविधैश्च लतागृहैः** ॥ 32 ॥

वहाँ लगाने योग्य वृक्षों में प्रियङ्गु, शिरीष, अशोक, जीव, करिटक शुभ होते हैं। इसी प्रकार पुन्नाग, नाग, बकुल, पाटल, बिल्व, चम्पक, श्वेतमन्दार, विजया, चमेली, तगर, कुब्जक या महासहा, अनङ्ग, सुवर्णपुष्प, बाण, भ्रान्ता, काकाण्ड या महानिम्ब, मुद्गर, शतपत्र, केला, काञ्चनपुष्प, नारङ्गी, कनेर, जम्बीर, ताल, तमाल, केतकी, पनस, नारियल, सुपाड़ी, द्राक्षा-लता, नागरवल्लिका तथा ऐसे ही विविध प्रकार के वृक्षादिकों से लतागृह अर्थात् लताकुञ्जों की रचना करें।

वापी चैवाथ कूपश्च दृढयन्त्रैरलङ्कृतः।
तस्य बाह्ये तु प्राकारं कपिशीर्षविवर्जितम् ॥ 33 ॥

इस तरह बाग-बगीचों के वृक्ष, लता-पुष्पों की सिंचाई की व्यवस्था के लिए वापी-बावड़ी अथवा कूप बनाने का ध्यान रखें। उनमें मजबूत (अरहट) यन्त्रों से सज्जित करके जल के निकास की व्यवस्था के लिए नालियाँ बनाएँ। इनके बाहर भी सुरक्षार्थ परकोटा बनाए जिसके लिए सुन्दर कँगूरों की बनाने की आवश्यकता नहीं, केवल परकोटा ही पर्याप्त है।

परिखायास्तत्र **बाह्ये सप्त** हस्तप्रमाणतः।
इन्दिरावासनं **कुर्याद्** देवदेवजगत्प्रभुः ॥ 34 ॥

---

1. 'काका(र)टकैः ?।' इति प्रकाशित पाठः।
विशेष : यहाँ पुष्पवृक्षों का प्रधानता से वर्णन है। शब्दार्थचिन्तामणि में नरसिंहपुराण के मत से पुष्पीय पौधों की तुलनात्मक उच्चता का वर्णन आया है— चम्पकात् पुष्पशतकादशोकं पुष्पमुत्तमम्। अशोकात् पुष्पसाहस्रात् सेवतीपुष्पमुत्तमम्॥ सेवतीपुष्प साहस्रात् कुब्जकः पुष्पमुत्तमम्॥ (शब्दकल्पद्रुम द्वितीय खण्ड पृष्ठ 144)

उस परकोटे के बाहर की ओर सात गज के प्रमाण की चौड़ाई की खाई बनाई जाए। ऐसे नगरों में लक्ष्मीजी का मन्दिरों और देव, जगत्प्रभु भगवान् विष्णु का मन्दिर भी बनाएँ।

कृते याति पुरे रम्ये यत्र साक्षान्महेश्वरः।
कैलाससदृशं रम्यं राज्यं यावत्तु मेदिनी॥ 35॥

इसी प्रकार से इस सुरम्य पुर में साक्षात् भगवान् महेश्वर का कैलास पर्वत के समान मन्दिर बनाएँ जो बड़ा ही सुन्दर हो और जब तक यह पृथ्वी रहे, तब तक राज्य की शोभा विद्यमान रहे।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गृहग्रामनगरशोभावर्णनाधिकारो नाम पञ्चाशीतितमं सूत्रम्॥ 85॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में नगर, ग्राम, नगर शोभा वर्णन अधिकार नामक पिचासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 85॥

महाराजाधिगृहशुद्धशेखरसङ्घाटमिश्रकच्छन्दनिर्णय-ब्रह्मनगरभूधराख्यगृहो नाम षडशीतितमं सूत्रम्॥ 86॥

विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लक्षणं राजवेश्मनाम्।
विभक्तिभागसङ्ख्यानां छन्दालङ्कारसम्युतम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं राजमहलों, राजवेश्मों के उचित लक्षणों को उनकी विभक्ति के अनुसार भागों की संख्या तथा उनके छन्दों, अलङ्कारों के साथ कहता हूँ।

राजवेश्मार्थ तलच्छन्दमाह —

क्षेत्रं विभज्य यत्नेन भागाः स्युः षोडशैव$_{16}$ च।
मध्ये शाला द्विभागा स्यादलिन्दः शेषभागतः॥ 2॥

राजमहल के वास्तुक्षेत्र को बहुत यत्नपूर्वक सोलह भागों में विभाजित करें और उनके मध्य में बनने वाली शाला को दो भागों में बनाएँ, शेष भागों में अलिन्द अथवा बरामदा रखें।

क्षेत्रादौ विन्यसेद् गर्भं दक्षिणे करमात्रकम्।
त्रिभागं वामतः कुर्यात् त्रिभागं चैव मध्यतः॥ 3॥

इसी प्रकार गर्भ के दायें भाग में एक गज का क्षेत्र रखें, तीन भाग बायीं ओर रखे और तीन भाग का ही मध्य कल्पित करें।

षड्भागं विस्तृतं द्वारमायतं द्विगुणं तथा।

द्विभागं ब्रह्मसंस्थानं सीमां तत्र प्रकारयेत्॥ 4॥

उसका द्वार छह भाग चौड़ा और उसका दुगुना ऊँचा रखें अर्थात् बारह भाग के बराबर ऊँचा हो और दो भाग ब्रह्मस्थान की वहाँ पर सीमा करें।

शेषोऽलिन्दविधिर्युक्त्या तन्मानं पुरतः शुभम्।

तलच्छन्दमितिप्रोक्तमूर्ध्वमानमतः शृणु॥ 5॥

शेष भागों में अलिन्द, खुले बरामदे युक्तिपूर्वक निवेशित करें जिनका मान पुर के लिए शुभ व सुन्दर हो। इस प्रकार भवन का तलछन्द मैंने बताया। इसके बाद उसका ऊर्ध्वमान (एलिवेशन) भी सुनो।

अथ राजवेश्मोर्ध्वमानमाह —

सार्धत्रिभागसंयुक्ता चादिभूमिः समुच्छ्रिता।

शेषा नवान्ताः सद्वृत्ताः पादहीना यथाक्रमम्॥ 6॥

इसके लिए आदि भूमि से साढ़े तीन भाग संयुक्त करते हुए उसकी ऊँचाई रखें, शेष सभी भूमियों या मंजिलों को नौ मंजिल तक जाते-जाते इस प्रमाणवृत्त में क्रमशः चतुर्थांश कम करते जाएँ।

वेदीकण्ठं तथा पद्मं कलशं चाग्रशोभितम्।

चतुर्विंशतितिलकैर्भागं कुर्यात्समुच्छ्रये॥ 7॥

उनके सबसे ऊपर वेदीकण्ठ अर्थात् चौकोर वेदिका कण्ठ स्वरूप बनाकर उसके ऊपर पद्म स्वरूप गुम्बज और गुम्बज के ऊपर कलश शोभायुक्त बनाएँ, उसके चारों और चौबीस ऊँचे उठे हुए तिलक अर्थात् शृङ्ग बनाएँ।

प्रवेशं स्तम्भवेश्चारु ? हृदेशां सक्रमोद्गतः ?।

प्रमाणमीदृशं चैव उपशोभां तथा पुनः॥ 8॥

नानारूपसमाकीर्णं छाद्यघण्टाविभूषितम्।

नानापुष्पकशोभाढ्यं चन्द्रशालासमन्वितम्॥ 9॥

प्रवेश द्वार पर सुन्दर स्तम्भों का क्रमशः निर्माण करें जो हृदेश-सामने की ऊँचाई में ही बने और उनका प्रमाण इस तरह रखें कि उनकी उपशोभा भी पुनः नाना प्रकार के पुष्पकों के अलङ्कारों युक्त छाद्य-छत और घण्टा-गुम्बज से विभूषित चन्द्रशाला या चन्दोवा अर्थात् भीतर की अलंकृत छत से युक्त हों।

निर्यूहं निर्गमं श्रेयः ? सहश्चैवरनेकधा ?।

शुद्धच्छन्दमिति प्रोक्तं सुशर्म चैव सुव्रत॥ 10॥

इन स्तम्भों और गुम्बजों के बाहर की ओर निकले हुए निर्व्यूह बड़े सुन्दर और अनेक प्रकार के बनाएँ तब इस प्रकार के भवन को शुद्ध छन्द में बना हुआ कहा जाएगा। इसके बाद मैं सुशर्म व सुव्रत (शेष आगे)।

अथ गर्भच्छन्दमानमाह —

सङ्घाटं कथयिष्यायि क्षेत्रभक्त्या द्विरष्टकम्।

तेन क्षेत्रप्रमाणेन नवमं दक्षिणे भवेत्॥ 11॥

ततश्च वामतो दद्यात् पूर्वतः पश्चिमं ततः।

(पूर्वानुसार सुशर्म व सुव्रत के) सङ्घाट-निर्माण के बारे में कहता हूँ। कुल पिण्ड-क्षेत्र को सोलह भागों में बाँटकर उस क्षेत्र के ही प्रमाण से नौ भागों को दायें और नौ भागों को बायें दें। इसी प्रकार से पूर्व और पश्चिम में भी नौ-नौ भाग देने चाहिए।

नवान्ते पञ्चमं भागं वामतो दक्षिणं तथा॥ 12॥

मध्यतो ब्रह्मसंस्थाने सीमासूत्रं तु विन्यसेत्।

सीमान्ते द्वावलिन्दौ च भित्तिर्भागा तदन्ततः॥ 13॥

द्वावलिन्दौ च तत्पश्चाद् भित्तिभागः समः पुनः।

भित्त्यन्तेऽलिन्द एकः स्यात्तदन्तेष्वन्तभित्तिभिः॥ 14॥

गर्भच्छन्दमिति प्रोक्तं सङ्घाटं कथयाम्यहम्।

बाद में नौ भागों के अन्त में पाँच भाग वाम, उत्तर, दक्षिण में दे, फिर मध्य के ब्रह्मभाग से सीमासूत्र रखें और सीमासूत्र के लगे हुए दो अलिन्द या बरामदे बनाएँ। उनके अन्त में भित्ति भाग छोड़े और उसके बाद भित्ति भाग के बराबर पुनः दो अलिन्द या बरामदे बनाएँ और उनके बाद भित्ति बनाएँ। इसके अन्त में एक अलिन्द और बनाए तथा इसके उपरान्त अन्तिम भित्तियों को निर्मित करें। इस प्रकार बनने वाले छन्द को 'गर्भछन्द' कहा गया है। अब मैं अन्य सङ्घाट-समूह को कहता हूँ।

वीरभद्रसङ्घाटमाह —

अलिन्दद्वयसंयुक्तं सङ्घाटं तु विचिन्तयेत्॥ 15॥

भित्तिभागं तु मध्यान्ते सीमांश्चैव द्विभागतः।

भद्रान्ते निर्गमं तत्र छन्दे याम्योत्तरे न्यसेत्॥ 16॥

ऐसे एक अलिन्द के साथ बनने वाले सङ्घाट-समूह की परिकल्पना करें जिसके मध्य भाग के अन्त से भित्ति भाग की सीमा दो भागों की हो और उस भद्रभाग अर्थात् भित्ति के अन्त में निर्गम-निकास उत्तर-दक्षिण की ओर रखें।

सतेनैव पश्चिमे दद्यादष्टांशं पुरतस्तथा।
मुखशाला प्रकर्तव्या तलच्छन्दात्परा भवेत्॥ 17॥

इसी प्रकार अष्टांश भाग पश्चिम में और अष्टांश भाग पूर्व में रखें जहाँ पर मुख्य द्वार पर मुखशाला तलछन्द के अनुसार परा अर्थात् बड़ी सुन्दर बनाएँ।

ततो गृहीत्वा क्षेत्रांशमङ्कयेद् भूमिकोच्छ्रयम्।
मूलभूम्युच्छ्रयान्ते च चतुर्भागैस्तु कारयेत्॥ 18॥
शेषास्तु पादहीनाश्च भूमयो नवसङ्ख्यया।
तलच्छाद्यं तथा वेदी ग्रीवा घण्टा च छत्रकम्॥ 19॥
कलशं तु शिखान्तं च त्रिभागैश्चैव लाञ्छयेत्।
ऊर्ध्वमानमिति प्रोक्तं रेखाश्चैव तु पूर्वत्॥ 20॥

तलछन्द के अनुसार क्षेत्रांशों को लेकर मंजिलों की ऊँचाई का अङ्कन करें। मूल भूमि अर्थात् पहली मंजिल से ऊँचाई की ओर बढ़ते समय चार भाग तो मूल भाग की मंजिल जितने ऊँचे करें और शेष जो नौ मंजिलों तक बने, उनको इस पहली मंजिल की ऊँचाई से पादहीन अर्थात् चतुर्थांश कम ऊँचाई की बनाएँ और उनके सबसे ऊपर छत बनाएँ। चौकोर वेदीकण्ठ बनाकर उस पर गुम्बज का छत्र और कलश शिखा के अन्त तक बनाएँ। इसके शिखान्त तक तीन भागों के स्पष्ट सङ्केत या लाञ्छन करें। इस प्रकार यह नौ मंजिले भवन का ऊर्ध्वमान (एलिवेशन) कहा गया है जिसकी रेखा तो पूर्ववत ही बनेगी।

सङ्घाटत्रयसंयुक्तं तच्च निर्द्वरिसंयुतम्?।
त्रिपुष्पकं प्रकर्तव्यं सङ्घाटं गर्भमध्यतः॥ 21॥
चतुःसङ्घाटकोपेतं षट्पुष्पकविभूषितम्।
एवं तु कारयेद्वत्स दशमान्तं तु सुव्रत॥ 22॥
तथा चन्द्रशालामेकामृजाक्षोम[1] शालभञ्जिका।
छाद्यकपोतकलां तु निर्गता माडमालिका॥ 23॥
सङ्घाटं वीरभद्रं तु भित्तसञ्ज्ञमुदाहृतम्।

---

1. 'चन्द्रकलामेकामृजाक्षोभ ?।' इति प्रकाशित पाठः।

इस संयुक्त त्रिसङ्घाट को निद्वरि-प्रणालों से युक्त बनाते हुए सङ्घाट समुच्चय के मध्य से त्रिपुष्पक अलङ्करण बनाएँ और चौथे सङ्घाट समुच्चय से छह पुष्पों के अलङ्करणों द्वारा विभूषित करते हुए हे वत्स! दसवें सङ्घाट तक इस सुव्रत को बनाएँ। इसी प्रकार एक खुली छत बनाए जिस पर एक छत पर बनने वाला कमरा (मृजाक्षोप) हो। उसके अलङ्करण में नवयौवनाओं पुतलियों या शालभञ्जिका की शोभा तथा सुन्दर छत युक्त एक कपोतकला (कबूतरखाना, चिड़ियाओं का आश्रय स्थल) भी माडमालिका अर्थात् मेड़ियों की कतार से आगे निकला हुआ बनाना चाहिए। इस प्रकार यह सङ्घाट वीरभद्र नाम का भित्तियों सहित वर्णित किया गया।

तथा चान्ये —

सप्तभौमं तु कर्तव्यं[1] शुद्धच्छन्द नवान्तिकम्॥ 24॥
एवं तु नवसंयुक्ता भूम्यः कार्यास्तु सुव्रत।
राज्ञां विनिर्मिताश्चैता विचित्रास्त्वपराजित॥ 25॥

इसके अतिरिक्त, सात मंजिला शुद्धछन्द नामक भवन नौ मंजिलों के अन्त तक बनाया जा सकता है। इस प्रकार जब नौ मंजिलों को संयुक्त रूप में लें तो उसे सुव्रत छन्द में बना हुआ कहा जाता है। हे अपराजित! राजाओं द्वारा बनाए हुए इतने सभी विचित्र भवन हैं।

त्रिसङ्घाटं महादिव्यं नाम्ना वै सुन्दरं गृहम्।
पञ्चसीमं त्रिसङ्घाटं कथितं चैव सुन्दरम्॥ 26॥

त्रिसङ्घाट-समूहों में बने हुए महादिव्य भवनों को सुन्दर गृह कहा गया है। पाँच सीमा वाले त्रिसङ्घाट समूहों को भी सुन्दर कहा है।

इत्यमनन्तर पञ्चसङ्घाटकमिश्रकछन्दमाह —

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि भेदोपभेदनिर्णयम्।
नवसीमासमायुक्तं पञ्चसङ्घाटकं विदुः॥ 27॥

अब मैं पुनः अन्य प्रकार के भेद, उपभेद के निर्णयानुसार नौ की सीमा तक बनने वाले पञ्चसङ्घाटक समूहों के बारे में कहता हूँ जिसे सुनो।

नवपुष्पकसङ्कीर्ण$_9$ सप्तघण्टाविभूषितम्$_7$।
षोडशांशं$_{16}$ शुद्धद्वयं सङ्घाटषोडशं$_{16}$ तथा॥ 28॥
द्वादशान्तं$_{12}$ द्विसङ्घाटं वामदक्षिणसंस्थितम्।
पश्चिमे चेदृशं छन्दं पुरतश्चैव तादृशम्॥ 29॥

---

1. 'सप्तभौमं तु सङ्क्रव्यं' इति प्रकाशित पाठः।

द्विर्द्विश्छन्देन दातव्यं भित्त्यष्टकसमन्वितम्।
छन्दलक्षणसंयुक्तं पूर्वमर्मविवर्जितम्॥ 30॥

नौ पुष्पकों के समूहयुक्त और सात घूमटों-गुम्बजों से विभूषित षोडशांश युक्त शुद्धद्वय— शुद्ध जोड़ों में सोलह सङ्घाट-समूह बनाए जाए तथा द्वादशान्त अर्थात् बारह द्विसङ्घाट— दो जोड़ों के समूह उनके बायें-दायें स्थित बनाएँ। इसी तरह पश्चिम में भी और पूर्व में भी दो-दो छन्दों अर्थात् दो-दो ढङ्ग से आठ भित्तियों से युक्त भित्ति अष्टक भी दिया जाए जिसमें कोई पूर्वमर्म यानी कमी नहीं हो और वह सभी शुभ लक्षणों से संयुक्त हो।

पञ्चसङ्घाटसंयुक्तं षोडशाण्डकभूषितम्।
तादृशं तादृशैर्युक्तं प्रस्तारः पूर्वतः स्मृतः॥ 31॥

इस तरह यह पञ्चसङ्घाट संयुक्त भवन समूह जिस पर सोलह गुम्बजों की शोभा है, का प्रस्तार पहले जैसा बना था, वैसे ही प्रस्तार के साथ निर्मित होगा।

सुन्दराख्यं महादिव्यं राज्ञां विजयकारणम्।
तत्कर्तार एकछत्रं भोक्तारो भुवनत्रये॥ 32॥

ये सुन्दर नाम के महादिव्य भवन राजाओं की विजय-कीर्ति के कारण होते हैं। ऐसे भवनों को बनवाने वाले इन तीनों लोकों में एकछत्र अर्थात् समस्त राजाओं के महाराजा चक्रवर्ती सम्राट होते हैं।

मिश्रकं पूजयेच्चैव वास्तुं सूत्र सुरार्चितम्।
सर्वथा पूजयेद्[1] वत्स मिश्रकं वेधवर्जितम्॥ 33॥

ऐसे मिश्रक वास्तुसूत्र को जिसे देवताओं के द्वारा भी पूजा जाता है, उसे पूजना चाहिए। हे वत्स! सभी प्रकार से वेधवर्जित मिश्रक को ही महत्व दिया जाना चाहिए।

चतुःषष्टि$_{64}$ प्रभिन्नं च शतपांच्चापराजित।
पूजयेद् वास्तुनी तत्र पूज्याः सर्वे पृथक् सुराः॥ 34॥

चौंसठ प्रकार के भिन्न-भिन्न और पाँच सौ वास्तु भवनों को हे अपराजित! पूजना चाहिए जिन्हें सभी देवताओं ने भी पृथक्-पृथक् पूजा था।

त्रिदशाः पूजिता येन त्रैलोक्यं सचराचरम्।
एवं विचार्य कर्तव्यं न न्यूनं चाधिकं न हि॥ 35॥

इति महाराजाधिगृहशुद्धशेखरसङ्घाटमिश्रकच्छन्दनिर्णयाधिकारः।

---

1. 'अन्यथा वेधयेद्' इति प्रकाशित पाठः।

देवताओं ने जिनका तीनों लोकों में और सकल चराचर में पूजन किया, इस बात को भली प्रकार से विचार लें और इसमें न्यूनाधिक्यता नहीं करे।

भूधराख्यगृहरचनावर्णनमाह —

सङ्घाटकसमायुक्तं त्यक्त्वा पुष्पककोष्ठकम्।
पूर्वा-परवासराणामष्टपदौ$_8$ च जायते ॥
----------- याम्यकौबेरसंस्थितौ ॥ 21-22 ॥[1]

पुष्पक कोष्टकों को त्यागते हुए जो सङ्घाट-भवन समूह बनते हैं, उनके पहले और बाद के भवनों के लिए अष्टापद बनाए जाते हैं....। जो उत्तर-दक्षिण भागों में संस्थित होते हैं।

सर्वेषामीदृशश्छन्दश्चतुःषष्टिपदेषु$_{64}$ च।
ब्रह्मस्थानगृहाश्चैव पादानां च चतुष्टये ॥ 23 ॥

इन सभी के लिए छन्द उसी प्रकार बनता है जो चौंसठ पदों वाला होता है जिनमें ब्रह्मस्थान में बनने वाले गृहों के भी चार पाद-भाग होते हैं।

गृहाणां मानसङ्ख्या च द्वात्रिंशद्धस्तकैर्मता$_{32}$।
उभयोर्ब्रह्मवंशस्य चतुर्थांशकराः स्मृताः ॥ 24 ॥

इन गृहों की मान संख्या अर्थात् लम्बाई का मान बत्तीस गज का होता है जो दोनों ब्रह्मवंशों में चतुर्थांश गज या चौथाई हाथ प्रमाण का होगा।

चत्वारो द्वादशमार्गाश्चत्वारो षोडशान्विताः$_{16}$।
नवमार्गकृताः$_9$ सङ्ख्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ 25 ॥

इनमें से चार तो बारह मार्गों वाले हैं और चार सोलह मार्गों वाले हैं। विश्वकर्मा[2] ने इस सम्बन्ध में नौ मार्गों की संख्या तक भी स्वीकृत की है।

सीमा करसहस्त्रं तु आयामो विस्तरः समौ।
चतुःषष्टिपदं$_{64}$ कुर्याद् ब्रह्मरन्ध्रप्रमाणतः ॥ 26 ॥

यदि किसी पिण्ड का सीमा क्षेत्र लम्बाई-चौड़ाई में एक हजार गज तक का समानतः हो तो ऐसे चौंसठ पद बनाएँ और उसमें प्रमाणानुसार ब्रह्मरन्ध्र भी परिकल्पित करना चाहिए।

चतुर्मुखं चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु[3] पितामहम्।

---

1. प्रकाशित पाठे 1—20 पर्यन्ताः श्लोका लुप्ताः।
2. यहाँ अपराजितकार ने किसी पूर्व विश्वकर्मीय शास्त्र का स्मरण किया है।
3. 'चतुर्थक्ष ?' इति प्रकाशित पाठः।

कारयेच्च स्वनगरे प्रासादं कमलोद्भवम्॥ 27॥

इस क्षेत्र में चतुर्मुख, चतुर्द्वार और चारों दिशाओं में देखते हुए पितामह का, कमलोद्भव ब्रह्मा का (सर्वतोभद्र) प्रासाद या मन्दिर अपने नगर में बनाना चाहिए।

स्थापयेच्च चतुर्वर्णं चतुर्दिक्षुः यथाक्रमम्।
महास्थानानि चत्वारि चतुर्वर्णाश्रितानि च॥ 28॥

और, उस नगर में चारों वर्णों का चारों ही दिशा में यथाक्रम न्यास होना चाहिए। चारों महास्थान चारों वर्णों से ही आश्रित हो अर्थात् वहाँ वे बसे हुए हों।

तत्र प्राकार लक्षणमाह —

सीमान्तेषु च सर्वेषु चतुःषष्ट्यादिसाधिते$_{64}$।
प्राकारः सुदृढः कार्यो नवहस्तैः समुच्छ्रितः॥ 29॥

सभी छोर, सीमान्त पर उक्त चौंसठ पदों के अनुसार साधित किए गए प्राकार सुदृढ़ और नौ गज ऊँचे बनाने चाहिए।

नवहस्ता वृत्ता कार्या त्रिगूढा कण्डवारुणी।
तत्तुल्योदयमानं च कपिशीर्षघनाकुलम्॥ 30॥

उन परकोटों के नौ गज आयाम की तीन छतों वाली— त्रिगूढ़ गोलबुर्जें अर्थात् कण्डवारुणी भी बनाए और ऊँचाई के मान के अनुरूप कँगूरों की समूह रचना (कपिशीर्षघनाकुलं) भी करें।

कर्णे कर्णे तु कर्तव्या वृत्ताः कुड्मलशोभनाः।
त्रिहस्तान्ते पुनः कुर्याद्योधविद्याधरी तथा॥ 31॥

इस प्राकार या परकोटे के कोने-कोने पर गोल भित्ति वाले बुर्ज शोभायुक्त बनाएँ और पुनः प्राकार पर उनके तीन-तीन गज के अन्तराल पर विद्याधरी-बारादरी या वरामदा वनाए जहाँ से योद्धा सुरक्षा कार्य में सन्नद्ध होकर काम कर सके।[1]

तद्वद्भागप्रमाणेन कुर्यात् सिंहावलोकनम्।
प्रत्योल्यन्तं चत्वरे तु चतुर्द्वाराणि कारयेत्॥ 32॥
द्वाराण्यष्टौ$_{8}$ खडक्कीनां शस्तानि शुभदानि च।
खडक्की सर्वद्वारेषु कुर्यात्सोपानसञ्चयम्॥ 33॥

---

1. इस प्रकार की रचना चित्तौड़गढ़, कैलाशपुरी और कुम्भलगढ़ में देखी जा सकती है। प्राचीन काल में देवकुल पाटन, अनहिलवाडपट्टन में भी इस प्रकार के दुर्गों के प्राकारों का विन्यास रहा है। सूत्रधार मण्डन ने यही निर्देश वास्तुमण्डनम् में भी दिया है।

उसी विद्याधरी या बरामदे के मान-प्रमाण के अनुसार ही सिंहावलोक यानी गोखड़े भी बनाए जाएँ जहाँ से दूर-दूर तक सैनिकों की दृष्टि जा सके। चत्वरों, चौक के चारों और जाने वाले मार्गों के अन्त में चार द्वार बनाए और उन पर प्रतोलियाँ-पोलें बनाई जाए जिनके आठ खिड़कियाँ अर्थात् लघु द्वार भी प्रति पोल के उभय पार्श्व में दो खिड़की के क्रम में बनाए, यह शुभदायी है। इस तरह चारों द्वारों के कुल आठ खिड़कियाँ हों जिन पर चढ़ने-उतरने के सोपान बनाएँ अर्थात् उनके द्वारा परकोटे से बाहर आते-जाते सीढ़ियों से चढ़ना-उतरना पड़े, ऐसी बाधा रखें।

रथमार्गोचितं शस्तं प्रतोलीषु प्रवेशनम्।
द्वारेषु च कपाटानि दृढार्गलयुतानि च॥ 34॥

इसी प्रकार गाड़ी-घोड़ा और रथयान आदि से सीधे सड़क मार्ग से प्रतोली-पोल के द्वारा आते-जाते रहें। प्रतोली के द्वारों के कपाटों की व्यवस्था के साथ ही उनकी सुदृढ़ता के लिए दृढ़ अर्गलाओं का भी वहाँ पर प्रबन्ध होना चाहिए।

पूर्वद्वारे ध्वजस्थाने कीर्तिस्तम्भं महोदयम्।
तद्भद्रे तु प्रतिष्ठाप्यः कीर्तिपताक हस्तकः॥ 35॥

नगर के पूर्व दिशा के द्वार के आगे ध्वज-स्थान पर बहुत ऊँचा (महोदय) कीर्तिस्तम्भ बनाया जाए[1] और उसके भद्र, शिखर के कक्ष पर कीर्तिपताका हस्तक अर्थात् ध्वजदण्ड की प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

तथा च शिल्पीदानसम्मानकर्तव्यमाह —

शिलोंछखननं त्राणं शय्यासनपट्टिका।
नित्यकर्मस्थानस्थानं सन्ध्यावन्दकण्डिका॥ 36॥
गृहोपस्करं सर्वमायसकाष्ठकादिकम्।
द्विजदेवाय दातव्यमात्मार्थं स्वर्गमानदम्॥ 37॥

जो विप्र स्वयं शिलाखनन करके अपने लिए शय्या, आसन-बाजोट, पट्टिका, त्राण या कवचादि बनाते हों तथा नित्यकर्म-पूजन का स्थान बनाना, सन्ध्या-वन्दन करने की कण्डिका बनाने आदि के कठिन कार्य करते हों और जिनके घरों में काम आने वाले सभी उपस्कर (गृहोपयोगी औजार, सामान) जो लोहे, धातु-काष्ठादि से

---

1. चित्तौड़गढ़ पर अपराजितकार के जीवन काल तक सम्भतः ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी। वहाँ दो कीर्तिस्तम्भ है और उक्त निर्देशों की परिपालना वर्तमान में भी द्रष्टव्य है। इससे पूर्व महाराष्ट्र में अजन्तादि की गुफाओं के द्वार पर स्तम्भ बनाए गए थे।

बनते हो— ऐसे द्विज-देव ब्राह्मणों के लिए अपने कल्याण के लिए तथा मरणोपरान्त स्वर्ग में सम्मान पाने के लिए दानकृत्य करना चाहिए।

भूम्यादिकं गजाश्वं च देशग्रामं च पत्तनम्।
पयस्वती रथं छत्रं हेमरत्नादिभूषणम्॥ 38॥
सपत्नीकाय पूज्याय विप्रा देवैश्च पूजिताः।

इसी प्रकार से विप्रों को भूमिदान, गजदान, अश्वदान, देश और ग्रामदान, पत्तनदान, दूधारू गाय का दान, रथदान, छत्रदान, स्वर्ण-रत्नादि वाले आभूषणों के दान को देवताओं की पूजा करने के बाद— विप्रपत्नी सहित विप्र या भूदेवों को करना चाहिए।

इन्द्रराज्यसमं राज्यं स्वर्गे वाऽथ धरातले॥ 39॥
धान्यसञ्चायकं ख्यातं नगरं नाम भूधरम्।
देवलोकेषु विख्यातं पूज्यं सुरनरोरगैः॥ 40॥

उक्त दान इसलिए करना चाहिए कि राजा की प्रतिष्ठा इस धरातल पर राजा इन्द्र के स्वर्ग के समान राज्य की हो जिससे उसके नगर का 'भूधर' नाम धान्य सञ्चायक अर्थात् धन-धान्य सञ्चय से पूर्ण देवलोकों में भी विख्यात् हो जाए और देवताओं, मनुष्यों तथा नागलोकों द्वारा पूजित होता रहे।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां ब्रह्मनगरभूधराख्यगृहपञ्चाशत् सङ्ख्याधिकारोनामषडशीतितमं सूत्रम्॥ 86॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ब्रह्मनगर, भूधर नामक गृहपञ्चाशत्संख्या अधिकार नामक छियासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 44॥

महाराजगृहमाडलक्षणं सप्ताशीतितमं सूत्रम्॥ 87॥

विश्वकर्मोवाच —

इदानीमभिधास्यामि यथावदनुपूर्वशः।
महाराजगृहाः सर्वे जय-श्री-कीर्तिवर्धनाः॥ 1॥

(अब महाराजगृह और माड लक्षण के विषय में कहा जा रहा है) विश्वकर्मा बोले कि अब मैं पूर्व कथनानुसार ही महाराज गृहों के बारे में कहता हूँ जो सब प्रकार से जय, श्रीसम्पत्ति और कीर्ति को बढ़ाने वाले हैं।

महाराजगृहनामानि —

श्रीधरः श्रीगृहश्चैव प्रतापवर्धनस्तथा।

लक्ष्मीविलासकश्चैव त्रैलोक्यविजयस्तथा ॥ 2 ॥
नन्दनः श्रीनिवासश्च विमुक्तः पुष्पशेखरः ।
इन्द्रनीलो विमानश्च दिग्भद्रः क्षोणीभूषणः ॥ 3 ॥
गृहराजः सिद्धिकामो नन्दिघोषस्त्रिकूटकः ।
धराधरः श्रीतिलकः उत्तुङ्गः कमलोद्भवः ॥ 4 ॥
रतिगृहश्च सिद्धार्थः पृथिवीजयमन्मथौ ।
शत्रुमर्दननामा च षड्विंशतिरितिस्मृताः$_{26}$ ॥ 5 ॥

महाराजगृहों के नाम क्रमशः निम्न हैं— (1.) श्रीधर, (2.) श्रीगृह, (3.) प्रतापवर्धन, (4.) लक्ष्मीविलास, (5.) त्रैलोक्यविजय, (6.) नन्दन, (7.) श्रीनिवास, (8.) विमुक्त, (9.) पुष्पशेखर, (10.) इन्द्रनील, (11.) विमान, (12.) दिग्भद्र, (13.) क्षोणीभूषण, (14.) गृहराज, (15.) सिद्धिकाम, (16.) नन्दिघोष, (17.) त्रिकूट, (18.) धराधर, (19.) श्रीतिलक, (20.) उत्तुङ्ग, (21.) कमलोद्भव, (22.) रतिगृह, (23.) सिद्धार्थ, (24.) पृथ्वीजय, (25.) मन्मथ और (26.) शत्रुमर्दन— इस प्रकार इनके छब्बीस नाम हैं।

तस्य कनिष्ठमध्योत्तमलक्षणमाह —

अष्टोत्तरशतं$_{108}$ ज्येष्ठं नवतिर्ज्येष्ठमध्यमम्$_{90}$ ।
सप्ततिः$_{70}$ कनिष्ठज्येष्ठं त्रिविधं ज्येष्ठमुच्यते ॥ 6 ॥

(इनकी भी गज-प्रमाणानुसार ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रकार से अनेक जातियाँ हैं। यथा—) इनमें 108 हाथ के ज्येष्ठ, 90 ज्येष्ठ-मध्यम और 70 कनिष्ठ-ज्येष्ठ— इस प्रकार से तीन प्रकार के ज्येष्ठ बताए गए हैं।

षष्टिश्च$_{60}$ मध्यमे ज्येष्ठं पञ्चाशन्मध्यमध्यमम्$_{50}$ ।
कनिष्ठं मध्यमं ज्ञेयं चत्त्वारिंशच्च$_{40}$ सङ्ख्यया ॥ 7 ॥

इसके अतिरिक्त, 60 हाथ के मध्यम-ज्येष्ठ, 50 मध्यम-मध्यम और 40 मध्यम-कनिष्ठ की संख्या होती है।

अधमेऽग्र्यं पञ्चत्रिंशन्$_{35}$ मध्यं त्रिंशत्कनिष्ठके$_{30}$ ।
कनिष्ठं च कनिष्ठे स्यात् पञ्चविंशतिहस्ततः$_{25}$ ॥ 8 ॥

अब कनिष्ठों के क्रम से भी देखें- 35 अधम-अग्र्य (कनिष्ठाग्रगण्य), 30 कनिष्ठ-मध्यम और 25 कनिष्ठ-कनिष्ठ गज तक होते हैं।

एकैकं त्रिविधं चेत्थं ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम् ।
त्रिधा च पुनरेकैकं सप्तविंशतिमानकम्$_{27}$ ॥ 9 ॥

इनके भी एक-एक के तीन-तीन प्रकार के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रकार होते हैं और पुनः उनके भी एक-एक के सत्ताईस मानक बनते हैं।

श्रीधरश्रीगृहञ्च —

श्रीधरं श्रीगृहं चैव शोभार्थं कारयेद्दृढम्।
त्रयोविंशतिकं$_{23}$ त्वेवं नित्यं कल्याणकारकम्॥ 10॥

श्रीधर और श्रीगृह भवनों को शोभायुक्त और दृढ़ बनाना चाहिए। इनमें ये तेईस प्रकार सर्वदा कल्याणकारक होते हैं।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भाग एको विभाज्यते।
चतुःस्तम्भसमयुक्तमेकद्वारण भूषितम्॥ 11॥

इनके लिए चौकोर समतलीकृत क्षेत्र को एक भाग में ही कल्पित करें। उसमें चार स्तम्भों (चौखट) से युक्त एक द्वार बनाया जाना चाहिए।

क्षेत्रभागोदयः स्तम्भे [1]द्वयोभूफलकान्तरे।
आदिभूम्युदयोर्ध्वे वै पीठबन्धं प्रकल्पयेत्॥ 12॥

उस क्षेत्र भागसे उदय होते हुए स्तम्भों के दोनों ओर की भूमि के फलक अर्थात् पट्टों के अन्तर पर आदि भूमि से लेकर ऊँचाई तक आधार बन्धों को कल्पित करें।

उदये नवभिर्भक्ते भागेनैकेन कुम्भिका।
चतुरश्रा-ष्टाश्र-वृत्तः स्तम्भ ऊर्ध्वे चतुष्कतः॥ 13॥

इसमें स्तम्भ की जो ऊँचाई हो उसको नौ भागों में विभाजित करें। उसमें से एक भाग के बराबर स्तम्भ की कुम्भी बनाएँ, उसके ऊपर की ओर स्तम्भ को चौकोर, अष्टकोणीय, वृत्ताकार— किसी भी छन्द में बनाए और पुनः ऊपर का भाग चौकोर रखें।

तदूर्ध्व तु विधातव्यं भागोनं व्यालकं तथा।
हीरग्रहणकं कार्यं भागं पादविवर्जितम्॥ 14॥

उसके ऊपर एक भाग कम वाला व्यालक बनाए तथा उस पर पुनः एक भाग में चतुर्थांश कम रखते हुए (पौन भाग का) हीरग्रहणक बनाए।

सपादभागिकः पट्टस्तन्त्रकेन समन्वितम्।
भागार्धेन जयन्ती च भूमिभूमिद्वयं[2] क्रमः॥ 15॥

1. 'रहोभूफलकान्तरे।' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'भूमिभूमिष्वयं' इति प्रकाशित पाठः।

इसी प्रकार एक भाग में चतुर्थांश जोड़ते हुए अर्थात् सवाया भाग का पट्टतन्त्र बनाएँ और आधे भाग की जयन्ती एक-एक भूमि दो के क्रम में बनाएँ।

गुण$_3$रागा$_6$न्विता भित्तिश्च्छाद्यद्वाराणि यानि तु।
तत्र छाद्यत्रयं कार्यं वेदीघण्टासमन्वितम्॥ 16॥

इसी प्रकार नौ भागों (3 + 6 = 9) वाली भित्ति पर छत और द्वारों से समन्वित— तीन छतें बनाए जिन पर वेदी और घण्टा-गुम्बज भी बने हों।

ज्वलद्दीप्यासनं वेद्यां मत्तावरणभूषितम्।
अर्धोदये प्रकर्तव्यो माडः श्रीधर उत्तमः॥ 17॥

इति श्रीधरः।

उनमें दोनों ओर जलते हुए दीपक रखने का आसन (दीवट या आसन-आले) बनाए। वेदी को मत्तवारणों से विभूषित करें और उसकी आधी ऊँचाई पर श्रीधर माड-मेड़ी या कमरा बड़ा उत्तम बनवाएँ।

श्रीगृहलक्षणं —

एतस्मिन्नेव संस्थाने सीमासूत्रविधिर्भवेत्।
निर्गमः सूत्रमानेन भद्रान्तस्य विधीयते॥ 18॥

ऐसे ही चौकोर समतल संस्थान में सीमासूत्र विधि से निर्गम सूत्रमान के अनुसार भद्रान्त—भित्तियों की दूरी कही गई है।

द्वादश$_{12}$स्तम्भसंयुक्त एकद्वारेण भूषितः।
सार्धभूमिसमायुक्तः श्रीगृहः श्रीविवर्द्धनः॥ 19॥

इति श्रीगृहः।

जहाँ बारह स्तम्भों से युक्त द्वार विभूषित हो, वह डेढ़ भूमि वाला श्रीगृह नामक वास्तु श्रीवृद्धिकारक बनता है।

प्रतापवर्द्धनलक्षणं —

प्रतापवर्द्धनस्येवं लक्ष्म साम्प्रतमुच्यते।
पञ्चविंशतिहस्तैश्च$_{25}$ सार्धभागत्रयाङ्कितम्$_{28॥}$॥ 20॥
चत्वारो मध्यतः स्तम्भा द्वादशाऽलिन्दभागतः।
पादा भित्तिर्विधातव्या चतुर्द्वारोपशोभिता॥ 21॥

अब प्रतापवर्द्धनगृह के लक्षण कहता हूँ। वह साढ़े अट्ठाईस गज से अङ्कित (28.5 × 28.5 = 812 पद) होता है जिसके मध्य से चारों और स्तम्भ हो जो

बारह अलिन्दों-बरामदों खुले चबूतरों के भाग हों। उनमें एक पाद या भाग की भित्ति बनाए जो चतुर्धाः यानी चारों ओर से शोभायमान होनी चाहिए।

भद्रभागाश्चतुर्दिक्षु चतुःस्तम्भविभूषिताः।
द्वात्रिंशत्तिस्तम्भकैर्युक्तो बाह्यभ्यन्तरतस्तथा॥ 22॥
द्वितीयभूर्ध्वे माडाश्च सार्धभूमित्रयोच्छ्रिताः।
प्रतापकीर्तिकृन्नित्यं प्रतापवर्द्धनाभिधम्॥ 23॥

इति प्रतापवर्धनः।

उसकी चारों दिशाओं में बने हुए भद्रभाग यानी भित्तियों के भाग चार-चार स्तम्भों से विभूषित हों। इस तरह बत्तीस स्तम्भों से युक्त बाहर और भीतर से हो जिसके दूसरी मंजिल पर माड-कमरे बने जो डेढ़ मंजिल की ऊँचाई के हो— ऐसा भवन प्रतापकीर्तिकारक प्रतापवर्द्धन नामक गृह होता है।[1]

लक्ष्मीविलासलक्षणं —

प्रतापवर्द्धने भद्रं त्रिभागं चैव विस्तरे।
मुखभद्रं चैकभागं दशस्तम्भसमन्वितम्॥ 24॥
माडं द्वितीयभूम्यूर्ध्वे सार्धपञ्चकभूमिकम्।
लक्ष्मीश्च रमते तत्र लक्ष्मीविलास उच्यते॥ 25॥

इति लक्ष्मीविलासः।

प्रतापवर्धन के समान ही भित्तियों का तीन भागों में विस्तार करके एक भाग में मुखभद्र-आगे की दीवार बनाए जो दस स्तम्भों से युक्त हो। उसकी दूसरी मंजिल की ऊँचाई पर साढ़े पाँच मंजिलों का माड या कमरा बनाएँ। ऐसे गृह में लक्ष्मी का रमण होता है, इसीलिए इसे लक्ष्मीविलास गृह कहा जाता है।

त्रैलोक्यविजयलक्षणं —

त्रिभागायामविस्तारः पदिकं मुखभद्रकम्।
त्रीणि स्युर्मुखभद्राणि स्तम्भा द्वाविंशतिस्तथा$_{22}$ ॥ 26॥
बाह्यभ्यन्तरतः स्तम्भाः शतं च चतुरुत्तरम्$_{104}$।

---

1. भोजकृत समराङ्गणसूत्रधार में यही मत आया है— प्रतापवर्धनस्याथ लक्ष्म साम्प्रतमुच्यते। पञ्चविंशतिहस्ताङ्के सार्धभागत्रयाङ्किते॥ मध्ये चतुष्को भागेन चतुर्भिः सम्भृतो धरैः। अलिन्दो भागिकश्चास्य स्तम्भद्वादशकान्वितः॥ पादिका भित्तिरेतस्य भद्रं चास्य प्रकल्पयेत्। भागनिर्गमविस्तारं चतुःस्तम्भविभूपितम्॥ विधिरेष समग्रासु दिक्षु कार्योऽस्य सिद्धये। स्तम्भैर्द्वात्रिंशता$_{32}$ युक्तो बहिरन्तरयं भवेत्॥ धराणां चैव सर्वेषां चतुःषष्टिः प्रकल्पना। (समराङ्गण. 30, 109-113)

तृतीयभूर्ध्वे माडाश्च सार्धषड्भूमिकास्तथा ॥ 27 ॥

इति त्रैकोक्यविजय:।

त्रैलोक्यविजय नामक गृह के लिए तीन भागों के आयाम में विस्तार वाली एक पद की मुखभद्र अर्थात् आगे की भित्ति हो और तीन मुखभद्रों पर बाईस स्तम्भ हों। इस तरह बाहर-भीतर से मिलाकर स्तम्भों की संख्या 104 होती है। इसमें तीन मंजिल ऊँचाई पर साढ़े छह मंजिले माड-कमरे बनवाएँ।

नन्दनगृहलक्षणं —

मध्यभित्तिं परित्यज्य **तत्र भद्राणि योजयेत्।**
त्रिभागायामविस्तारो **भद्रं द्वादश** $_{12}$ **द्वारकम्॥ 28 ॥**
श्रीगृहच्छन्दकाकारे **चतु:षष्टिस्तु** $_{64}$ **स्तम्भका:।**
तृतीयभूर्ध्वे **माडाश्च** सार्धपञ्चकभूमिका: ॥ 29 ॥

इति नन्दन:।

नन्दन नामक गृह में मध्यभित्ति को छोड़कर वहाँ अन्य भद्रों-भींतों को बनवाएँ जिनका आयाम विस्तार तीन भागों में हो और भद्र-भींत में बारह द्वार हों। उसके श्रीगृह के समानत: छन्द में ही चौंसठ स्तम्भ हो जिन पर तीन ऊँचे माड-कमरे साढ़े पाँच मंजिलों के होने चाहिए।

श्रीनिवासगृहलक्षणं —

पञ्चविंशतिपात्क्षेत्रै $_{25}$ **स्तम्भा: षट्त्रिंशदेव** $_{36}$ **च।**
पदिका तस्य भित्तिश्च चतुर्द्वारोपशोभिता ॥ 30 ॥
पादं पादं मुखभद्रं त्रयं भद्रं नवाङ्घ्रिकम् $_{9}$ **।**

श्रीनिवास नामक गृह में पच्चीस पाद के क्षेत्र में छत्तीस स्तम्भ बनाए जाएँ, जहाँ एक पद की भित्ति हो और उसमें चार द्वार बने हुए हों। एक-एक पद पर मुखभद्र या आगे की दीवार हो तथा तीन भद्र यानी तीन भित्ति नौ पद (स्तम्भों ?) वाली हो।

भद्रे द्वाविंशति: $_{22}$ **स्तम्भा** अष्टाशीतिश्चतुर्दिशम् $_{88}$ ॥ 31 ॥
सचतुर्विंशतिशतं $_{124}$ **स्तम्भा बाह्ये तथाऽन्तरे।**
तृतीयभूर्ध्वे **माडाश्च** सार्धपञ्चकभूमिका: ॥ 32 ॥

इति श्रीनिवास:।

प्रत्येक भद्र पर बाईस स्तम्भ हो जो चारों ओर से मिलाकर 88 हों। इसी प्रकार 124 स्तम्भ बाहर तथा भीतर बने होंगे। इसमें तीसरी मंजिल पर साढ़े पाँच मंजिल के माड या कमरे बनाए जाएँगे।

विमुक्तगृहलक्षणं —

पूर्वभद्रं नवपदं त्रिपदं मुखभद्रकम्।
भद्रेस्तम्भाश्चतुस्त्रिंशत्$_{36}$ षट्त्रिंशदुत्तरं **शतम्**$_{136}$ ॥ 33 ॥
बाह्याभ्यन्तरतः स्तम्भा द्वासप्तत्युत्तरं **शतम्**।
तृतीयभूर्ध्वे **माडाश्च** सार्धषट्भूमिकास्तथा ॥ 34 ॥

इति विमुक्तः।

विमुक्त नामक गृह में पूर्व की ओर की भित्ति नौ पद की और मुखभद्र-आगे की भित्ति तीन पद की तथा भद्रों-भित्तियों पर 34 स्तम्भ बनाए जाएँ जो कुल 136 होंगे। इसमें बाहर-भीतर के मिलाकर ये स्तम्भ 172 होते हैं। इसमें तीन मंजिलों की ऊँचाई पर साढ़े छह मंजिलों के माड-कमरे बनाए जाते हैं।

कुसुमशेखरगृहलक्षणं —

त्यक्त्वा भित्तिं मध्यक्षेत्रे सप्तांशैर्विस्तृतायतम्।
पञ्चविंशति$_{25}$**पाद्भद्रे त्रिकं च** मुखभद्रके ॥ 35 ॥
मध्ये स्तम्भाश्चतुःषष्टिः$_{64}$ षड्त्रिंशद्$_{36}$ **भद्रके तथा**।
बाह्याभ्यन्तरतः स्तम्भा अष्टाधिकशतद्वयम्$_{208}$ ॥ 36 ॥
तृतीयभूर्ध्वे **माडाश्च** सार्धषड्भूमिकाः **स्मृताः**।
पुष्पबाणादिकोपेतो भवेत्कुसुमशेखरः ॥ 37 ॥

इति कुसुमशेखरः।

मध्य क्षेत्र की भूमि को छोड़कर सात अंशों के विस्तार और आयत वाले— पच्चीस पाद के भद्र-भित्ति और मुखभद्र-आगे की भित्ति पर त्रिक् बनाए। मध्य में चौंसठ स्तम्भ तथा छत्तीस भद्रकों की रचना हों। इस तरह बाहर-भीतर के स्तम्भ 208 बनते हैं। इस पर तीन मंजिल की ऊँचाई पर साढ़े छह मंजिल वाले माड-कमरे बनाए जिन पर पुष्पबाणादि के चित्रों का अलङ्करण हो— ऐसा कुसुमशेखर गृह कहलाता है।

अथैन्द्रनीलगृहलक्षणं —

द्विपादमुखभद्राणि **त्रिपदं सर्वतो भवेत्**।
अष्टाविंशत्यधिकं$_{128}$ **च स्तम्भा भूम्यश्च पूर्ववत्** ॥ 38 ॥

इतीन्द्रनीलः।

इन्द्रनील नामक गृह में मुखभद्र-आगे की भित्ति तो दो पाद की होगी और तीन पाद यानी तीन भाग सर्वत्र हों। वहाँ 128 स्तम्भों की भूमि पहले की ही तरह बनाएँ।

विमानगृहलक्षणं —

पूर्वभद्राणि सन्त्यज्य त्रिभागैर्भद्रनिर्गमः।
भद्रं तदुभयपक्षे त्रिभागायामविस्तरः ॥ 39 ॥

विमान नामक गृह के लिए पूर्व की ओर भद्र (भित्ति) को छोड़कर भद्रों यानी भित्तियों का निर्गम तीन भाग का रखें और उसके दोनों पक्षों में भद्र बनाएँ जो तीन भागों के आयाम (विस्तार) वाली होगी।

षष्टिस्तम्भाः$_{60}$ प्रतिभद्रं चतुःषष्टिस्तु$_{64}$ मध्यमे।
शतत्रयं$_{103}$ च चत्वारः स्तम्भा बाह्ये तथान्तरे ॥ 40 ॥

इसमें प्रत्येक भद्र पर साठ स्तम्भ बनाएँ और चौंसठ स्तम्भ मध्य में बनाए तथा तीन सौ स्तम्भ चारों ओर बाहर-भीतर मिलाकर बनेंगे।

सार्धषड्भूमिकाश्चाथ भद्राणि श्रीगृहे तथा।
समस्तं पुष्पकाकारं विमानं नृपशान्तिदम् ॥ 41 ॥

इति विमानम्।

इस तरह साढ़े छह मंजिली श्रीगृहों की भित्ति पर समस्त पुष्पाकार विमान बनाया जाए जो राजाओं को शान्ति प्रदान करने वाला होता है।

दिग्भद्रगृहलक्षणं —

भद्रभद्रेषु सर्वेषु पदिकं मुखभद्रकम्।
पूर्वभूमिसमत्वेव नाम्ना दिग्भद्रकं च तत् ॥ 42 ॥

इति दिग्भद्रम्।

सभी भद्रों (भित्ति) पर मुखभद्र (आगे की भित्ति) एक पद से बनाएँ। इस तरह पूर्वकथित भूमियों से युक्त यह दिग्भद्र नामक गृह बनता है।

क्षोणीभूषणगृहलक्षणं —

चतुरश्री कृते क्षेत्र [1]करशतोद्ववेदाश्रकम्$_{108}$।
अष्टाष्टकविभक्ते तु गर्भः स्यात्सप्तभागतः ॥ 43 ॥
अष्टभागा भवेद् भितिश्चतुर्द्वारोपशोभिता।
पञ्चविंशत्यङ्घ्रि$_{25}$ भद्रं स्तम्भाः षट्त्रिंशदुत्तमाः$_{36}$ ॥ 44 ॥

क्षोणीभूषण संज्ञक गृह के लिए चौकोर समतल क्षेत्र में 108 गज के आयाम को आठ अष्टकों में विभाजित करें अर्थात् 64 पद का वास्तु बनाए जिसके गर्भस्थ

---

1. 'करशतोद्ववेदश्रुकम ?।' इति प्रकाशित पाठः।

ब्रह्मभाग सात भाग अर्थात् (7 × 7 = 49 पद) का हो। इसमें आठ भाग की भित्ति हो जिसमें चार द्वार हो और 25 पदों की भद्र-भित्तियाँ हों जिनमें 36 उत्तम स्तम्भ होने चाहिए।

प्रतिभद्रत्रिकं भद्रे षट् स्तम्भाः प्रतिभद्रके।
द्विःषट्त्रिंशच्चैव भद्रे भद्रेषु स्युर्द्विसप्तति: ॥ 45 ॥
तत्तुल्यानि च भद्राणि चतुःषष्टिस्तु$_{64}$ स्तम्भकाः।
तृतीयभूर्ध्वे माडाश्च सार्धं षड्भूमिकास्तथा ॥ 46 ॥

इति क्षोणीभूषणः।

भद्रों के प्रति त्रिक भद्र में 6-6 स्तम्भ प्रतिभद्र में बने हों जो 36 × 2 = 72 होते हैं अर्थात् इसी प्रकार प्रत्येक भद्र पर 72 होते हैं। उनके समान ही भद्रों-भित्तियों पर 64 स्तम्भ होते हैं। इनकी तीसरी मंजिल पर साढ़े छह मंजिले माड-कमरे बनाए जाते हैं।

गृहराजगृहलक्षणं —

प्रत्येकं त्रिपदं भद्रं मुखे कुर्यात्समन्ततः।
एकपादं मुखभद्रं सर्वदिक्षु तथाग्रतः ॥ 47 ॥
भद्रे स्तम्भास्तु षट्षष्टि$_{66}$श्चतुःषष्टिस्तु$_{64}$ मध्यतः।
गृहराजस्तु तन्नाम सार्धषड्भूमिकश्च सः ॥ 48 ॥

इति गृहराजः।

गृहराज भवन में प्रत्येक तीन पाद वाले भद्र-भित्ति के मुख पर अर्थात् आगे अच्छी तरह से एक पाद मुखभद्र यानी अग्रभिति चारों ओर बनाए। प्रत्येक भद्र पर 66 स्तम्भ और मध्य में 64 स्तम्भ बनाएँ। ऐसा गृहराज साढ़े छह मंजिला गृह होता है।

सिद्धिकामगृहलक्षणं —

नवपादं प्रतिभद्रं मुखभद्रत्रयं पदम्।
तृतीयभूर्ध्वे माडाश्च सार्धसप्तकभूमिकाः$_{7}$ ॥ 49 ॥

इति सिद्धिकामः।

सिद्धिकाम गृह के लिए प्रतिभद्र नौ भाग का होगा और मुखभद्र तीन भाग का होगा। इसमें तीन भूमि के ऊपर की ओर साढ़े सात मंजिल के माड़-कमरे होंगे।

नन्दिघोषलक्षणं —

कक्षयोर्भद्रभित्ती द्वे द्विपदौ कर्णयोस्तथा।
पदार्धेन भित्तिकोणमूर्ध्वे तु भूमिकावधि ॥ 50 ॥

भद्राग्रकर्णयोश्चैव पञ्चपात्स्वस्तिकाकृतिः।
दशभूर्ध्वे चैव शेषाः सुग्रीवसदृशास्तथा॥ 51॥

नन्दीघोष गृह के लिए दोनों बाजुओं में दो भद्र भित्तियां हो जो दो पदों की हो तथा कोनों पर भी ऐसी ही रचना होगी। इन भित्ति कोणों के ऊँचाई की ओर आधे पद से लेकर पूरी भूमिका अर्थात् मंजिल की ऊँचाई तक भद्रों के आगे वाले कोनों पर पाँच पदों वाली स्वस्तिक की आकृति वाली दस ऊँची ओर बने तथा शेष सभी सुग्रीव यानी सुन्दर ग्रीवाकृति के सदृश प्रतीति देने वाली रचना हो।

कर्णयोश्चैव चत्वारोऽन्तर्भागैश्च विनिर्गताः।
अशीति$_{80}$ स्तम्भभद्रैश्च सार्धसप्तकभूमिकाः॥ 52॥

इति नन्दिघोषः।

इसी प्रकार इनके चारों कोनों को अन्तर्भाग से निर्गत बनाएँ। यह भद्रों पर 80 स्तम्भों पर साढ़े सात मंजिला गृह बनेगा।

त्रिकूटगृहलक्षणं —

अचाल्यपक्षभद्राण्यश्चतारं मूलभद्रकम्।
निर्गमश्चैव षड्भागः$_{6}$ पूर्वभूमिसमोच्छ्रितः॥ 53॥

इति त्रिकूटः।

उभय पार्श्व या आजू-बाजू के पक्ष भद्रों की सीध में मूलभद्र से छह भाग निर्गत या निकला हुआ और पहले बताए गए मंजिलों की ऊँचाई हो तो त्रिकूटगृह बनता है।

वसुधाधरलक्षणं —

त्यक्त्वा च कर्णभद्राणि मूलभद्रविनिर्गतम्।
त्रिभागं नवनिष्काशं तादृग् भित्तिः पुनस्त्रिभिः॥ 54॥
षष्टिस्तम्भाः$_{60}$ प्रतिभद्रे चतुःषष्टिस्तु$_{64}$ मूलके।
तत्तुल्यं च भवेन्मध्ये सार्धसप्तकभूमिकाः॥ 55॥

इति वसुधाधरः।

वसुधाधर गृह के लिए कर्णभद्रों को छोड़कर मूलभद्र से निकले हुए तीन भागों में नौ निष्कास बनाएँ। उनके जैसी ही पुनः तीन भितियाँ बनाएँ। उनके प्रतिभद्र पर 60 स्तम्भ बनें। मूलभद्र पर भी 64 स्तम्भ उनके तुल्य ही मध्य में हो। इनके ऊपर साढ़े सात मंजिला भवन बनेगा।

श्रीतिलकगृहलक्षणं —

मध्यभित्ति परित्यज्य भद्रं भद्रेषु योजयेत्।
कार्याणि पक्षभद्राणि अग्रभद्रोपमानि च॥ 56॥
चत्वारि मुखभद्राणि चत्वारः कर्णसम्पुटाः।
सार्धसप्तकभूम्यश्च श्रीतिलकः स कामदः॥ 57॥

इति तिलकः।

मध्य की भित्ति को छोड़कर भद्रों के साथ भद्र को जोड़ें और आगे की भद्र-भिति के समान ही आजू-बाजू में पक्षभद्रों का निर्माण करें। चार मुखभद्रों पर यानी आगे की भित्तियों पर और चार कोनों के सम्पुट होंगे। इस प्रकार साढ़े सात मंजिला यह श्रीतिलक गृह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

उत्तुङ्गगृहलक्षणं —

भद्रं त्यक्त्वा सम्पुटे च षट्त्रिंशत्पद$_{36}$ संस्थितः।
मुखभद्रं नवपदमुत्तुङ्गः पूर्वभूमिकः॥ 58॥

इत्युत्तुङ्गः।

छत्तीस पद के वास्तु में भद्रों-भित्तियों का सम्पुट छोड़कर मुखभद्र यानी आगे की भित्ति को नौ पदों के प्रमाण में और पूर्वभूमि को (यथेष्ट उन्नत) मंजिलों की तरह उत्तुङ्ग यानी ऊँचा बनाए।

कमलोद्भवगृहलक्षणं —

चतुरश्रीकृते क्षेत्र दशधा$_{10}$ प्रविभाजिते।
एकाशीतिपदो गर्भो ह्यर्धभागा च भित्तिका॥ 59॥

सर्वप्रथम चौरस समतल क्षेत्र को दस भागों में विभाजित करें। वहाँ 81 पद का वास्तु बनाएँ। उसके गर्भ में आधे भाग की भित्तिका होती है।

सप्तसप्तपञ्चत्रीणि पदसङ्ख्या तु भद्रके।
स्तम्भा भद्रे चतुस्त्रिंशच्छतस्तम्भास्तु$_{304}$ मध्यतः॥ 60॥

सात-सात, पाँच और तीन पद संख्या के भद्रक भित्तियों पर स्तम्भ बनाएँ और 304 स्तम्भ मध्य में बनाएँ।

सार्धसप्तभूमिकाश्च नाम्ना स कमलोद्भवः।
पद्मपत्रोपमा चैव नित्यं श्रीस्तत्र क्रीडति॥ 61॥

इति कमलोद्भवः।

इस प्रकार साढ़े सात मंजिलों का यह कमलोद्भव गृह बनता है। उसकी उपमा या समानता पद्मपत्र जैसी होती है और वहाँ पर नित्य लक्ष्मी क्रीड़ा करती है।

रतिगृहलक्षणं —

सप्तचाऽऽयामविस्तारे भद्रं स्याच्च चतुर्दिशम्।
षट्पदानि प्रतिभद्रे त्रीणि त्रीणि च भद्रके॥ 62॥
चतुरशीति$_{84}$स्तम्भके च शतं वै गर्भमध्यतः।
तृतीयभूर्ध्वे माडाश्च सार्धसप्तकभूमिकाः॥ 63॥

इति रतिगृहः।

रतिगृह के लिए आयाम और विस्तार में सात और चारों दिशाओं में भद्र-भित्ति होगी। प्रतिभद्र पर छह पद और भद्र पर तीन-तीन तथा गर्भ के मध्य से 184 स्तम्भ हों। उनके ऊपर तीन माड-कमरे साढ़े सात मंजिलों के बनाएँ।

सिद्धार्थकगृहलक्षणं —

मुखभद्रं पुनर्दद्यात्सम्भद्वयविभूषितम्।
पूर्वभूमिगुणोपेतो भवेत् सिद्धार्थकः स च॥ 64॥

इति सिद्धार्थकः।

यदि मुखभद्र पर सुन्दर विभूषित दो स्तम्भ बनाएँ और पूर्व कथनानुसार ही मंजिलों युक्त भवन का निवेश किया जाए तो वह सिद्धार्थक संज्ञक होगा।

मन्मथगृहलक्षणं —

मुखभद्र परित्यज्य मूलभद्रं च पूर्ववत्।
अग्रकर्णे तु चत्वारि श्रीगृहाकारवत्तथा॥ 65॥

मन्मथ गृह के लिए मुखभद्र या सामने की भित्ति को छोड़कर पूर्ववत मूलभद्र का निवेश करें। उसके आगे चार कर्ण बनाए और श्रीगृहाकार रचना करें।

भित्तिकर्णलताश्चाष्टौ$_{8}$ द्विपदाश्च प्रकल्पयेत्।
चतुर्भूम्यूर्ध्वमाडांश्च तथा सार्धाष्टभूमिकाः॥ 66॥

इति मन्मथाः।

उस गृह में दो पदों के प्रमाणानुसार आठ भित्ति, कर्णलता को परिकल्पित करें। यह चार मंजिल पर माड-भवन से युक्त होगा जो कि साढ़े आठ भूमिका के होंगे।

शत्रुमर्दनगृहलक्षणं —

प्रतिभद्रे मुखभद्रं षट्स्तम्भैस्त्रिपदैस्तथा।

विच्छिन्नांश्च चतुःकर्णान् कुर्यात् प्रतापवर्द्धनम् ॥ 67 ॥
लक्ष्मीविलासके **चाऽग्रे भद्रे भद्रे** विच्छिन्नता।
अष्टौ माडास्तस्य बाह्ये महामाडो **ह्यधोभवः** ॥ 68 ॥

शत्रुमर्दन संज्ञक गृह के लिए प्रतिभद्र पर छह स्तम्भ और मुखभद्र पर स्तम्भ तीन पाद के बनाएँ। चारों कोनों को विच्छिन्न करने से प्रतापवर्द्धन तथा लक्ष्मीविलास के आगे की प्रत्येक भद्र में विच्छिन्नता होगी और उसके बाहर की ओर आठ माड-कमरे होंगे जबकि नीचे महामाड की रचना होगी।

चतुर्थभूम्यूर्ध्वमाडाः **स्युः** सार्धनवभूमिकाः।
शत्रून्यमर्दयते **शीघ्रं नाम्ना वै** शत्रुमर्दनः ॥ 69 ॥

इति शत्रुमर्दनः।

इसमें चौथी मंजिल पर साढे नौ मंजिल तक माड-कमरे बनेंगे— यह शत्रुमर्दन नामक गृह होगा क्योंकि ऐसे गृह शीघ्र ही शत्रुओं का मर्दन करने वाले सिद्ध होते हैं।

अन्यदप्याह —

छन्दा माडो मोडशुद्धौ **शेखरो** वेदसङ्ख्यकाः$_4$।
प्रोक्तास्तु राजवेश्मानि **वर्द्धन्ते** श्रीधरादितः ॥ 70 ॥

उक्त गृह रचना के प्रसङ्ग में यह ज्ञातव्य है कि श्रीधर से आदि में बढ़ते-बढ़ते माड़ों-कमरों के छन्दों से राजगृहों के मोड शुद्ध शेखरों की संख्या चार होती है।

सर्वे स्युस्ते समालिन्दा माडाश्छन्दाद् **भवन्ति ये।**
अत ऊर्ध्वे संवरणा घण्टाकलशभूषिताः ॥ 71 ॥

उन सभी के आलिन्द या खुले स्थान (बरामदे) समान होते हैं और माड छन्द भी समान होते है जिनके ऊपर संवरणायुक्त छत गुम्बज और कलशों से विभूषित बनाई जाती है।

क्षेत्रस्यात्र **दशांशेन** आदिभूमिः समुच्छ्रिता।
त्रिभागैश्चैव तद्भूमेर्द्वारस्य **तूदयो भवेत्** ॥ 72 ॥
आदिभूम्युदयार्धेन **पीठं चास्य** समुच्छ्रितम्।

यहाँ क्षेत्र के दशांश से आरम्भ होने वाली मंजिल उठती है। उस मंजिल के तीसरे भाग तक उसमें बनने वाले द्वार की ऊँचाई होती है। आदिभूमि यानी मंजिल के उदय या ऊँचाई से आधे तक के मान में उसका पीठा ऊँचा बनाएँ।

पीठोर्ध्वे भूमयः शेषा द्वादशांशेन$_{12}$ **ह्रासिताः** ॥ 73 ॥
दण्डच्छाद्यं मल्लच्छाद्यं मुखपत्रैर्विभूषितम्।

रिङ्गिणीपट्टसंयुक्तं कर्तव्यं मल्लच्छाद्यकम्॥ 74॥
वस्त्रवितानकोपेतं सुवर्णकलशान्वितम्।
तस्करसमराद्यं च भेदं यत्नेन वर्जयेत्॥ 75॥

इसी प्रकार पीठा के ऊपर की ओर शेष मंजिलों को बारहवें भाग जितना कम करते जाए। तदनन्तर उस पर दण्डछाद्य (बल्ली की छत) या मल्ल (खोर, चूना-गिट्टी का मिश्रण जिसे मेवाड़ आदि में मरड़ा कहा जाता है) की छत बनाकर उसे मुखपत्रों से विभूषित करे। इसके अतिरिक्त, रिङ्गिणीपट्ट (सागवान या महुए के पटियों) से ढककर मल्ल की छत भी बनाई जा सकती है।[1] वस्त्र का वितान बनाकर अर्थात् कपड़े के तम्बू छोलदारी बनाकर उन पर सोने के कलशों से सजावट करें परन्तु यह भी ज्ञातव्य है कि तस्कर-चोरों और आतङ्कियों को यत्न से रोकने का प्रयास भी करना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवचार्योक्तापराजितपृच्छायां महाराजगृहमाडलक्षणाधिकारो नाम सप्ताशीतितमं सूत्रम्॥ 87॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में महाराज गृह माड लक्षण अधिकार नामक सत्तासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 87॥

धारागिर्युद्यानलक्षणमष्टाशीतितमं सूत्रम्॥ 88॥

अथ धारागृहवाटिकालक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

धारागृहं प्रवक्ष्यामि वाटिकानां च लक्षणम्।
पुरस्यान्तरतो वत्स ज्ञात्वा भूमिं विशोधयेत्॥ 1॥
वाटिका रोपयेत्तत्र ज्येष्ठ-मध्य-कनिष्ठिकाः।

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं फव्वारों से युक्त स्नानगृह-धारागृह और वाटिका, उद्यानों के लक्षण बताता हूँ। हे वत्स! नगर के अन्तर पर ही यानी पास ही अच्छी विशोधित भूमि का पता लगाकर वहाँ पर वाटिकार्थ पेड़-पौधों का रोपण करना चाहिए। उक्त वाटिका के (1.) कनिष्ठ, (2.) मध्यम और (3.) कनिष्ठ तीन भेद हैं।

तस्य प्रमाणमाह —

धनुःशतत्रये$_{300}$ ज्येष्ठो मध्या धनःशतद्वयात्$_{200}$॥ 2॥

---

1. इन श्लोकों में आए दण्डछाद्य मेवाड़-मालवा में दाण्डा-वलिण्डा के नाम से आज तक प्रचलित है। मल्ल छाद्य को देहात में आज भी मरड़ा करना कहा जाता है और रिंगिणीपट्ट को छान-हरावणी कहा जाता है। इसमें पटियों के साथ ही कवेलू से छत को आच्छादित कर मल्ल या मरड़ा लगा दिया जाता है।

धनुः शतैः$_{100}$ कनिष्ठा स्याच्चतुरश्रा च भूमिका।

वाटिकाओं में ज्येष्ठ बगीचे का विस्तार तीन सौ धनुष प्रमाण का, मध्यम बगीचे का दो सौ धनुष और तृतीय बगीचे का विस्तार प्रमाण सौ धनुष का होगा अर्थात् ज्येष्ठ बगीचे का विस्तार या आयाम 300 × 4 = 1200 गज; मध्यम बगीचे का आयाम 200 × 4 = ८00 गज तथा कनिष्ठ बगीचे का विस्तार 100 × 4 = 400 गज होगा।

सषण्णवतिशतपाद्$_{196}$ वास्तौ देवान् समर्चयेत्॥ 3॥
योगिनीर्दश नाम्ना[1] च ब्रह्माणं च कुमारिकाः।
सूत्रधारमथाचार्यं क्षेत्रपालं च भैरवम्॥ 4॥
विश्वकर्मा ततः पूज्यो दिक्पाला लोकपालकाः।
गणनाथश्चण्डिका च तस्य क्षेत्रस्त देवताः॥ 5॥

इन बगीचों के लिए 196 पदीय वास्तु (मण्डल-विन्यास) बनाएँ जिसमें वास्तु-देवताओं की अर्चना करें। इसके अन्तर्गत दसों नाम वाली योगिनियों, ब्रह्मा, कुमारिकाओं, सूत्रधार, आचार्य और क्षेत्रपाल, भैरव, विश्वकर्मा, दिक्पाल, लोकपाल, गणनाथ, चण्डिका और उस क्षेत्र-विशेष के देवता (भौमियाँ, खेतरपाल, राड़ा आदि स्थानीय ग्राम्य देवता) इसमें पूजे जाएँ।

क्षमापयेत् सर्वदेवान् ततः कर्म समाचरेत्।
विविधक्षेत्रमानेन तत्र वास्तुं प्रकल्पयेत्॥ 6॥

उक्त पूजा के उपरान्त क्षमापन सभी देवताओं के सम्मुख करें और एतद्विषयक कृत्य सम्पन्न करें। इसके बाद, वहाँ क्षेत्रमान के अनुसार विविध वास्तु रचनाओं को परिकल्पित करना चाहिए।

धारासञ्ज्ञमण्डपं —

ब्रह्मक्षेत्रे प्रकर्तव्यं धाराख्यं मण्डपं शुभम्।
केतकीबहुलारम्भाः पुष्पजातिरनेकधा॥ 7॥

---

1. 'योगिनीर्दश नाना ?' इति प्रकाशित पाठः। 'योगिन्योऽष्ट नाम्ना' स्यात्। कालिकापुराण में आठ योगिनियों का उल्लेख है जबकि मयदीपिका, स्कन्द, अग्नि, मत्स्यादि पुराणों में चौंसठ योगिनियों का नाम आया है। यथा— ततोऽष्टपत्रेष्वब्जस्य पूजयेदष्टयोगिनीः॥ शैलपुत्रीं चण्डघण्टा स्कन्दमातरमेव च। कालरात्रिञ्च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत्॥ चण्डिकामथ कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम्। महागौरीं चाग्निकोणे नैर्ऋत्यादिषु पूजयेत्॥ (कालिकापुराण 54, 44-46) अर्थात्— अष्टदल कमल में शैलपुत्री, चण्डघण्टा, स्कन्दमाता एवं कालरात्रि का क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में और चण्डिका, कूष्माण्डा, कात्यायनी एवं महागौरी का क्रमशः अग्नि कोण, वायव्य, नैर्ऋत्य एवं ईशान कोण इन उपदिशाओं में क्रम से पूजन किया जाना चाहिए।

(उक्त वास्तुपद विन्यास के) ब्रह्मक्षेत्र में धारा नामक मण्डप बहुत सुन्दर तरीके से बनाए अर्थात् बगीचे के क्षेत्र के बीचो बीच बड़ा-सा फव्वारों से युक्त स्नानगृह या 'सावन-भादौ' नाम जैसे वर्षा करने के यन्त्रों की व्यवस्था वाला मण्डप बनाएँ। इन मण्डपों के चारों ही ओर बहुत से केतकी, केला तथा अन्य अनेक जातियों के पुष्पादि लगाएँ।

तत्र पदानुसारेण रोपणीयद्रुमादीनां —

श्रीजातिस्तु लवङ्गानि एलाकर्पूरपादपाः।
चन्दनाश्चैव कङ्कोला ब्रह्मस्थाने प्रकल्पिताः॥ 8॥

श्रीफल या बिल्व, जाति या चमेली, लवङ्ग, इलायची, कर्पूर पादप, चन्दन और कङ्कोल— इन सब पौधों को ब्रह्मस्थान अर्थात् बगीचे के मध्य भाग में लगाए।

प्राच्यामुत्तरपर्यन्तं वास्तुकारो निवेशयेत्।
विटपाद्रिलतावल्लीः [1]कुर्याद् वै वास्तु स्थिताः॥ 9॥

पूर्व से लेकर उत्तर दिशा तक के भाग में वास्तुकार अर्थात् निर्माण कार्य, भवनादिकों का निवेश करें। बगीचे में विटप आदि लताओं को वास्तु पद विन्यास में बताए गए स्थानों के अनुसार लगाएँ।

अर्यमादिक्रमानुसारेण रोपणीयपादपाः —

स्थानेऽर्यम्णस्तु नारङ्गाः सचितुर्नलिकानि च।
सावित्रे च पदेऽक्षः स्याद् दाडिमास्तु विवस्वतः॥ 10॥
कुर्यात् शीतलं चैन्द्रेऽशोकमेन्द्रजये पदे।
मैत्रस्थाने च जम्बीरा रुद्रे तालतमालकाः॥ 11॥

वास्तुपदानुसार[2] अर्यमा के पद पर नारङ्गी, सविता के स्थान पर नलिका अर्थात् कमल तथा सावित्री के पद पर अक्ष अर्थात् बहेड़ा का पौधा, विवस्वत के पद पर दाड़िमों के पौधे, इन्द्र के पद पर शीतल अर्थात् चन्दन, इन्द्रजय के पद पर अशोक, मैत्रस्थान पर जम्बीर अर्थात् चकोतरा का पौधा और रुद्र के पद पर ताड़ एवं तमाल के वृक्ष लगाएँ।

---

1. 'कुर्याद् द्वौसता ? स्थिताः' इति प्रकाशित पाठः।
2. यहाँ वास्तुपदानुसार पौधशाला या उद्यानिकी का यह प्राचीन विचार है। वामनपुराण में नक्षत्रानुसार पौधों के उत्पत्ति प्रसङ्ग आए हैं। इन वास्तुपदों पर पौधों का रोपण कर वास्तु में होने वाले दोषों का निवारण भी सहजता पूर्वक किया जा सकता है। यह अनुभूत भी है। जिनके गृहों में पदों के अनुसार कोई दोष उत्पन्न होता हो, तो वहाँ पर भवन के अन्दर या बाहर ये पौधे लगाए जा सकते हैं।

अन्यदप्याह —

रुद्रदासेऽभयां प्राज्ञ आसूकं भूधरे पदे।
विद्यान्मधूकमापे **च आपवत्से च** चम्पकम्॥ 12॥
माहेन्द्रे मण्डपं कार्यं कदलीवनशोभितम्।
गृहक्षते च बृहतीं द्राक्षामण्डपमुत्तमम्॥ 13॥
पत्रैरलङ्कृतं **चाक्षवृक्षैः** सावित्रमाश्रितैः।
... ... ॥ 14॥
अम्बालिकापुष्पयुक्तं **पुष्पदन्ते तु मण्डपम्।**
आदित्ये जलपत्रं च स्थलपद्मोपशोभितम्॥ 15॥

इसी प्रकार वहाँ रुद्रदास के पद पर अभया (हरितकी), भूधर पद पर आसूक (? आलूक), आप के स्थान पर मधूक या महुआ, आपवत्स के पद पर चम्पक, माहेन्द्र के पद पर कदलीवन या केलों के बगीचे से शोभित मण्डप बनाएँ। गृहक्षत के पद पर बृहती (कण्टकारी या भटकैया) एवं उत्तम द्राक्षा मण्डप बनाएँ। सावित्र के पद पर पत्तों से अलंकृत अक्ष (बहेड़ा) के वृक्षों को लगाएँ...। पुष्पदन्त के पद पर अम्बालिका (अम्बष्ठा या अम्बाड़ी) का पुष्पयुक्त मण्डप बनाएँ और आदित्य के पद की जलपत्र और स्थलपद्मों से शोभा बढ़ानी चाहिए।

अन्यदप्याह —

क्रीडापुष्करिणि **कार्या नागवल्ली च वारुणे।**
तथा भल्लाटके वंशाः प्रोक्ताः पातालमापकाः॥ 16॥

वरुण के पद पर क्रीड़ा-पुष्करिणी अर्थात् तरणताल बनाएँ और नागवल्ली-नागरबेल लगाएँ। भल्लाट के पद स्थान पर बांसों के पौध लगाएँ जो पाताल तक गहरे जाकर (? अथवा सात-सात हाथ के प्रमाणयुक्त) माप के हों।

अन्यदप्याह —

द्राक्षाभिर्मण्डपं **सौम्ये** नारिकेलोपशोभितम्।
ईशाने शिववृक्षं च देवदारुं प्रकल्पयेत्॥ 17॥
हयमारं चक्रचारं पर्जन्ये नाऽत्रसंशयः।
जये कदम्बोऽश्वत्थश्च सत्ये कुर्याच्च पाटलान्॥ 18॥

सौम्य के पद पर द्राक्षा-मण्डप और नारियल के पौधे लगाएँ। ईशान के पद पर शिववृक्ष-बरगद और देवदारु लगाएँ। पर्जन्य के पद पर हयमार (गन्धयुक्त करवीर

कनेर) के वृक्ष और अशोक वृक्ष चक्रवार लगाएँ। जय के पद पर कदम्ब और अश्वत्थ के वृक्ष लगाए, सत्य के पद पर पाटल (गुलाब) के पौधे लगाएँ।

अन्यदप्याह —

भृशे श्यामलिका ज्ञेया न्यग्रोधाश्चान्तरिक्षके।
इन्द्रपुष्पास्तथा चाग्नौ ईश्वरी चैव पूषणि॥ 19॥
जम्बूवृक्षश्च वितथे गन्धर्वे च हरीतकी।
आकीर्णाः पनसा भृङ्गे खर्जूरा मृगराण्मुखे॥ 20॥

इसी प्रकार भृश के पद पर श्यामलिका (नील), अन्तरिक्ष के पद पर न्यग्रोध (वटवृक्ष), अग्नि के पद पर इन्द्रपुष्प (लाङ्गली), पूषा के पद पर ईश्वरी (लिङ्गिनी, बन्ध्या कर्कोटकी जा रुद्रजटा) की पौध, वितथ के पद पर जम्बू वृक्ष, गन्धर्व के पद पर हरितकी या हरड़े, भृङ्ग के पद पर पनस वृक्षों के समूह (कटहल वृक्षों का कुञ्ज), मृगराज के पद पर खजूर के पेड़ लगाएँ।

अन्यदप्याह —

हिङ्गुल्युदुम्बरौ पित्र्ये तिलको नन्दिके तथा।
शुभाः कपित्थाः सुग्रीवे भू? पाखोटैस्तथाऽसुरे॥ 21॥
शेषे पिप्पलिका ज्ञेया शिरीषा पापयक्ष्मके।
औषधी रोगसंस्थाने नागे [1]टङ्कारिपाटलाः॥ 22॥

पितृ के पद पर हिङ्गुलु और उदुम्बर के वृक्ष, नन्दी के पद पर तिलक के सुन्दर पुष्पों वाले वृक्ष, सुग्रीव के पद पर शुभ कपित्थ या कैथ के फलदार वृक्ष, असुर पद स्थान पर अखरोट, शोष के पद पर पिप्पलिका, पापयक्ष्मा के पद पर शिरीष या सरस वृक्ष, रोग के पद पर औषधियाँ, नाग के पद पर टङ्कारि के पाटल (विस्मयकारी पाटल) के पौधे लगाएँ।

अन्यदप्याह —

मुखे च वंशतिलकाः शैले वै बीजपूरकाः।
अदितौ ग्रन्थिपर्णश्च कुङ्कुमश्चाधिको भवेत्॥
शतपत्रं दितौ ज्ञेयं शेषां वै पदबाह्यतः।

---

1. काशीखण्ड में आया है— टीकिताशेषपाताला टङ्किकैलोऽद्रिपाटले। टङ्कारनृत्यत्कल्लोला टीकनीया महातटा॥ (काशी. 29, 69, शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत खण्ड 2, पृष्ठ 571) राजनिर्घण्ट के अनुसार यह औषध-गुणवाचक पर्याय भी है जो कि वात, श्लेष्म, शोफोदर व्याधिनाशक के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मुख्य के पद पर वंशतिलक, शैल के पद पर वीजपूरक या बिजौराफल, अदिति के पद पर ग्रन्थिपर्ण (गाँठियाला, वर्हिपुष्प या कुक्कुर) और कुङ्कुम, दिति के पद पर शतपत्र या पद्म लगाएँ तथा शेष वृक्षों को उक्त पद-विन्यास के बाहर की ओर लगाना चाहिए।

तथा चान्यनिर्देशादीनां —

महेन्द्रादित्ययोर्द्वारं प्रतिसन्धौ न संशयः ॥ 24 ॥
प्रवेशो निर्गमस्तावद् ज्ञातव्यस्तु सदा बुधैः।
विषवृक्षैस्तथा रक्ष्यः कटुकैः कण्टकान्वितैः ॥ 25 ॥
देवतापदवृक्षांश्च योऽन्यथा विनियोजयेत्।
तस्य राष्ट्रे शरीरे च निर्दिशेद्रोगतो भयम् ॥ 26 ॥

महेन्द्र, आदित्य के पदानुसार द्वार पर तथा प्रतिसन्धों पर; प्रवेश और निर्गम मार्ग पर सभी समझदार लोगों को यह ज्ञातव्य-घोषणा लगवानी या करवानी चाहिए कि जो कोई विष वृक्षों, रक्ष्य वृक्षों तथा कटु और कण्टकयुक्त वृक्षों या देवता के पद के योग्य वृक्षों को विपरीततः लगाएगा तो उस राष्ट्र रूपी शरीरों में उनसे रोग होने का भय पैदा होगा। अस्तु, मार्गों पर कोई अनुपयुक्त वृक्ष न लगाए।

ईदृशेन विधानेन उद्यानं यस्तु कारयेत्।
लभते शाश्वतान् भोगान् यथेन्द्रश्चामरालये ॥ 27 ॥

इस प्रकार के विधानानुसार ही उद्यानों का निर्माण कराना चाहिए ताकि शाश्वत भोगों का लाभ हो और भूतल पर भी हम ऐसे निवास कर सकें जैसे देवराज इन्द्र अपने स्वर्ग-अमरालय में सुखानन्दपूर्वक रहता है।

यदि न प्राप्यते वत्स! चन्दनादि महीतले।
सुलभास्तत्र संयोज्याः प्रशस्ता लक्षणान्विताः ॥ 28 ॥

हे वत्स! यदि वाटिका में लगाने के लिए चन्दनादि जैसे वृक्ष उस क्षेत्र में उपलब्ध न हो सके तो जो भी सुलभ वृक्ष प्रशस्त लक्षणों वाला वहाँ मिल सके, उन्हें (वैकल्पित तौर पर) संयोजित करना चाहिए।[1]

---

1. इस सम्बन्ध में जिज्ञासुजनों को पं. चक्रपाणि मिश्र कृत विश्ववल्लभ, सुरपाल रचित वृक्षायुर्वेद, शार्ङ्गधर पद्धति की वाटिका विनोद, काश्यप मुनि कृत काश्यपीयकृषिसूक्ति, पराशर कृत कृषि पराशर, सोमेश्वर कृत मानसोल्लास का अवलोकन किया जाना चाहिए।
वृक्षारोपण के लिए श्रीपति का मत है कि विशाखा, मूल, मृदु (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती), ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी), शतभिषा, क्षिप्रसंज्ञक (हस्त,

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवचार्योक्तापराजितपृच्छायां
धारागिर्युद्यानलक्षणाधिकारो नामाष्टाशीतितमं सूत्रम् ॥ 88 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में धारागृह उद्यान लक्षण अधिकार नामक अठासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 88 ॥

जलयन्त्रलक्षेणकमेकोननवतितमं सूत्रम् ॥ 89 ॥

अथ जलयन्त्रार्थपदवास्तु। विश्वकर्मोवाच —

पदैर्द्वादशभिर्वास्तु योजयेज्जलयन्त्रके।
पदस्थाने तथा देवान् पश्चात् कर्म समाचरेत् ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि जलयन्त्र[1] के लिए बारह भाग का वास्तुपद बनाए और प्रत्येक पदस्थान के देवताओं की स्थापना करने के उपरान्त ही कार्य आरम्भ करें।

कृते सप्तपदे$_{7}$ क्षेत्रे ब्राह्यभद्रं पदत्रये।
विंशति$_{20}$स्तम्भसम्युक्तं पदिका स्तम्भशालिका ॥ 2 ॥

सात पदों के क्षेत्र पर बाहरी भित्ति तीन पदों की हो, इस तरह बीस स्तम्भों से युक्त पदों की स्तम्भ शाला बनाएँ।

मध्ये चतुष्किका कार्या ब्रह्मणः पदमाश्रिता।
वेदिकास्तत्र कर्तव्याश्चतुर्विंशतिपाद्युताः$_{24}$ ॥ 3 ॥

इसके मध्य में ब्रह्मपद स्थान में चौकी बनाएँ और वह वेदिका चौबीस पदों की बनाई जाएगी।

वास्तुं प्रपूजयेत्प्राज्ञो जलयन्त्रोचितं तथा।
षोडशा$_{16}$ङ्घ्रिसमायुक्तमन्यथा दोषकृद् भवेत् ॥ 4 ॥

वहाँ पर जलयन्त्र के उद्देश्य से समुचित वास्तु पूजन करें जो सोलह पदों वाला हो (अर्थात् 256 वास्तु)। अन्य प्रकार का पद-वास्तु दोषप्रद होता है।

चतुरश्रं समं क्षेत्रं स्तम्भैर्द्वादशभिर्युतम्$_{12}$।
पद्माकृति शुभं मध्ये जलयन्त्रं तु सुव्रत ॥ 5 ॥

अश्विनी, पुष्य) इन चौदह नक्षत्रों में लताओं, औषधिओं और वृक्षों का रोपण करना चाहिए— सावित्रतिष्याश्विनवारुणानि मूलं विशाखा च मृदुध्रुवाणि। लतौषधीपादपरोपणेषु शुभानि भानिप्रतिपादितानि ॥ (ज्योतिषरत्नमाला 4, 34)

1. जलयन्त्रों के विविध प्रकारों का वर्णन समराङ्गण. के 31वें यन्त्राध्याय में आया है।

अनभावृष्टिः कर्तव्या आयुधास्तुसमन्वितम्।[1]
नानाविचित्ररूपाणि चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत्॥ 6॥

चौकोर समतल क्षेत्र में बारह स्तम्भ हो और मध्य के भाग में पद्म की आकृति बनाकर जलयन्त्र सुव्रत यानी पूरी गोलाई में लगाए। बिना आकाश के बादलों के ही जलवृष्टि उस जलयन्त्र से सम्भव होगा यदि नाना विचित्र रूपों के आयुधों से यह जलयन्त्र समन्वित होगा। ये क्षेत्र की चारों दिशाओं में प्रकल्पित करके योजनानुसार लगाए जाएँगे।

सप्तभागविभाज्यनिर्देशमाह —

चतुरश्रीकृते क्षेत्र सप्त$_7$भागविभाजिते।
भद्राणि त्रिपदानि स्युः कोणे कूपाश्च कारयेत्॥ 7॥
विषमाः कूपिकाः कार्याः समा वै दोषदास्तथा।
यन्त्रतो द्विगुणोच्छ्रायं त्रिगुणं च तथायते॥ 8॥
अधस्तात्तु पुनर्मध्ये धाराख्यं मण्डपं शुभम्।
स्तम्भैर्द्वादश$_{12}$भिर्युक्तमेकेन कलशेन च॥ 9॥

इसके लिए किसी चौकोर क्षेत्र को सात भागों में विभाजित करें। उसके तीन पदों तक के भाग में भद्राणि-भितियाँ बनाए और क्षेत्र के कोनों में कूप खनन करके निर्माण करें। ध्यान रहे कि वहाँ विषय संख्या में बनी कूपिकाएँ ठीक होती है जबकि सम संख्या में बनी दोषकारक मानी गई हैं। यन्त्र के आयत से उसकी ऊँचाई दुगुनी या तीन गुनी रखें और उस यन्त्र के नीचे भी पुनः मध्य में धारा नामक मण्डप बनाएँ। उसके बारह स्तम्भों पर एक-एक कलश होगा।

अथारघट्टयन्त्रवर्णनं —

चतुष्किाश्चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ स्तम्भौ च कल्पयेत्।
करोटकं समायुक्तं कलशैश्चैकषष्टिभिः$_{61}$॥ 10॥
रथिकाकूटघण्टाभिः सुवृत्तं शुकनासकैः।
भ्रमच्च दर्शयत्तोयं विचित्रैर्मणिकुट्टिमैः॥ 11॥
तद्बाह्यतस्तु प्राकारं कपिशीर्षविवर्जितम्।
हट्टयन्त्रसमाकीर्णं सजलैः सारणैर्युतम्॥ 12॥

उसकी चारों दिशाओं में दो-दो स्तम्भों वाली चौकियाँ बनाए जिन पर कटोरों

---

1. 'आयुवास्तुसमन्विताम ?।' इति प्रकाशित पाठः।

के आकार के कलश-अर्थात् घेड़ें 61 की संख्या में बाँधे और रहट की रथिका का भ्रमणपथ पूरी गोलाई में हो। उस पर घूमट (घण्टाभि) का कूट समूह हो तथा पथ पक्का (मणि कुटिम) कङ्करीट से बना हो। उस गोल पथ के बाहर दीवार बनाएँ जिस पर कँगूरे-कपिशीर्ष नहीं बनाएँ। इस प्रकार का यह रहट्टयन्त्र-आधुनिक रहट का समूह जल से सभी सारणों यानी नालियों-नहरों को भर देता है।[1]

परिखाप्रमाणमाह —

परिखा तत्र बाह्ये तु सप्तहस्तप्रमाणतः।
काननं त्वेवमाख्यातं नृपाणां क्रीडनार्थकम्॥ 13॥
ग्रीष्मे क्रीडां प्रकुर्वन्ति नृपा नरसमन्विताः।
षण्डालीनां[2] च मध्यस्थं प्रविष क्रीडमानसैः॥ 14॥

बाग-बगीचे के बाहर की ओर सात गज के प्रमाण की चौड़ाई में खाई बनाएँ। इस तरह राजाओं के क्रीड़ा मनोरञ्जन के लिए कानन-बाग बनाया जाएगा। ग्रीष्म ऋतु में राजा लोग अन्य दरबारी लोगों के साथ क्रीड़ार्थ तालाबों के मध्य में प्रवेश करके मनोविनोद करते हैं।

दर्शयन्ति विचित्राणि रूपाणि चैव मूर्ध्वतः।
सर्वाङ्गश्रोतसः सन्धौ वृष्टिं कुर्वन्ति मेघवत्॥ 15॥

वे वहाँ पर विचित्र रूपों में ऊपर बने हुए फव्वारों (सर्वाङ्गश्रोतसः सन्धौ) से मेघ वर्षा के समान वृष्टि देखते हैं।

अवृष्टिगर्जिताः शब्दा विद्युदुद्योतकान्विताः।
एवमायासतो ग्रीष्मे पर्यटन्ति नृपा मुदा॥ 16॥

इसी प्रकार वहाँ बिना वृष्टि के भी गरजने के शब्द करते तथा बिजली चमकाते हुए इस प्रकार पूरे ग्रीष्म में राजा लोग मुदित हो पर्यटन करते हैं।

---

1. यशोवर्मन् के मालव संवत् 589 तद्नुसार 532 ई. के मन्दसौर अभिलेख में अरहट्ट यन्त्र का वर्णन कूप सहित इस प्रकार आया है कि जब तक समुद्र अपनी तरङ्ग रूपी भुजाओं से अपनी किरणों से कान्तिमान और समुद्र से अपने सम्पर्क के कारण उत्तरोत्तर सुन्दर होते सम्पूर्ण चन्द्र का आलिङ्गन करता रहेगा तब तक राजप्रासाद की उत्तुङ्गता की शोभा से युक्त यह सुन्दर कूप, मुण्डमालावत् वलयाकृत गति के द्वारा अमृतवत् स्वच्छ जल निःस्रत करता हुआ विद्यमान रहेगा— यावत्तुङ्गैरुदन्वान्किरणसमुद्रथं सङ्क्रान्तं तरङ्गैरालिङ्गन्निन्दुबिम्बं गुरुभिरिव भुजैः संविधत्ते सवृत्ताम्। बिभ्रत्सौधान्तलग्नवलयपरिगतिं मुण्डमालामिवायं सत्कूपस्तामममृतसमरसस्वच्छविष्यन्दिताम्बुः॥ (कॉरप्स इंस्क्रिप्शंस इण्डिकेरम्, खण्ड 3, पृष्ठ 150-151)
2. 'धडालीनां' इति प्रकाशित पाठः।

वस्त्रालङ्कारकैर्यैस्तु प्रविशन्त्युदकेषु च।
तत्सर्वं सूत्रधारेषु दातव्यं तु मुदान्वितैः॥ 17॥
अन्येषां राजप्रासादे ग्रामं दद्यात् स्वराष्ट्रके।
कृत्वा क्रीडां नृपश्चेत्थं वासन्ते च महोत्सवे॥ 18॥

(पहली बार) जिन वस्त्र और अलङ्कारों सहित राजा तालाब के जल में क्रीड़ार्थ प्रवेश करते हैं, वे सब स्नानोपरान्त मुदित मन से सूत्रधार को दान कर देना चाहिए जिसने ऐसी तालाब की अनुरञ्जनप्रद व्यवस्था की। शिल्पियों को भी राजा की प्रसन्नता स्वरूप अपने राष्ट्र के ग्रामों का दान करके राजा लोग इस प्रकार वसन्तोत्सव की क्रीड़ा करके महोत्सव मनाया करें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवचार्योक्तापराजितपृच्छायां जलयन्त्रलक्षणमण्डपद्वाराधिकारो नामैकोननवतितमं सूत्रम्॥ 89॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में जलयन्त्रलक्षण मण्डपद्वार अधिकार नामक निवासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 89॥

वैद्यशालालक्षणं[1] नवतितं सूत्रम्॥ 90॥

अथ राजवेश्माश्रितवैद्यशालावर्णनं। विश्वकर्मोवाच —

वैद्यशालाः प्रवक्ष्यामि आश्रिता राजवेश्मनि।
द्वात्रिंश$_{32}$द्धस्तविस्ताराश्चतुर्वृद्धिरनुक्रमात्॥ 1॥
मण्डपा नव सङ्ख्याताश्चतुःषष्ट्यन्त$_{64}$ हस्ततः।
पृथगेकैकशः प्रोक्ताः कथयिष्यानुक्रमम्॥ 2॥
मण्डपा द्वार एवोक्ताः प्राकारपरिवेष्टिताः।
अग्रे च पोलिकायुक्ताः कपाटैश्च दृढार्गलाः॥ 3॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं राजमहलों के आश्रित वैद्यशाला के विषय में कहता हूँ। इसमें बत्तीस गज के विस्तार से यदि क्रमशः चार-चार गज की अभिवृद्धि करते जाए तो नौ मण्डपों तक चौंसठ गज विस्तार हो जाएगा। इनको मैं पृथक्-पृथक् एक-एक के अनुक्रम से कहता हूँ। यहाँ जो मण्डप कहे गए हैं, द्वारों

1. 'वाद्यशाला' इति प्रकाशित पाठः। मत्स्यपुराण में राजधर्म वर्णन में सहायकों के क्रम में वैद्यलक्षण व आवश्यक उपस्कारकों का निर्देश किया गया है। यह वर्णन उसी का उत्तरवर्ती है। इसमें वैद्यशाला के साथ ही खनन, प्रद्रावण की विधि भी आई है। धातु विज्ञान के अध्येताओं के लिए यह वर्णन विशेष महत्व का है।

और प्राकारों-परकोटों से वेष्टित होते हैं जिनके आगे पोलिका-पोल दृढ़ किंवाड़ों और अर्गला से युक्त होते हैं।

मण्डपनामानि —

विमानः पुष्पको भद्रो गरुडश्चारुवर्द्धनः।
सिद्धिकामो रसः कान्तो विचित्रस्तेजस्सम्भवः॥ 4॥
मण्डपा न व चेत्येवं विमानाद्याः प्रकीर्तिताः।

इन मण्डपों में (1.) विमान, (2.) पुष्पक, (3.) भद्र, (4.) गरुड, (5.) चारुवर्धन, (6.) सिद्धिकाम, (7.) रसकान्त, (8.) विचित्र और (9.) तेजसम्भव— ये नौ मण्डप विमानादि से कहे गए हैं।[1]

द्वात्रिंश$_{32}$द्धस्तकश्चाद्यः क्रमाद्वृद्धिश्चतुःकरैः॥ 5॥
चतुःषष्टिकराः$_{64}$ अन्ते द्वात्रिंशद्धिर्विमानकाः$_{32}$।
अन्ते तेजस्सम्भवाख्यश्चतुःषष्टिकरैश्च$_{64}$ सः॥ 6॥

ये प्रारम्भ में 32 गज के होकर क्रमशः चार-चार गज की वृद्धि प्राप्त करते हुए अन्त तक 64 गज के हो जाते हैं। इस प्रकार बत्तीस विमान अन्त में तेजसम्भव नाम के विमान तक पहुँचते-पहुँचते 64 गज तक के हो जाते हैं।

तत्रैव वेद्यादीनां प्रमाणमाह —

मध्ये च वेदिकां कुर्यादष्टहस्तप्रमाणतः$_{8}$।
तत्रैव स्थापयेद् देवं भैरवं योगिनीस्तथा॥ 7॥
देवीश्च क्षेत्रपालं च जिनेन्द्रसिद्धमूर्तिकाः।
देवक्रमात्पूजयेच्च योगिनीश्च कुमारिकाः॥ 8॥
विप्रादान्दर्शयच्चैव स्थावरं जङ्गमं तथा।
तदाज्ञा च गृहीतव्या तत्र कर्म समाचरेत्॥ 9॥

(इसके बाद, निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिए) मध्य में आठ गज की प्रमाण वाली वेदी बनाएँ और उसके ऊपर भैरवदेव और योगिनियों की स्थापना करें। देवियों, क्षेत्रपाल, जिनेन्द्र-सिद्धों (अर्हतों) की मूर्तियों की देवक्रमानुसार पूजा करें। योगिनियों

---

1. रसरत्नसमुच्चय में आया है कि रसशाला के समीप रसमण्डप होने चाहिए, इनकी रचना और अलंकरण के क्रम में कहा गया है : अत्यन्तोपवने रम्ये चतुर्द्वारोपशोभिते॥ तत्र शाला प्रकर्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा। सम्यग्वातायनोपेता दिव्यचित्रैर्विचित्रताम्॥ तत्समीपे समे दीप्ते कर्तव्यं रसमण्डपम्। अतिगुप्तं सुविस्तीर्णं कपाटार्गलशोभितम्॥ ध्वज छत्रवितानाढ्यं पुष्पमालाविलम्बितम्। भेरीकाहलाघण्टादिशृङ्गीनादविनादितम्। भूः समा कर्तव्या सुदृढा दर्पणोपमा। तन्मध्ये वेदिका रम्या कर्तव्या लक्षणान्विता॥ (रसरत्नसमुच्चय 6, 12-16)

और कुमारिकाओं की पूजा करनी चाहिए। विप्रादिकों, स्थावरों, जङ्गमों को इनके दर्शन करवाकर उनकी अनुमति, आशीर्वाद से ही कार्यारम्भ करना चाहिए।

महोषध्यादीनां स्थापननिर्देशमाह —

ततः प्राकारमध्य तु स्थापयेच्च महोषधीः।
श्वेतरक्तपीतकृष्णैः पुष्पकाले प्रभेदिताः॥ 10॥
कटुतिक्तकषायाम्ललवणैर्मधुरेण च।
औषधीर्लक्षयेद्दिव्या वर्णैरास्वादनैस्तथा॥ 11॥

इसके बाद, वहाँ जो प्राकार बनेगा, उसके मध्य में महौषधी[1] की स्थापना, रोपण-निवेश का कार्य किया जाना चाहिए। इनको श्वेत, लाल, पीत, कृष्ण रङ्ग के पुष्पों के भेद और काल के भेदानुसार अलग-अलग रूप से लगाना चाहिए। इसी प्रकार कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल, लवण और मधु स्वादानुसार औषधियों के लक्षण देखकर उनके दिव्य वर्ण और स्वाद के अनुसार वर्गीकरण करना चाहिए।

भैषज्यार्थोपस्करादीनां निर्देशमाह —

कोटिकायाः सूकरैश्च धमनीनलिकायसैः[2]।
सण्डिशानि विविधानि [3]काकचञ्चवाकृतीनि च॥ 12॥
ग्रादुकां[4] (?मौद्रिका)कर्त्तयुक्तां हस्तवडानि हारिणी।
खल्वे च मर्दनं कुर्याद् यन्त्राद्विविधधारिका:[5]॥ 13॥

---

1. गोविन्दानन्दधृत मत्स्यपुराणवचनमाह— सहदेवीतथा व्याघ्री बला चातिबला तथा। शङ्खपुष्पी तथा सिंही अष्टमी च सुवर्च्चला॥ महौषध्यष्टकं प्रोक्तं महास्नाने नियोजयेत्। (शब्दकल्पद्रुम खण्ड 3, पृष्ठ 682) महौषधी श्वेतकण्टकारी च ब्राह्मी। पर्यायोऽस्या यथा— ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सरस्वती। मण्डूकपर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी॥ (भावप्रकाश पूर्वखण्ड, प्रथम भाग) कटुका च अतिविषा इति राजनिर्घण्टः।
2. अष्टाङ्गसंग्रह सूत्रसंस्थान में अग्निकर्म की विधि के अन्तर्गत धौकनी, जाम्बवोष्ठ-शलाका के प्रयोग का वर्णन आया है। धौंकनी को इसमें भस्त्रा कहा गया है, यही शब्द पाणिनी ने भी दिया है। इसका उपयोग लोह के पिघलाने, निर्धूम अग्नि दीप्त करने के लिए होता आया है—
निर्धूमबृहत्स्थिरदीप्तखदिरबदराद्यङ्गारैरयोघटनप्रकारेण भस्त्रानिलाध्मातैर्व्यजनेन वोर्ध्वनिर्गच्छज्ज्वा-लतयाऽऽपादितापाद्यमानभासुराग्निवर्णैर्जाम्बवोष्ठादिभिर्व्याधिप्रदेशवशद्वलयार्ध चन्द्रस्वस्तिकाष्टापद-बिन्दुरेखाप्रतिसारणविकल्पै...। (अष्टाङ्ग. 40, 5)
3. स्वस्तिकयन्त्र कङ्क नामक पक्षी के मुख, काकमुख और कुरर नामक पक्षी के मुख जैसे बनते हैं— इतरेषु तु यथायोगं व्रणाकारानुरोधेन कङ्ककाककुरादिमुखानि॥ (तत्रैव 34, 5)
4. 'ग्राहकां' स्यात्।
5. यन्त्रों की संख्या 101 बताई गई है किन्तु छह प्रधान है— 1. स्वस्तिक यन्त्र, 2. सन्दंशयन्त्र, 3. तालयन्त्र, 4. नाडीयन्त्र, 5. शलाकायन्त्र तथा अनुयन्त्र— अन्ये पुनरेकोत्तरं यन्त्रशतमित्याचक्षते। इह तु

(अब औषधशाला, प्रदावण कार्यशाला के उपस्करों-उपकरणों के प्रसङ्ग में कहा जा रहा है) वहाँ सूअर की खाल की धमनी बनाकर और लोहे की नलिका से आग को फूँकने की धमण बनाएँ। वहाँ कौए की चोंच की आकृति वाली तरह-तरह की सण्डासियाँ भी स्थापित करें। इसी प्रकार पकड़ने के यन्त्र (अथवा मुद्रिका), कैंचियाँ, हस्तवडानी या चिमटा अथवा करपत्र, हारिणी या सफाई करने के यन्त्र; इसी प्रकार खरल करने, मर्दन करने के भी विविध प्रकार के यन्त्रों को बनाना चाहिए।

धातवोऽष्टाऽष्ट लौहानि विविधान्यौषधानि च।
मूषाभेदक्रमोक्तं[1] च रत्नं स्याद् वज्रकादिकम्॥ 14॥

इन यन्त्रों के उपयोग और अष्ट धातु, अष्ट लोहादि से विविध प्रकार की औषधियाँ बनाई जाए। वहाँ हीरादि रत्नों की (भस्मादि के प्रयोजन से) विविध मूषाओं को भी तैयार करना चाहिए।

मूषार्थ मृत्तिकादीनां —

मृत्तिका करणी श्रेष्ठा वज्रमूषादिकोद्भवम्।
हृदि चित्तेर्दृढात्मा[2] च एकीभूतमनास्तथा॥ 15॥

उनकी मृत्तिका या भस्म (श्रेष्ठ) सर्वोत्तम प्रकार की मूषादिक में पकाकर तैयार की जा सकती है (अथवा वज्र मूषादि को श्रेष्ठ मिट्टी से तैयार किया जा सकता है[3])। इसके लिए हृदय और चित्त को बलवान बनाकर यानी व्यक्ति को दृढ़ात्मा और एकाग्र चित्त होकर ही कार्य करना चाहिए।

समासतः षोढा निर्दिश्यन्ते। स्वस्तिसन्दंशतालनाडीशलाकख्यान्यनुयन्त्राणि च॥ (अष्टाङ्ग. 34, 4) भगवान् धन्वन्तरि ने 101 यन्त्रों को स्वीकृत किया है— तत्र चतुर्विंशति (24) स्वस्तिकयन्त्राणि, द्वे (2), सन्दंशयन्त्रे, द्वे (2), तालयन्त्रे, विंशतिः (20), नाड्यः, अष्टाविंशतिः (28), शलाका, पञ्चविंशतिः (25), उपयन्त्राणि। (सुश्रुत सू. अ. 7, 6)

1. यदि यहाँ 'माषाभेद क्रमोक्तं' पाठ हो तो माशा (आठ रत्ती = 1 माषा) के क्रम से भेद रखते हुए रत्नों को और हीरों को तौला जा सके— यह अर्थ भी निष्पन्न हो सकता है।
2. 'हृदि वित्तेर्दृढात्मा' इति प्रकाशित पाठः।
3. सरत्नसमुच्चय में वज्रमूषा निर्माण के लिए कहा गया है कि मूषोपयोगी तीन मिट्टी तीन भाग लें, सन का रेशा दो भाग, घोड़े की लीद दो भाग, धान की भूसी की राखी, सिलखड़ी मिट्टी एक भाग तथा लोहकिट्ट आधा भाग लेकर इनको अच्छी तरह कूट-पीटकर वज्रमूषा बनाएँ : मृदस्त्रिभागाः शणलद्दिभागौ भागश्च निर्दग्धतुषोपलादेः। किट्टार्धभागं परिखण्ड्य वज्रमूषां विदध्यात्खलु सत्त्वपाते॥ (10, 9) उक्त ग्रंथ में योगमूषा, वज्रद्रावणीमूषा, गारमूषा, वरमूषा, वर्णमूषा, रौप्यमूषा, विडमूषा, वज्रद्रावण, वृन्ताकमूषा, गोस्तनीमूषा, मल्लमूषा, पक्वमूषादि नाम आए हैं।

अन्यदप्याह —

सद्गुरूणां पादभक्त्या गुरूपदेशग्राहकः।
मुक्तमत्सरकोपश्च सत्प्रियो जनवत्सलः॥ 16॥

यह विद्या उसी व्यक्ति की सफल होती है, जो सद्गुरु की चरण-सेवा में रहकर, गुरु के उपदेश को ग्रहण करने का पात्र हो और जो मत्सर, ईर्ष्या, कोप-क्रोधादि से मुक्त हो तथा सत्यप्रिय एवं जनकल्याण की भावना से ओत-प्रोत हो।

मूषानिर्माणविधिं —

पारदग्धा स्तोकदग्धा अदग्धा बालकर्तिका।
स्वरबिन्दुसमायुक्तं वज्रमूषस्य लक्षणम्॥ 17॥

(अब ऐसी आग पर तपाने के पात्र या मूषा के लक्षण कहे जा रहे हैं) ऐसी वज्रमूष के पारदग्धा या पूर्ण परिपक्व, स्तोकदग्धा या कम पकी हुई, अदग्धा या बिना पकी हुई, बालकर्तिका या बहुत छोटी और स्वरबिन्दु से युक्त या कोई खास चिह्न अथवा स्वर-टङ्कार देने वाली पकी हुई मूसा— ये लक्षण हैं।

घटिका करिकाकारा मृत्तिकाश्च सुयोजयेत्।
त्रीणि त्रीणि पुनस्त्रीणि तथा चत्वारि पञ्च च॥ 18॥
(ततः प्राप्नोति द्रव्यश्च यथाश्रमे तथा लाभः)।

इनकी बनी हुई छोटी घड़ियाँ या कुलकी जिसमें मृत्तिका या अयस्क (कच्चा द्रव्य) को भली प्रकार से जमाएँ और तीन-तीन और पुनः तीन-तीन या चार बार अथवा पाँच बार (तपाकर परम शुद्ध द्रव्यादि अथवा रत्न-धातु-भस्म को प्राप्त किया जा सकता है) जितना परिश्रम होगा, वैसा ही लाभ होगा।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वैद्यशालक्षणाधिकारो नाम नवतितमं सूत्रम्॥ 90॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वैद्यशाला लक्षण अधिकार नामक नब्बेवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 90॥

---

1. इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक मेवाड़ में जावर, ईसवाल, राजपुरा आदि स्थानों पर रजत, यशद, लौह आदि का उत्खनन तथा उनका प्रदावण कार्य हो रहा था। ऐसे में रचनाकार मूषाओं के प्रयोग से परिचित था। ये नाना प्रकार की मिट्टियों से तैयार होती, इनमें अयस्क को रखकर पिघलाया जाता और शुद्धद्रव्य को प्राप्त किया जाता था। वर्तमान में जावर में ऐसी मूषाओं के ढेर मिले हैं। जिस प्रकार के देवी-देविताओं की स्थापना व पूजादि का यहाँ निर्देश है, वह रूप यथारूप जावर में द्रष्टव्य है। भैरव, योगिनियों, जिनेन्द्रसिद्धों के देवालयों के अवशेष विद्यमान हैं। इसके पास ही नठारा पाल गाँव के निकट और ईसवाल गाँव में भी पुरातात्त्विक उत्खनन से लोह-कर्म की पुष्टि हो चुकी है।

चतुरुत्तरशतैकशालगृहलक्षणमेकनवतितमं सूत्रम् ॥ 91 ॥

विश्वकर्मोवाच —

हर्म्यादीनि प्रवक्ष्यामि **यथोक्तं** पुरवासिनाम्।
निन्दितानि **च शस्तानि भवन्ति भवनानि च** ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं नगरवासियों के लिए जैसी हर्म्यादि भवन रचना कही गई है, उसे कहता हूँ। भवन (1.) निन्दित और (2.) प्रशस्त– दो प्रकार के होते हैं।

अथ प्रस्तारक्रमाह —

पञ्च$_{5}$ पूर्वायता रेखा दशसप्त$_{17}$ च दक्षिणे।
चतुःषष्टिपदं$_{64}$ कार्यं कोष्ठकं पूर्वदक्षिणम् ॥ 2 ॥
चत्वारो विन्यसेत्पूर्वमक्षराणि **गुरूणि वै।**
तेभ्य एव प्रसूयन्ते भेदाः षोडश$_{16}$ वेश्मनाम् ॥ 3 ॥

पूर्व दिशा की ओर जाती हुई पाँच समानान्तर रेखाएँ खींचे और दक्षिण की ओर जाती सत्रह समानान्तर रेखाएँ डालें। इस प्रकार पूर्व-दक्षिण की बनी रेखाओं से चौंसठ कोष्ठक बनेंगे। सर्वप्रथम पूर्व के कोष्ठकों में चार गुरु (ऽ ऽ ऽ ऽ) का न्यास करें (और प्रस्तार क्रम देखे) इस प्रकार से सोलह प्रकार के भवनों का भेद निष्पन्न होगा।

गुरोरधो लघुं दद्याद् विद्याद्गुरु-लघुप्रदम्।
एकान्तरविभेदेन **षोडशैव$_{16}$ पदाः स्थिताः** ॥ 4 ॥

उक्त क्रम-निवेश के बाद नीचे के कोष्ठक में क्रमशः गुरु के नीचे लघु (।) चिह्न करे और यह जानना चाहिए कि गुरु (ऽ) लघु (।) का देने वाला है जो एकान्तर के भेद से सोलह पदों में कोष्ठकों में स्थित होता जाता है।

पदपक्षस्य संस्थाने द्वितीयं परिकीर्तितम्।
चतुरक्षरभेदेन तृतीयं च तथोपरि ? ॥ 5 ॥

पद के बाजू में द्वितीय कहा गया है जो चार अक्षरों के भेद से तीसरा उसके ऊपर होता है (पाठ अस्पष्ट है)।

अष्टाभिः क्रमभेदैश्च चतुर्थं शुभलक्षणम्।
एकोर्ध्वे मात्रिको लघु गुरुद्वक प्रतिष्ठिताः ? ॥ 6 ॥

इस प्रकार आठ भेदों के क्रम से चतुर्थ शुभ लक्षण बनता है। एक के ऊपर मात्रिक लघु (।) और गुरु दो के बाद प्रतिष्ठित करें (पाठ अस्पष्ट है)।

एकशाला गुरुव्यामा चालिन्दो लघुस्थानके।
एकोर्ध्वेन गृहे मूषादलिन्दश्चेति निश्चये ? (न्यसेत्) ॥ 7 ॥

गुरु (ऽ) के स्थान पर एक शाला समझें और अलिन्द, पटशाल, बरामदा, वातायनादि लघु (।) के स्थान पर समझें। एक के ऊपर ही ओर गृह में मूषा, वातायन होते हैं, ऐसा निश्चय करें (पाठ अस्पष्ट है)।[1]

पूर्वे वै कथितश्छन्दो गुरु लघुश्च ? समावृते।
प्रभेदांश्च तन्नामानि कथयाम्यपराजित ॥ 8 ॥

पहले जो गुरु-लघु का छन्द कहा गया है, उसके प्रभेद और उनके नामों को हे अपराजित! अब मैं कहता हूँ।

ग्रन्थान्तर से गृहार्थ प्रस्तारचक्र

सं.	प्रस्तारभेद	गृहनाम	द्वारनाम
1.	ऽ ऽ ऽ ऽ	ध्रुव	ऊर्ध्वमुख
2.	। ऽ ऽ ऽ	धन्य	पूर्वमुख
3.	ऽ । ऽ ऽ	जयसंज्ञक	दक्षिणद्वार
4.	। । ऽ ऽ	नन्दसंज्ञक	पूर्व-दक्षिणद्वार
5.	ऽ ऽ । ऽ	खराभिध	पश्चिमद्वार
6.	। ऽ । ऽ	कान्त	पूर्व-पश्चिमद्वार
7.	ऽ । । ऽ	मनोरम	दक्षिण-पश्चिमद्वार
8.	। । । ऽ	सुमुख	पूर्व-याम्यपश्चिमद्वार
9.	ऽ ऽ ऽ ।	दुर्मुख	उत्तरद्वार
10.	। ऽ ऽ ।	क्रूर	पूर्वोत्तरद्वार
11.	ऽ । ऽ ।	सुपक्ष	दक्षिणोत्तरद्वार

1. श्रीपति का मत है कि भवन के लिए छन्दशास्त्रानुसार प्रस्तारक्रम समझना चाहिए। इसके लिए पहले चार गुरु (ऽऽऽऽ) लिखें, तदोपरान्त प्रथम गुरु के नीचे लघु लिखें और वाम भाग में गुरु लिखें तथा आगे जैसा पूर्व में लिखा गया है, वैसा ही लिखें (।ऽऽऽ)। इसी प्रकार सबके लघु (।।।।) होने तक लिखें तो प्रस्तारक्रम तय हो जाता है— स्थापयेल्लघुमधो गुरोः परं स्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत्। पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वलघ्ववधिरित्ययं विधिः॥ (ज्योतिषरत्नमाला 17, 9)
नारदपुराण में आया है कि चार अक्षरों के प्रस्तार के भेद से क्रमशः इन गृहों की गणना करनी चाहिए— गृहाणि गणयेदेवं तेषां प्रस्तारभेदतः। गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्वत्र्यसेत्॥ गुरुभिः पूरयेत्पश्चात्सर्वलघ्ववधीर्विधिः। कुर्याल्लघुपदेऽलिन्दं गृहद्वारात्प्रदक्षिणम्। पूर्वादिगेष्वलिन्देषु गृहभेदास्तु षोडश। (नारद. पूर्व. 56, 583-585)

12.	। । S ।	धनद	पूर्व-याम्योत्तरद्वार
13.	S S । ।	क्षयाख्य	पश्चिमोत्तरद्वार
14.	। S । ।	आक्रन्द	पूर्व-पश्चिमत्तरद्वार
15.	S । । ।	विपुल	याम्य-पश्चिमोत्तरमुख
16	। । । ।	विजयसंज्ञक	चतुर्मुख

षोडश गृहनामानि —

ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं सुपक्षं धनदं क्षयम्॥ 9॥
आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं गृहमुत्तमम्।[1]
अलिन्दभेदाः कथिता ध्रुवादीनां तु षोडश$_{16}$॥ 10॥

1. ध्रुव, 2. धान्य, 3. जय, 4. नन्द, 5. खर, 6. कान्त, 7. मनोरम, 8. सुमुख, 9. दुर्मुख, 10. क्रूर, 11. सुपक्ष, 12. धनद, 13. क्षय, 14. आक्रन्द, 15. विपुल और 16 विजय— ये उत्तम गृहों और अलिन्दों के ध्रुवादि नामों से सोलह भेद कहे गए हैं।

तस्य फलाफलमाह —

ध्रुवे जयमवाप्नोति धान्ये धान्यागमो भवेत्।
जये सपत्नाञ् जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः॥ 11॥
खरमायासदं वेश्म कान्ते च लभते श्रियम्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा चेप्सितसम्पदः॥ 12॥

इनमें से 'ध्रुव' संज्ञक गृह जय प्रदान करने वाला है। 'धान्य' से धान्यागम होता है। 'जय' से पत्नी, जय मिलती है। 'नन्द' से सर्व समृद्धियाँ होती हैं। 'खर' नामक गृह में कठिनाई होती है। 'कान्त' में लक्ष्मी प्राप्त होती है और आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा इच्छित सर्व सम्पदा मिलती है।

मनोरमे मनस्तुष्टिर्गृहभर्तुः प्रकीर्तिता।
सन्मुखे राज्यसन्मानं दुर्मुख कलहः सदा॥ 13॥

'मनोरम' नामक गृह से मन को सन्तोष होता है और गृहस्वामी को शान्ति मिलती है। 'सुमुख' से राजकीय सम्मान मिलता है जबकि 'दुर्मुख' नामक गृह से सदा ही कलह की आशङ्का जाननी चाहिए।

---

1. ये ही श्लोक समराङ्गणसूत्रधार (23, 6-7) और किञ्चित पाठभेद से वास्तुसौख्य, नारदपुराणादि में मिलते हैं।

क्रूरे व्याधिभयं घोरं सुपक्षं गोत्रवृद्धिदम्।
धनदे हेमरत्नानि गाश्चैव लभते पुमान्॥ 14॥
क्षये सर्वक्षयो घोर आक्रन्दं ज्ञातिमृत्युदम्।
आरोग्यं विपुले ख्यातिर्विजये सर्वसम्पदः॥ 15॥

इति ध्रुवादिषोडश।

इसी प्रकार 'क्रूर' संज्ञक गृह में निवास से घोर व्याधि और भय बना रहता है। 'सुपक्ष' से अपने गोत्र-कुल परिवार की वृद्धि होती है। 'धनद' से व्यक्ति को सोना, रत्नादि मिलते हैं और गायों की दूध की उपलब्धता होती है। 'क्षय' संज्ञक गृह से घोर हानि होती है। 'आक्रन्द' से परिवार की मृत्यु की आशङ्का होती है। 'विपुल' से आरोग्य और ख्याति तथा 'विजय' संज्ञक गृह से सभी प्रकार की सम्पदाओं की सुलभता होती है।[1]

अधुना रम्यादीनामष्टगृहमाह —

रम्येषु द्वितीयोऽलिन्दो धान्यादिर्विजयान्तगः।
तेषां भेदाः पुनश्चेत्थमष्टधास्तु प्रकीर्तिताः॥ 16॥
रम्यं श्रीधरं मुदितं वर्धमानं करालकम्।
सुनाभं ध्वाङ्क्षं समृद्धमिति रम्याष्टकं गृहम्॥ 17॥

इति रम्याष्टकं गृहम्।

अब (पूर्वोक्त षोडश गृहों में धान्य से विजय गृह तक एक को छोड़कर एक आठ गृहों यानी धान्य, नन्द, कान्त, सुमुख, क्रूर, धनद, आक्रन्द और विजय तक) यदि धान्यादि के मुख पर अलिन्द की रचना की जाए तो उससे बनने वाले आठ गृहों के बारे में कहा जा रहा है कि वे क्रमशः 1. रम्य, 2. श्रीधर, 3. मुदित, 4. वर्धमान, 5. कराल, 6. सुनाभ, 7. ध्वांक्ष और 8. समृद्ध— ये आठ रम्यादिक अष्ट गृह होंगे।[2]

---

1. वृद्धवशिष्ठ ने इन गृहों का फलाफल इस प्रकार बताया है— ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखप्रदम्। धान्यं धनप्रदं नृणां जयं स्याद्विजयप्रदम्॥ नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम्। पुत्रपौत्रप्रदं कान्तं श्रीपदं स्यान्मनोरम्॥ सुवक्त्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विमुखप्रदम्। सर्वदुःखप्रदं क्रूरं विपक्षं शत्रुभीतिदम्॥ धनदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयप्रदम्। आक्रंदं शोकजननं विपुलं श्रीयशःप्रदम्। विपुलं नामसदृशं धनदं विजयाभिधम्॥ (वशिष्ठसंहिता 39, 100-103)

2. समराङ्गण. में आया है— यदि धन्ये द्वितीयोऽपि मुखालिन्दः प्रयुज्यते॥ तद् गृहं रम्यनामेह भर्तुः सौभाग्यकारकम्। मुखालिन्देन नन्दाख्यं द्वितीयेन सुयोजितम्॥ तच्छ्रीधरमिति ख्यातं तस्मिन् श्रीर्नित्यमाविशेत्। अलिन्दश्चेद् द्वितीयाऽपि कान्तस्यास्ये निवेश्यते॥ मुदितं तद् भवेद् भर्तुर्भूतिकृद्

अथ सुन्दरादि गृहषोडशः —

शालामध्ये ध्रुवादीनां न्यासे षड्दारुकस्य च।
अन्ये भेदाः पुनस्तेषां षोडशैव प्रकीर्तिताः ॥ 18 ॥

ध्रुवादि शालाओं के मध्य में यदि षड्-दारु (स्तम्भ व पाटन) का निवेशन किया जाए तो उक्त सोलह गृहों से अन्य सोलह प्रकार के गृह बन जाते हैं।

छन्दभेदपूर्ववद् ध्रुववद् सर्वाणि च।
नियतोपि षड्दारुकं नामाधुना कथ्यते[1] ॥19 ॥

इन भवनों में छन्द-प्रस्तार भेद पूर्वानुसार होगा और ध्रुवादि की भाँति ही स्थिति होगी किन्तु इनमें षड्दारुक ही नियत होंगे। अब मैं इनके नामों को कहता हूँ।

सुन्दरं वरदं भद्रं प्रमोदं विमुखं शिवम्।
सर्वलाभं विशालं च विलक्षमशुभं ध्वजम्॥ 20 ॥
उद्योतं भीषणं शून्यमजितं कुलनन्दनम्।
प्रशस्तान्यप्रशस्तानि यथानामफलानि च॥ 21 ॥

इति सुन्दरादिगृहषोडश।

ये नाम हैं— 1. सुन्दर, 2. वरद, 3. भद्र, 4. प्रमोद, 5. विमुख, 6. शिव, 7. सर्वलाभ, 8. विशाल, 9. विलक्ष, 10. अशुभ, 11. ध्वज, 12. उद्योत, 13. भीषण, 14. शून्य, 15. अजित और 16. कुलनन्दन गृह। ये प्रशस्त और अप्रशस्त गृह इनके नामानुसार ही फल देने वाले अर्थात् 'यथा नामानि तथा गुणानि' होते हैं।[2]

अथ हंसादि गृहषोडशः —

पूर्वालिन्देषु सर्वेषु कार्यं षड्दारुकं पुरः।

भवनोत्तमम्। सुमुखस्य यदालिन्दो वक्त्रेऽन्यो विनिवेश्यते॥ वर्धमानं तदा तत् स्यात् स्वामिलक्ष्मीविवर्धनम्। क्रूरं युक्तं द्वितीयेन मुखालिन्देन मन्दिरम्॥ करालं तद् विजयानीयाद् भर्ता तस्य विनश्यति। अलिन्देन द्वितीयेन धनदं योजितं पुनः॥ सुनाभं तद् भवेत् तस्मिन् पशून् पुत्रानवाप्नुयात्। आक्रन्दस्य पुरोभागे यद्यलिन्दः कृतोऽपरः॥ ध्वाङ्क्षसंज्ञं गृहं तज्ज्ञा निन्दितं प्रवदन्ति तत्। द्वितीयालिन्दघटना विजयस्य मुखे यदि॥ तत् समृद्धमिति ख्यातं गृहं स्यात् पुण्यकर्मणाम्। (समराङ्गण. 23, 12-19)

1. प्रकाशित पाठे नोपलभ्यते।
2. समराङ्गण. में आया है— शालाविभागं ज्ञात्वैषां तिर्यक् षड्दारु विन्यसेत्। षोडशान्ये च भेदाः स्युः सञ्ज्ञाश्चैषा- मनुक्रमात्॥ सुन्दरं वरदं भद्रं प्रमोदं विमुखं शिवम्। सर्वलाभं विशालं च विलक्षमशुभं ध्वजम्॥ उद्द्योतं भीषणं शून्यमजितं कुलनन्दनम्। नामभिर्वेश्मनामेषां गुणदोषान् प्रकल्पयेत्॥ (तत्रैव 23, 21-23)

षोडशैव$_{16}$ पुनर्भेदा हंसाद्या अपरे मताः॥ 22॥

पूर्वोक्त सभी अलिन्दों के मध्य में यदि षड्दारुक या पाटड़ा निवेशित किए जाए तो उन सोलह गृहों के भी पुनः हंसादि भेद हो जाते हैं।

हंसं सुलक्षणं सौम्यं जयन्तं भव्यमुत्तमम्।
रुचिरं सम्भृतं क्षेममाक्षेमं सुकृतं वृषम्॥ 23॥
उच्छन्नं व्ययमानन्दं सुनन्दं चेति कीर्तितम्।
यथाविधं गुणदोषा हंसादीनामुदाहृताः॥ 24॥

इति हंसादि गृहषोडश।

इनके नाम हैं— 1. हंस, 2. सुलक्षण, 3. सौम्य, 4. जयन्त, 5. भव्य, 6. उत्तम, 7. रुचिर, 8. सम्भृत, 9. क्षेम, 10. अक्षेम, 11. सुकृत, 12. वृष, 13. उच्छन्न, 14. व्यय, 15. आनन्द और 16. सुनन्द। ये हंसादि गृह भी इनके नामानुसार ही गुणादि फल देने वाले हैं।[1]

अथ अलंकृतादि गृहषोडशः —

षड्दारुकं परित्यज्य ध्रुवादिक्रमसंस्थितौ।
शालामध्येऽपवरकं धनदं स्यादतः स्थितम्॥ 25॥

यदि षड्दारुक को छोड़कर ध्रुवादि में क्रमशः स्थित शालाओं के मध्य में धनद से अपवरक (लघु कोठरी, अपवर्ग) बनाए जाएँ तो निम्न नाम वाले गृह होंगे—

अलङ्कृतमलङ्कारं रमणं पूर्णमम्बरम्।
पुण्यं सुगर्भं कलशं दुर्गतं रिक्तमीप्सितम्॥ 26॥
सुभद्रं वञ्चितं दीनं विभवं सर्वकामदम्।
यथार्थनामतश्चैषान् गुणदोषान् प्रकल्पयेत्॥ 27॥

इति अलङ्कृतादि गृहषोडश।

1. अलंकृत, 2. अलङ्कार, 3. रमण, 4. पूर्ण 5. अम्बर, 6. पुण्य, 7. सुगर्भ, 8. कलश, 9. दुर्गत, 10. रिक्त, 11. इप्सित, 12. सुभद्र, 13. वञ्चित, 14. दीप, 15. विभव और 16. सर्वकामद। इनके गुण-दोष भी इनके नामानुसार ही कल्पित करने चाहिए।[2]

---

1. समराङ्गण. में कहा गया है—शालापुराविनिर्युक्ततिर्यक् षड्दारुकारणात्। हंसं सुलक्षणं सौम्यं जयन्तं भव्यमुत्तमम्॥ रुचिरं सम्भृतं क्षेममाक्षेमं सुकृतं वृषम्। उच्छन्नं व्ययमानन्दं सुनन्दं चेति कीर्तितम्॥ एषामपि यथार्थत्वाद् गुणदोषान् निरूपयेत्। (तत्रैव 23, 25-27)
2. समराङ्गण. में कहा गया है— शालामध्ये च तिर्यक्स्थं षड्दारु विनिवेशयेत्॥ विहाय मर्मणां वेधानमीषामेव वेश्मनाम्। षोडशैव परेऽपि स्युर्भेदास्तांश्च यथाक्रमम्॥ कथयामः समासेन यथार्थैरेव

अथ प्रभवादि गृहषोडश: —

षड्दारुकं शालामध्येऽपवराणि ततः परम्।
एभ्योऽपरे गृहाः प्रोक्ताः प्रभवाद्यास्तु षोडश$_{16}$ **॥ 28 ॥**

उक्त ध्रुवादि गृहों की शालाओं को अपवरक और षड्दारुक से युक्त कर दिया जाए तो प्रभवादि संज्ञक सोलह गृह होते हैं।

प्रभवं भाविकं क्रीडं तिलकं क्रीडितं शुभम्।
यशोदं कुमुदं कालं भासुरं सर्वभूषणम्॥ 29 ॥
वसुधारं धनहरं कुपितं वित्तवृद्धिदम्।
कुलोदयं समाख्यातं गुणदोषाश्च पूर्ववत्॥ 30 ॥

इति प्रभवादि गृहषोडश।

इनके नाम क्रमशः 1. प्रभव, 2. भाविक, 3. क्रीड, 4. तिलक, 5. क्रीडित, 6. शुभ, 7. यशोद, 8. कुमुद, 9. काल, 10. भासुर, 11. सर्वभूषण, 12. वसुधार, 13. धनहर, 14. कुपित, 15. वित्तवृद्धिद और 16. कुलोदय होंगे। इनमें नामानुसार ही गुण-दोष पूर्ववत् होंगे।[1]

अथ चूडामण्यादि गृहषोडश: —

अनन्तरं मया यानि गृहाण्युक्तानि षोडश$_{16}$ **।**
चतुर्दिशमलिन्देन परिष्कुर्यात् पृथक् पृथक्॥ 31 ॥
भेदजानि तु यानीह शृणु तानि समासतः।

इसके अनन्तर, मेरे द्वारा षोडश गृहों में कहे गए चारों दिशाओं के अलिन्दों में पृथक्-पृथक् परिष्कृति की गई है (अर्थात् ध्रुवादि सोलहों गृहों के मुख भाग पर यदि अलिन्द तथा षड्दारुक तथा शाला में अपवरक भी हों)। इससे बनने वाले भेदों को अब तुम संक्षेप से सुनो।

चूडामणि प्रभद्रं च क्षेमं शेखरमुद्भवम्(?मुद्धूतम्)॥ 32 ॥
(विशालं भूतिदं हृष्टं विरोधं कालपाशकम्)[2]।

नामभिः। अलङ्कृतमलङ्कारं रमणं पूर्णमम्बरम्॥ पुण्यं सुगर्भं कलशं दुर्गतं रिक्तमीप्सितम्। सुभद्रं वन्दितं दीनं विभवं सर्वकामदम्॥ (तत्रैव 23, 27-30)

1. समराङ्गण. में आया है— शालान्तः स्थितषड्दारुपश्चादपवरेः कृतैः। एभ्योऽपरेऽपि निर्दिष्टा भेदाः षोडश वेश्मनाम्॥ प्रभवं भाविकं क्रीडं तिलकं क्रीडनं सुखम्। यशोदं कुकुदं कालं भासुरं सर्वभूषणम्॥ वसुधारं धनहरं कुपितं वित्तवृद्धिदम्। कुलोदयं च विज्ञेयं गुणदोषास्तु पूर्ववत्॥ (तत्रैव 23, 31-33)
2. प्रकाशितपाठे नोलभ्यते।

निरामयं सुलाभं च रौद्रं मेघं मनोरमम्।
सुभद्रं चेति गेहानां गुणाद्यमभिधानतः॥ 33॥

इति चूडामण्यादि गृहषोडश।

इनके नाम निम्न होंगे— 1. चूडामणि, 2. प्रभद्र, 3. क्षेम, 4. शेखर, 5. उद्भूत, 6. विशाल 7. भूतिद, 8. हृष्ट, 9. विरोध, 10. कालपाश, 11. निरामय, 12. सुलाभ, 13. रौद्र 14. मेघ, 15. मनोरम और 16. सुभद्र गृह बनते हैं जिनके नामानुसार ही गुणादि कहे गए हैं।[1]

अन्यदप्याह —

गृहाणामेकशालानां शतं स्याच्चतुरुत्तरम्$_{104}$।
एकैकोत्पन्नभेदाश्च शतैश्चदशभिस्ततः॥ 34॥

इस प्रकार इन एक शाला के गृहों के 104 भेद कहे गए हैं।[2] इनके भी पुनः एक-एक के एक हजार भेद होते हैं।

स चतुःसहस्त्रलक्षमेकशालाख्यवेश्मनाम्।
तृणच्छन्दः पट्टच्छन्दः पूर्णच्छन्दश्च पाण्डुकम्॥ 35॥
खण्डच्छन्दो वाजिच्छन्द इतिषड्जातिवेश्मनाम्।
षोडशैव$_{16}$ प्रभेदाश्च वर्तन्ते परिवर्तनात्॥ 36॥

इस तरह एकशाल के गृहों, वेश्मों के एक लाख, चालीस हजार भेद होते हैं। इनमें 1. तृणच्छन्द, 2. पट्टच्छन्द, 3. पूर्णच्छन्द, 4. पाण्डुकच्छन्द, 5. खण्डच्छन्द, 6. वाजिच्छन्द— छह प्रकार के षड् जाति वेश्म होते हैं। इन सबके भी परिवर्तनानुसार एक-एक के सोलह प्रकार के प्रभेद हो सकते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां चतुरुत्तशतैकशालगृहलक्षणाधिकारो नामैकनवतितमं सूत्रम्॥ 91॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में एक सौ चार शालगृह लक्षण अधिकार नामक इकरानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 91॥

---

1. धाराधिप भोज का मत है—अनन्तरमिहोक्तानि यानि वेश्मानि षोडश। प्रत्येक तान्यलिन्देन परिकु(ष्कु)र्याच्चतुर्दिशम्॥ तद्भेदेभ्यः प्रसूतानि कथयामो विधानतः। चूडामणिं प्रभद्रं च क्षेमं शेखरमद्भुतम्॥ विकाशं भूतिदं हृष्टं विरोधं कालपाशकम्। निरामयं सुशालं च रौद्रं मोघं मनोरथम्॥ सुभद्रं चेति सदनं संज्ञाभिरुपलक्षयेत्। (तत्रैव 23, 34-37; तुलनीय— राजवल्लभ. 6, 13-15)
2. समराङ्गण. में कहा गया है— वेश्मनामेकशालानां शतं स्याच्चतुरुत्तरम्॥ (समराङ्गण. 23, 37)

हर्म्यादिगुणदोषो नाम द्वानवतितमं सूत्रम् ॥ 92 ॥

अधुना शालाविभागानुसारेण अलिन्दप्रमाणं। विश्वकर्मोवाच —

पञ्चभागद्विभागं च सप्तभागत्रिभागकम्।
नवभागचतुर्भागं शालालिन्दप्रमाणकम् ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि पाँच भाग की शाला के दो भाग अलिन्द, सात भाग की शाला के तीन भाग अलिन्द और नौ भाग की शाला के चार भाग अलिन्द का प्रमाण कहा गया है।

शालागृहप्रमाणञ्च —

चतुर्हस्ता भवेच्छाला द्वात्रिंशद्धस्तकं गृहम्।
तथैकभूमितः कुर्याद् यावत्सा वै त्रिभूमिकम् ॥ 2 ॥

चार गज तक के प्रमाण वाली शाला होती है और बत्तीस गज प्रमाण का गृह कहा जाता है। सामान्यतया इनको एक मंजिला करते हैं और बढ़ाकर तीन मंजिल तक भी ले जा सकते हैं।

एकशालं गृहमाद्यमन्तिमं दशशालकम्।
शालान्तरेषु च ततो भेदाश्चैवमनेकधा ॥ 3 ॥

प्रारम्भ में जो एक शाल गृह होता है, वह अन्तिम भेद तक दस शाल का गृह हो सकता है। इन शालाओं के अन्तराल में भी अनेक प्रकार के भेद होते हैं।

तस्योदयमानमाह —

अष्टाविंशतिर्हस्ताश्च$_{28}$ ह्यष्टादश$_{18}$ तथाष्टं$_{8}$ च।
कुर्यात् त्रिधोदयं यावत् फलकं चाग्रभूमिके ॥ 4 ॥

अठाईस गज की ऊँचाई, अठारह गज की ऊँचाई और आठ गज की ऊँचाई— तीन प्रकार की ऊँचाई आगे की भूमि अर्थात् मंजिल के फलक-सतह तक जाते-जाते मानी गई है।

षण्णवतिश्चतुरशीतिर्द्वासप्ततिरेव च।
षोडशांशयुतं चैव गृहं तु त्रिविधोदयम् ॥ 5 ॥

यहाँ गृहों का उदय मान भी तीन प्रकार का माना गया है जो क्रमशः छियानवें, चौरासी और बहत्तर गज या हाथ का होता है। इनमें भी प्रत्येक में सोलहवें भाग को मिलाने पर गृह की ऊँचाई के और तीन प्रकार हो सकते हैं।

षट्नवै त्रिस्थानौर्विस्मृतं सजितोदयम् ?।

षट् चन्द्राष्टिक विंशत्याश्चैकपाषाणमन्दिरे ?॥ 6 ॥
वेदवसुरङ्गुर्वह्नि संस्थानकै रिषु चन्दा रुपदन्त्यौ रिषुयुक्तोहयम्।
उत्तमं मध्यम कन्यसं जायते मध्यमादयम् ?॥ 7 ॥
पक्षे समेङ्गुलैराश्च संस्थानं युक्तं तिथिम्। मूर्छनारिषयुक्तोदहयं ?।
उत्तममध्यमकन्यसं जायते कन्यसोदयम्॥ 8 ॥

(ये श्लोक भ्रष्ट होने से अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता है तथापि यह सम्भव लगता है कि क्षेत्र के विस्तार के आधार पर विषम मान से तीन, छह, नौ क्रम से उदय मान रखना चाहिए और यदि ईंटों से बनने वाला गृह है तो छह, आठ के क्रम से और पत्थरों से बनने वाला गृह है तो वहाँ इक्कीस गज प्रमाण कल्पित करें।... इनमें भी तीन प्रकार का उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ उदय मान हो सकता है)।[1]

हस्तिन्यादि शालावर्णनं —

हस्तिनी महिषी चैव गावी च छागली तथा।
पदानां तु दिशाभेदैः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्॥ 9 ॥

(अब द्विशालगृहों के बारे में कहा जा रहा है) पूर्वादि दिशा के भेद से प्रदक्षिण क्रम में पदों के दिशा भेदानुसार क्रमशः 1. हस्तिनी, 2. महिषी, 3. गावी और 4. छागली नामक भेद होते हैं।

हस्तिनी चेन्द्रसंस्थाने महिषी च यमस्थले।
गावी च वरुणस्थाने सौम्यस्थाने तु छागली॥ 10 ॥

1. इस सम्बन्ध में राजवल्लभ. का मत उद्धृत किया जा सकता है। वहाँ गृह की ऊँचाई के बारे में कहा है कि उसके विस्तार के 16वें अंश में 4 हाथ के योग पर जो माप हो उतनी ऊँचाई रखी जाए, उसे ज्येष्ठ ऊँचाई कहा जाता है। इसी तरह 3 हाथ के योग पर कनिष्ठ ऊँचाई, साढ़े तीन हाथ के योग पर मध्यम मान की ऊँचाई कही जाती है। चार हाथ के 96 अङ्गुल होते हैं, इसमें यदि 20 अङ्गुल जोड़कर 116 अङ्गुल ऊँचा गृह हो तो उसे ज्येष्ठ-ज्येष्ठ द्वार कहा जाता है, जबकि 16 जोड़कर 112 अङ्गुल वाले को ज्येष्ठ-कनिष्ठ तथा 18 जोड़कर 114 अङ्गुल वाले द्वार को ज्येष्ठ-मध्यम कहा जाता है। साढ़े तीन गज में 84 अङ्गुल होते हैं। इसमें यदि 15 अङ्गुल जोड़कर 99 अङ्गुल का ऊँचा (छत तक) हो उसे मध्यम-कनिष्ठ ऊँचाई, 27 जोड़ने पर 111 अङ्गुल वाले को मध्यम-ज्येष्ठ, 21 जोड़ने पर 105 अङ्गुल वाले को मध्यम-मध्यम ऊँचाई कहा जाता है। तीन गज में 72 अङ्गुल होते हैं। इस तरह इनमें 15 अङ्गुल जोड़ने पर 87 अङ्गुल वाली ऊँचाई को कनिष्ठ-कनिष्ठ, 27 अङ्गुल जोड़ने पर 99 वाले को कनिष्ठ-ज्येष्ठ ऊँचाई तथा 21 अङ्गुल जोड़ने पर 93 अङ्गुल की ऊँचाई को कनिष्ठ-मध्यम ऊँचाई कहा जाता है— वेश्मव्यासकलांशकैः युगगुणैर्हस्तैस्त्रिसार्द्धैर्युते हर्म्यस्य त्रिविधोदयः क्षितितलाद् यावच्च पट्टोर्द्धकम्। एकैकोऽपि पुनस्त्रिधा निगदितः सर्वे त एकादश क्षेप्याः षण्णवतौ नखाः शशिकला अष्टादशाढ्यास्त्रिधा॥ त्रिस्थाने युगपर्वतास्तिथियुता धिष्ण्यैकविंशान्विता मध्योऽयं त्रिकैरैस्तदंशसहितैः प्रोक्तः कनिष्ठस्त्रिधा। (राजवल्लभ. 5, 15-16)

परस्परप्रकारेण कर्तव्यास्तु विचक्षणैः।

इनमें से हस्तिनी को पूर्व इन्द्र स्थान पर; महिषी को दक्षिण यम स्थान; गावी को पश्चिम वरुण स्थान और छागली को उत्तर सौम्य स्थान पर— इस प्रकार ये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में होती हैं। विचक्षण जनों को इनको परस्पर इसी प्रकार से बनाना चाहिए।

तत्राग्रमग्नौ दातव्यं भाषितं विश्वकर्मणा॥ 11॥
द्वितीयाग्रं च नैर्ऋत्यां तृतीयाग्रं च मारुते।
चतुर्थ्यग्रमीशकर्णे कर्तव्यां किल सर्वदा॥ 12॥

किन्तु, विश्वकर्मा का कथन है कि इनमें से प्रथम हस्तिनी को आग्नेय कोण से आरम्भ करें; द्वितीय के अग्र भाग को नैर्ऋत्य कोण; तृतीय के अग्र भाग को वायव्य कोण से और चतुर्थ छागली का अग्र भाग सदा ईशान कोण से आरम्भ करना चाहिए।[1]

गावी श्रेष्ठा चोपरिष्ठात् सर्वाः स्युर्वाथ हस्तिनी।
एतासां पट्टसंयोगैर्भवनानि पृथग् विदुः॥ 13॥

उक्त शालाओं में सर्वप्रथम गावी संज्ञक शाला श्रेष्ठ है और चारों में ही हस्तिनी शाला को श्रेष्ठ जानना चाहिए। इनके द्वारा पट्टसंयोगै— यानी छवाई गई छत के संयोग से बनने वाले भवनों को विद्वानों ने अलग से भी कहा है।

पदाधस्तात् तथाछन्दा[2] तुलाभिः क्षणसञ्ज्ञकाः।
ज्ञातव्या वै गृहच्छन्दाः स्वयम्भूकथिताः पुरा॥ 14॥

पद से नीचे के छन्दों, तुलादि की संज्ञा क्षण है जिससे सभी गृहच्छन्दों को जाना जाता है, ऐसा स्वयम्भू ने पूर्वकाल में कहा है।[3]

---

1. 'विश्वकर्माप्रकाश' या 'वास्तुतन्त्र' में यह मत नामादि के अभाव के साथ आया है — याम्यशाला न्यसेदादौ द्वितीया पश्चिमे ततः। तृतीया चोत्तरे स्थाप्या चतुर्थी पूर्व-पश्चिमा॥ (विश्वकर्मा. 2, 170) अपराजितकार पर विश्वकर्माप्रकाश का भी प्रभाव रहा है। इसी अध्याय का 19वाँ श्लोक विश्वकर्माप्रकाश से ही उद्धृत है।
   इसी प्रकार 'मानसोल्लास' में आया है कि आङ्गन से दक्षिण में होने वाली शाला हस्तिनी, पश्चिम में बनने वाली महिषी, उत्तर में होने वाली गौ और आङ्गन से पूर्व में बनने वाली गावी संज्ञक होती है— अङ्गणाद्दक्षिणा शाला हस्तिनी परिकीर्तिता॥ अङ्गणात्पश्चिमा शाला महिषीति निगद्यते। महिषी त्वङ्गणात्पश्चादुत्तरा गौः प्रकीर्तिता॥ अङ्गणात्पूर्वतच्छागी गावी चोत्तरतः स्थिता। (मानसोल्लास खण्ड 2, विंशति 3, 51-56)
2. 'तथालिन्दा?' इति प्रकाशित पाठः।
3. यहाँ ग्रन्थकार किसी शैवागम या शिवप्रोक्त वास्तुशास्त्र की ओर सङ्केत करता है। सम्भवतः यह विश्वकर्माप्रकाश या वास्तुतन्त्र ही रहा हो। वैसे वैखानसागम में भी प्राक् वास्तुशास्त्र के विचार आए हैं।

द्वारं सर्वगृहाणां च पदस्थानेषु दापयेत्।
तुलाधस्तान्न दातव्यं भाषितं विश्वकर्मणा॥ 15॥

सभी गृहों के द्वारों को वास्तुपद न्यास में बताए गए पदों पर ही बनाना चाहिए[1], तुला स्थान से कभी नहीं देना चाहिए, ऐसा विश्वकर्मा ने कहा है।

त्रिविध द्वारमानमाह —

गृहविस्तारकरतो ग्राह्यमेकैकमङ्गुलम्।
सप्ततिः करसम्युक्तः षष्टिः पञ्चाशमेव च॥ 16॥
द्वारमानं समाख्यातं ज्येष्ठ-मध्य-कनिष्ठकम्।
एकशालक्रमयोगे पर्यन्तं च दशावधि॥ 17॥

गृह का विस्तार जितने गज का हो, उसके अनुसार ही प्रति गज एक-एक अङ्गुल लेते हुए गृह के द्वार को 70 गज तक, 60 गज तक और 50 गज तक ज्येष्ठ गृह द्वार 70 अङ्गुल का, मध्यम गृह द्वार 60 अङ्गुल का और कनिष्ठ गृह का द्वार 50 अङ्गुल— एक शाला के क्रम योग से दशशाल पर्यन्त बनाना चाहिए।

गृहादीनां मुखं पूर्वे भ्रमणद्वारसंयुतम्।
षोडशानामतः प्रोक्तमन्यथा चिन्तयेन्न हि॥ 18॥

गृहादिकों के मुख पूर्व की ओर भ्रमणद्वार युक्त बनाए जाते हैं जिनके सोलह नाम कहे गए हैं, इनको अन्यथा विचार नहीं करें।

प्रदक्षिणे सप्तमुखानलिन्दान् विद्याल्लघुस्थान समाश्रितांश्च।
गृहे तु पूर्वादिगतैरलिन्दैर्भवन्ति चैवं दशषट्$_{16}$ च भेदाः॥ 19॥[2]

प्रदक्षिण क्रम में गृहों के मुख-द्वारों पर अलिन्द-पटशालाओं को लघुस्थान के समाश्रित जाने अर्थात् गृह से पटशाला लघु अर्थात् कम विस्तार की समझें। ऐसे गृहों के पूर्वादि दिशाओं में बनने वाले अलिन्द-पटशाल सोलह भेद युक्त होते हैं।

अथ द्वारालङ्करणमाह —

दिशि दिशि वासाद् भागं तुर्येष्वङ्कितं द्वारं शोभनम्।

---

1. यह मत विश्वकर्माप्रकाश में आया है कि जिस पद में द्वार का शुभफल कहा है, उसमें ही द्वार होना शुभदायी है— पदे पदे कृतं श्रेष्ठं द्वारं सत्फलदायकम्॥ (विश्वकर्मा. 7, 65)
2. यह श्लोक विश्वकर्माप्रकाश से उद्धृत है। उसमें यह पाठ है— प्रदक्षिणे सप्तमुखादलिन्दं विद्याल्लघुस्थानसमाश्रितम्। गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्दैप्येवं भवेयुर्दशषट् च भेदाः॥ इसका आशय है कि लघु स्थानों में प्रदक्षिण क्रम से अलिन्द को रखने से सातमुख होते हैं, पूर्वादि क्रम से अलिन्दों को रखने से सोलह भेद होते हैं। (विश्वकर्मा प्रकाश 2, 107)

माहेन्द्र-गृहक्षत-कुसुमदन्त-भल्लाटकृतचिह्नैः ॥ 20 ॥

वास्तु भवन के द्वार प्रत्येक दिशा में क्रमशः अपने चार भागों में अङ्कित शोभनों, शोभावटियों के साथ बनाए जाते हैं।[1] इन चार भागों के शोभन चिह्नस्थल हैं— 1. माहेन्द्र, 2. गृहक्षत, 3. पुष्पदन्त, 4. भल्लाट।

उपर्युपरिभूमीनां द्वारं कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
नापसव्येन कुर्वीत राजवेश्मादिभूमिका ॥ 21 ॥

एक दूसरे के ऊपर की मंजिलों के द्वार भी प्रदक्षिणा क्रम में ही करने चाहिए, राजभवनों में उन्हें अपसव्य या प्रदक्षिणा क्रम के विपरीत नहीं बनाएँ।

प्रवेशचतुष्टयं —

उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च हीनबाहुस्तथापरः।
प्रतिकाय इति प्रोक्तं प्रवेशानां चतुष्टयम् ॥ 22 ॥
उत्तरोन्मुख उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च पूर्वतः।
हीनबाहुस्तथा याम्यं प्रतिकायं च वारुणे ॥ 23 ॥

प्रवेशों यानी द्वारों के चार प्रकार हैं— 1. उत्सङ्ग, 2. पूर्णबाहु, 3. हीनबाहु और 4. प्रतिकाय। ये प्रवेश-चतुष्टय के नाम कहे गए हैं। इनमें उत्सङ्ग प्रवेश उत्तराभिमुख कहा गया है; पूर्णबाहु प्रवेश पूर्वाभिमुख; हीनबाहु प्रवेश दक्षिणाभिमुख और प्रतिकाय प्रवेश को पश्चिमाभिमुख माना गया है।[2]

अथ चित्रकर्मनिर्देशमाह —

दृश्या[3] रौद्रकरालं च भीषणं रौद्ररुतानि च।
वर्जयेत्तद् गृहं चैव श्रीश्च तत्र न विद्यते ॥ 24 ॥

---

1. अग्निपुराण में आया है कि द्वार की तुलना में शाखा में तीन, पाँच, सात और नौ भाग उचित है। इसमें से नीचे की शाखा पर चतुर्थांश प्रतिहार का निवेश करें और शेष भाग पर मिथुनाकृतियों का अलङ्करण करना चाहिए— त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्टदम् ॥ अधःशाखाचतुर्थांशे प्रतिहारौ निवेशयेत्। मिथुनैः पादवर्णाभिः शाखाशेषं विभूषयेत् ॥ (अग्नि. 54, 29-30; तुलनीय बृहत्संहिता 56, 14-15)
2. समराङ्गण. में प्रतिकाय की अपेक्षा 'प्रत्यक्षाय' संज्ञा का प्रयोग हुआ है। तुलनीय है— उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च हीनबाहुस्तथापरः। प्रत्यक्षायश्चतुर्थश्च निवेशः परिकीर्तितः ॥ (समराङ्गण. 39, 11)
   इनके फलाफल इस प्रकार कहे गए हैं— उत्सङ्ग एवदीक्षाभ्यां द्वाराणां वास्तुवेश्मनोः। स सौभाग्यप्रजावृद्धिधन धान्यजयप्रदः ॥ यत्र प्रवेशतो वास्तु गृहं भवति वामतः। तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः ॥ तस्मिन् वसेन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽल्पबान्धवः। स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधिपीडितः ॥ वास्तु प्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत्। प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम् ॥ तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यसुखानि च। प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम् ॥ गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत्। प्रत्यक्षायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्तप्रवेशवत् ॥ (तत्रैव 39, 12-17)
3. 'दृष्टा' इति प्रकाशित पाठः।

(अब भवन के भीतरी अलङ्करणों की शोभा के बारे में कहते हैं) रौद्र या भयानक दृश्यों और भीषण, रौद्र रूप, रोते हुए लोगों को दिखाने वाले दृश्य, चित्र, मूर्तियाँ और ऐसी ही कोई शिल्प रचना घर में वर्जित है क्योंकि इनसे लक्ष्मी और सौभाग्य वहाँ नहीं रहता है।

गृहे काक-कपोतादि-**कपि-सङ्ग्राम-भीषणम्।**
वर्जयेद् गृहचित्रेषु **श्रीश्च तत्र न विद्यते॥ 25॥**

इसी प्रकार गृहों में कौओं, कपोतों, बन्दरों और युद्ध सहित भीषण दृश्यों को भी चित्रित नहीं करना चाहिए। इनसे भी गृह में लक्ष्मी और सुख-सौभाग्य नहीं रहता।

तथा च लेपरूपाणि पाषाणोत्पातपट्टकम्।
वर्जयेद् राजगेहेषु लक्ष्मीस्तत्र **न विद्यते॥ 26॥**
अक्लेशां **च वनस्त्स्य वातरोगोऽपि जायते।**

इसी तरह घरों में लेपरूप या लेप चित्रों में, रङ्गीन चित्रों में पाषाणोत्पात पट्टकम् या एक दूसरे पर पथराव करते हुए, उत्पात मचाते हुए दिखाई देने वाले चित्रपटों (न तो लेपचित्रों में न ही पाषाणों पर उत्कीर्ण रूप) को भी प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। ऐसा होने पर राजगृह में लक्ष्मी-सौभाग्य नहीं मिलता। यदि वहाँ कोई क्लेश या दु:ख नहीं हो तो भी वहाँ के लोगों में वातरोग ऐसे चित्रों के कारण होने की आशङ्का रहती है।[1]

---

1. विष्णुधर्मोत्तरपुराणोक्त चित्रसूत्रम् में आया है कि चित्रकला में केवल शुभ आकृतियों का प्रदर्शन ही करना चाहिए जैसे निधि शृङ्गों सहित वृषभ, निधि, शूण्ड सहित गज, नवनिधियाँ, विद्याधर, तपस्वी, गरुड, हनुमान और लोकाञ्चल में जो भी मङ्गलमय हों, उनको मनुष्यों के घरों में दिखाया जा सकता है, चित्रकार को स्वयं अपने गृह में चित्र नहीं बनाने चाहिए। दुर्बलता, मोटी और टूटी रेखाएँ, अस्पष्ट आकृतियाँ, अप्रमाण ग्रीवा, ओष्ठ और वक्र नयन एवं लोक विरुद्ध रेखाङ्कन सहित बेमेल रंग—चित्रों के ये आठ दोष कहे गए हैं— युद्धश्मशानकरुणामृत दु:खार्तकुत्सितान्। अङ्गल्यांश्च न लिखेत्कदाचिदपि वेश्मसु॥ निधिशृङ्गान्वृषान्त्रजन्निधि हस्तान्मतङ्गजान्। निधीन्विद्याधरान् राजनृषयो गरुडस्तथा॥ हनूमानांश्च सुमङ्गल्या ये च लोके प्रकीर्तिता:। लिखितव्या महाराज गृहेषु सततं नृणाम्॥ चित्रकर्म न कर्तव्यमात्मा स्वगृहे नृप। दौबल्यं स्थूलरेखत्वमविभक्तत्वमेव च॥ बृहद्गण्डौष्ठनेत्रत्वं वक्ररेखत्वमेव च। वर्णानां सङ्करश्चात्र चित्रदोषा: प्रकीर्तिता:॥ (विष्णुधर्मोत्तर. 3, 43, 14-18)
चित्रकला के प्रसङ्ग में यह भी कहा गया है कि शास्त्रज्ञ चित्रकार के चित्रों से सदैव लक्ष्मी आकर्षित होती है। वहाँ समृद्धि का आगमन होता है। अच्छे चित्र से व्यक्ति के मन की शुद्धि होती है। चिन्ताओं का निवारण होता है। विपुल सम्पन्नता आती है और आनन्द की प्राप्ति होती है। दु:स्वप्न नष्ट होते हैं, गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। जहाँ चित्र होता है, वह स्थान रिक्त नहीं होता अपितु अलंकृत लगता है, चित्रकला से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि होती है, यह भद्रकला कही गई है— शास्त्रज्ञै:

वीथिकार्थ निर्देशं —

पाषाणवीथिका बाह्यमन्यत्र वर्जयेत् तु ताम्॥ 27॥
कुम्भिकातलपट्टं च आद्ये भ्रमणे च कारयेत्।
अन्यत्र दोषदं शैलं विना वीथि [1]सुखावहाः॥ 28॥

राजभवन के बाहर की ओर पत्थर जड़ी गली-वीथिका यानी खुरा या पथ हो सकता है परन्तु भवन में अन्यत्र पाषाण वीथिका नहीं बनाना चाहिए, यह वर्जनीय है। द्वार आदि की भ्रमणी अर्थात् कुम्भिका तलपट्ट या कुम्भी, ऊखली को तो पाषाण की बना सकते हैं परन्तु अन्यत्र पत्थर का प्रयोग दोषकारक होता है। पाषाण के बिना वीथी यानी मिट्टी का बना मार्ग सुखद होता है (उसमें फिसलने या ठोकर लगने का भय नहीं रहता है)।[2]

सोपानैः कुम्भिकां शैलां राजवेश्मसुखावहम्।
सर्वत्र वीथिकाबद्ध आयुः कामफलार्थिभिः॥ 29॥
कर्करा शर्करा शिष्टा सुधाभीरन्ध्रपूरिता।
गृहे भूमिस्तु कर्तव्या विचित्रा मणिकुट्टिमा॥ 30॥

सोपान या सीढ़ियाँ बनाने में, कुम्भिका बनाने में तो राजभवनों में शैल, पाषाणों का प्रयोग सुखदायी होता है परन्तु इसके अतिरिक्त सर्वत्र सभी आयु और कामनाओं के फलों के चाहने वाले लोगों को मार्गों को, गलियारों को सदैव ही अच्छी प्रकार की रेती और चूना से शेष गृह की भूमि के मंजिलों के छिद्र, खड्डों को भरकर तरह-तरह की विचित्र मणिकुट्टिम या रंगीन कंकरीट से पक्की फर्श को बनाना चाहिए।[3]

सुकृतैर्दक्षैश्चित्रं हि मनुजाधिप। श्रियमावहति क्षिप्रमलक्ष्मीं चापकर्षति॥ निर्णेजयति चात्कण्ठां न रुणद्ध्यागतं शुभम्। शुद्धां प्रथयति प्रीतिं जनयत्यतुलामपि॥ दुःस्वप्रदर्शनं हन्ति प्रीणाति गृहदेवताम्। न च शून्यमिवाभाति यत्र चित्रं प्रतिष्ठितम्॥ धर्मार्थकामशुभदं कर्णं चाप्यनलंकृतम्। (तत्रैव, 3, 43, 24-27)

1. 'तु पत्रकाः ?॥' इति प्रकाशित पाठः।
2. ईशानशिवगुरुदेव मिश्र का मत है— ग्रामपर्यन्तवीथिस्तु ख्याता मङ्गलवीथिका। नगरे जनवीथी स्याद् रथ्याख्या खेटकादिषु॥ (ईशानशिवगुरुदेवपद्धति. क्रिया. 25, 50)
3. यहाँ चूना या सुधा का विवरण आया है। मयमतम् (अध्याय 18), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (खण्ड 3, अ. 92), बृहत्संहिता (56, 1-8), कल्पसूत्र, वास्तुविद्या आदि में भी इसका उल्लेख है। मय ने सुधा तैयार करने की विधि दी है, वास्तुविद्या में भी इसका विवरण आया है। वास्तुविद्याकार का मत है कि स्तम्भ में मध्यखण्ड-कल्पन, केवल उत्तरोत्तर अलङ्करणों का विन्यास, पाषाणमय अधिष्ठान, विशेष लेप या चूना युक्त अनुचित दीवार और रूपोत्तर अथवा लघुवाजन परिकल्पन- ये पाँच मनुष्यभवन की दृष्टि से वर्जित माने गए हैं। मान्यता यह भी है कि केवल शिलामय अधिष्ठान ही वर्ज्य है अन्य चार उत्तम हो तो

तत्रारोपणीयद्रुमा: सफलानि —

बदरी कदली चैव हीक्षुदण्ड**श्च दाडिमी।**
यत्र गृहे प्ररोहन्ति तद् गृहं न प्ररोहति॥ 31॥

(अब भवनों के आस-पास के वृक्षों के बारे में कहा जा रहा है) जिस गृह में बेर का पेड़ (बोरड़ी), कदली (केला) और गन्ने उगाए जाते हैं, वहाँ पर कभी भी वृद्धि नहीं होती है।

द्राक्षा-मुनि-करवीर-जाती-तगर-कुब्जिका:।
अन्यांश्च देववृक्षांश्च न कुर्याद् गृहवास्तुत: **॥ 32॥**

इसी प्रकार द्राक्षा या अँगूर, मुनि (अगस्त्य का पौधा), कनेर, जाती (चमेली), तगर (कगर), कुब्जिका (एक पुष्पवृक्ष, महासह) या अन्य देववृक्षों को भी कभी गृह में नहीं लगाना चाहिए।

अन्य वर्जितानि —

स्तम्भे मरालपक्षिण्यौ [1]**सोहते** देवताग्रत:।
सन्मुखं वर्जयेद् द्वारं न च भित्त्यन्तरे **परे॥ 33॥**

स्तम्भों पर हंसों का जोड़ा देवता के मन्दिर के आगे ही अर्थात् देवालय के आगे ही शोभाजनक होता है परन्तु द्वार के सम्मुख या भित्तियों के अन्दर हंसों का जोड़ा न बनाएँ, यह पूरी तरह से वर्जित है।

अन्यदप्याह —

गृहाणामेकशालानां **शतं** स्याच्चतुरुत्तरम्$_{104}$।
द्विशालानां द्विपञ्चाशत्$_{52}$ त्रिशालानां **द्विसप्तति:**$_{72}$ **॥ 34॥**

एकशाल गृहों के रूप गृहों में 104 गृह होते हैं, द्विशालाओं के रूप 52 और त्रिशालाओं के 72 होते हैं।

लक्षित होते हैं—अङ्घ्रेस्तथा मध्यखण्डमारूढं भूषणाय च॥ शिलाबद्धमसूरं च सुधामिलितभित्तिकम्। पञ्चैतान्यपि निन्ध्यानि दृश्यन्ते नरसद्मनि॥ (वास्तुविद्या 8, 54-55)

ग्रन्थान्तरे सुधायोगादि सङ्ग्रहस्तु— पूर्वं द्व्यंशं करालं मधुघृतकदलीनालिकेराम्बुमाषव्योषं वार्क्ष: कषाय: स्तनजदधिगुलत्रैफलाम्भांसि चैवम्। वृद्धान्यंशक्रमेण स्फुटशशिधवलं चूर्णमुक्तं शतांशं पिष्टं सर्वं यथावद् भवति वरसुधां वज्रबद्धं यथैव॥ चतुस्त्रिद्वयमासान्तमुषिता युक्तिमर्दिता। श्रेष्ठमध्याधमा ज्ञेया सुधा सौधादिबन्धनी॥ अथ कुड्यादिकं शुष्कं नीरन्ध्रं सुसमं मृदु। शुद्धाम्भसादौ प्रक्षाल्य दधिक्षीरगुलान्वितम्॥ बद्धोदकेन चालिप्य व्यपोह्यैकदिनं तत:। सुधां नियोजयेद् युक्त्या यथा यत्रोचितं भवेत्॥ (तन्त्रसमुच्चय, पूर्व. शिल्पभाग)

1. 'रोहतो' इति प्रकाशित पाठ:।

चतु:शालगृहाणां च षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$ ।
षड्जात्युत्पन्नभेदाश्च हर्म्यभेदा द्विरष्ट$_{16}$ च ॥ 35 ॥

इसी प्रकार से चतु:शाल गृहों के रूप 256 रूप भेद होते हैं। गृहों के छह जात्योत्पन्न भेद कहे हैं और हर्म्यों के सोलह भेद बताए हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां हर्म्यादिगुणदोषाधिकारो नाम द्वानवतितमं सूत्रम् ॥ 92 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में हर्म्य आदि के गुण-दोष अधिकार नामक बानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 92 ॥

युग्महंसविमलगृहद्वात्रिंशद्भेदलक्षणं त्रिनवतितमं सूत्रम् ॥ 93 ॥

अधुना युग्महंसादि गृहवर्णनं। विश्वकर्मोवाच —

हस्तिनी महिषी गावी छागली च यथाक्रमम्।
युग्मतः कथिताश्चैता हंसाद्या विमला गृहाः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि हस्तिनी, महिषी, गावी, छागली के क्रमानुसार ही बनने वाले युगल गृहों, हंसादि विमल गृहों की जातियों के बारे में वर्णन हुआ है।

द्विहंसं च द्विचक्रं च द्विसारसमथापि वा।
द्विकोकिलमिति तथा हस्तिन्याद्याः प्रकीर्तिताः ॥ 2 ॥

पूर्वोक्त हस्तिन्यादि के आद्य क्रम से ये गृह द्विहंस, द्विचक्रवाक, द्विसारस और द्विकोकिल नाम से कहे जाते हैं।

तस्य क्षेत्रोपायमाह —

चतुरस्त्रं समं कृत्वा त्रिपुटे नवकोष्ठकम्।
मध्यकोष्ठपदं त्यक्त्वा शालायुग्मे प्रतिष्ठिताः ॥ 3 ॥

इसके लिए सर्वप्रथम क्षेत्र को चतुरस्त्र और समतल बनाएँ। इसमें तीन-तीन खण्डों की आयोजना कर नौ कोष्ठकों का निवेश करें। मध्य के कोष्ठपदों को छोड़कर दो-दो में युग्मशाला का निवेशन करें।

दिशास्थित्यानुसारेण हस्तिन्यादि युग्माष्टकं च तस्य नामानि —

दक्षिणस्यामथाऽऽग्नेय्यां हस्तिन्युत्तरदिङ्मुखा।
पितृवारुणसंयोगा महिषी चैन्द्रदिङ्मुखा ॥ 4 ॥

याम्यामुखा तथा गावी सौम्यमारुतसंस्थिता।
वारुणाभिमुखा शस्ता ऐन्द्रे रौद्रे च छागली॥ 5॥

इस प्रकार से दक्षिण और आग्नेय कोणीय युग्म होगा वह उत्तरमुखी हस्तिनी संज्ञक शाला होगी। पितृ और वारुण-पश्चिमी दिशा युग्य पूर्वमुखी महिषी शाला होगी। सौम्य या उत्तर दिशा और वायव्यकोण स्थित युग्म दक्षिणमुखी गावी शाला होगी। पूर्व और ईशान कोणीय दिशा का युग्म पश्चिममुखी छागली होगी।

अथालिन्दानुसारेण सञ्ज्ञामाह —

मुखालिन्दे श्रीधरश्च याम्याग्रे तु जयावहः।
प्रदक्षिणं श्रीजयश्च मुखयुग्मस्तु कामदः॥ 6॥

जिस गृह के मुख के सामने अलिन्द, पोशाल हो उसे श्रीधर कहा जाता है। जिसके दक्षिण की ओर अलिन्द, पोशाल हो उसे जयावह; जिसके प्रदक्षिण में पोशाल हो उसे श्रीजय और जिस गृह के मुख पर युग्म या दो पोशाल हों उसे कामद कहते हैं।

याम्याग्रमुखालिन्दे तु जयन्तो नाम शोभनः।
युग्मालिन्दे विशालश्च कर्तव्यः सुप्रदक्षिणम्॥ 7॥

दक्षिण दिशा मुखी अलिन्द, पोशाल वाले गृह को जयन्त शोभन नाम से कहा गया है, उसके प्रदक्षिणा में दो अलिन्द, पोशाल विशाल रूप से बनाने चाहिए।

अग्रे तृतीयालिन्देषु सो भवेत् सोमसम्भवः।
क्रमद्वारे च हस्तिन्या युग्माष्टक गृहा मताः॥ 8॥

जिस भवन के आगे तीन अलिन्द, पोशाल हो, उसे सोमसम्भव कहते हैं। इस प्रकार क्रमशः द्वारों से हस्तिनी आदि युग्माष्टक गृह माने गए हैं।

अन्याष्टाधा स्वरूपमाह —

तद्रूपं तादृशाकारं दिडमुखाद्यभिधानकम्।
अष्टा$_8$ष्ट$_8$धा च प्रत्येकं कथयाम्यपराजित॥ 9॥

उनके रूप और उनके अनुरूप आकार, दिशाओं में रहने वाले मुखादि से कहे जाते हैं जो एक-एक भी आठ-आठ प्रकार के हैं, हे अपराजित! अब मैं तुम्हें उनके बारे में भी कहता हूँ।

गजं भीमं पराक्रमं जयन्तं भासुरं तथा।
वसिष्ठं च समुद्रं च महिषीपृष्ठसम्भवम्॥ 10॥

उनके क्रमशः नाम हैं— 1. गज, 2. भीम, 3. पराक्रम, 4. जयन्त, 5. भासुर, 6. वसिष्ठ, 7. समुद्र और 8. महिषीपृष्ठ।

सुनाभं वर्तकं सौम्यं चन्द्रतेजश्च दीपकम्।
कुलद्योतं सुनेत्रं च गावीपृष्ठनिवासिनाम्॥ 11॥

अन्य के क्रमशः नाम हैं— 1. सुनाभ, 2. वर्तक, 3. सौम्य, 4. चन्द्रतेज, 5. दीपक, 6. कुलद्योत, 7. सुनेत्र और 8. गावीपृष्ठ निवास।

पाशुपतं महाकान्तं सुतेजस्तेजोवर्द्धनम्।
वामनं दस्युघातं च रुद्रतेजःसमुद्भवम्॥ 12॥
छागलीपृष्ठकोच्छ्राये गृहा एवं प्रकीर्तिताः।
अष्टा$_{8}$वष्टौ$_{8}$ प्रतिदिशं द्वात्रिंशच्च$_{32}$ गृहा मताः॥ 13॥

अन्य के नाम क्रमशः इस प्रकार होंगे— 1. पाशुपत, 2. महाकान्त, 3. सुतेज, 4. तेजवर्द्धन, 5. वामन, 6. दस्युघात, 7. रुद्रतेज समुद्भव और 8. छागलीपृष्ठक। ये आठ-आठ प्रत्येक दिशा में होकर 32 प्रकार के गृह हो जाते हैं।

हस्तिनी हंससम्भूता गावी सारससम्भवा।
छागली कोकिलोद्भूता महिषी चक्रवाकजा॥ 14॥

पूर्वोक्त गृहों में युग्मानुसार देखें तो हस्तिनी हंस सम्भूता है, गावी सारस सम्भवा है, छागली कोकिल से उद्भूत और महिषी शाला चकवा से हुई है।

अष्टौ हंससमुद्भूता अष्टौ सारससम्भवाः।
चक्रवाकभवा चाष्टाऽष्टकोकिलभवा मताः॥ 15॥

इसी तरह आठ शालाएँ हंस से उत्पन्न हुईं। आठ सारस से, आठ चक्रवाक और आठ ही कोकिल से सम्भूत मानी गई हैं।

गृहा द्वात्रिंशदेव हि युग्मभेदैः प्रभेदिताः।
अत ऊर्ध्वं द्विशालानि द्विपञ्चाशद्$_{52}$ गृहाणि च॥ 16॥

इस प्रकार बत्तीस गृह युग्म भेदानुसार बाँटे गए हैं। इसके उपरान्त द्विशाल गृह 52 प्रकार के कहे गए हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां युग्महंसविमलगृहद्वात्रिंशद्भेदलक्षणाधिकारो नाम त्रिनवतितमं सूत्रम्॥ 93॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में युग्म हंसविमलगृह बत्तीस भेद लक्षण अधिकार नामक तिरानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 93॥

द्विशालगृहलक्षणं चतुर्नवतितमं सूत्रम्॥ 94॥[1]

अधुना द्विशालगृहं। विश्वकर्मोवाच —

द्विशालानि द्विपञ्चाशच्छुभानि वाशुभानि च।
लक्षणानि क्रमात् तेषां कथयामि समासतः॥ 1॥

(अब द्विशाल गृहों के लक्षणों को कहा जा रहा है) विश्वकर्मा बोले कि अब मैं बावन शुभ और अशुभ द्विशालाओं के लक्षणों को क्रमशः संक्षिप्त रूप से कहता हूँ।

सिद्धादीनां नामाह —

सिद्धाख्यं(?-र्थं) यमसूर्यं च दण्डाख्यं वातसञ्ज्ञितम्।
चुल्ली काचं च मुख्यानि द्विशालानि प्रचक्षते॥ 2॥

द्विशाल गृहों में मुख्य-मुख्य द्विशालाओं के नाम हैं— 1. सिद्धार्थ, 2. यमसूर्य, 3. दण्ड, 4. वात, 5. चुल्ली तथा 6. काच।[2]

---

1. यह सूत्र समराङ्गणसूत्रधार के 22वें अध्याय से किञ्चित पाठान्तर के साथ उद्धृत है।
2. सिद्धार्थादि नाम मत्स्यपुराण, बृहत्संहिता, विश्वकर्माप्रकाश आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में आए हैं। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि दक्षिण-पश्चिम दो शालाओं से युक्त भवन को धन-धान्यप्रद कहा जाता है, यह मनुष्यों के लिए कल्याणकारी तथा पुत्रप्रद होता है। पश्चिम-उत्तरशाला वाले भवन को यमसूर्य कहा गया है जो मनुष्यों के लिए राजा और अग्नि भयकारी तथा कुल का विनाशक होता है। जिस भवन में केवल पूर्व-उत्तर की ही दो शालाएँ हों, उसे दण्ड कहा जाता है। यह अकालमृत्यु और शत्रुपक्ष से भयोत्पादक होता है। पूर्व-दक्षिण की शालाओं से युक्त द्विशालभवन धन कहा जाता है। यह शस्त्र व पराजय का भय देने वाला है। केवल पूर्व-पश्चिम की ओर बना हुआ चुल्ली संज्ञक द्विशालभवन मृत्युसूचक और शोककारक होता है। केवल उत्तर-दक्षिण की शाला वाला द्विशालभवन भयकारी होता है अतः उसे नहीं बनवाना चाहिए—याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्य फलप्रदम्॥ क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्। यमसूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्॥ राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत्। उदक्पूर्वे तु शाले दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत्॥ अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम्। धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद् शालकम्॥ तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभव भयावहम्। चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी॥ वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्। कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम्॥ सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि द्विशालानि सदा बुधैः। (मत्स्य. 254, 8-14)

प्रकारान्तर से बृहत्संहिताकार का मत है कि जिस शाला के पश्चिम और दक्षिण में शाला हो, उसको 'सिद्धार्थ', जिसके पश्चिम और उत्तर में हो उसको 'यमसूर्य', जिसके उत्तर व पूर्व में हो उसे 'दण्ड', जिसके पूर्व व दक्षिण में हो उसे 'वात', जिसके पूर्व व पश्चिम में हो उसे 'गृहचुल्ली' और जिसके दक्षिण व उत्तर में हो उसे 'काच' संज्ञक वास्तु कहा गया है। सिद्धार्थ वास्तु में धनागम, यमसूर्य में गृहकर्ता की मृत्यु, दण्ड में दण्ड या वध, वात में नित्य कलह, गृहचुल्ली में धन विनाश और काच संज्ञक वास्तु में भ्रातृ या जाति विरोध होता है— सिद्धार्थमपरयाम्ये यमसूर्यं पश्चिमोत्तरे शाले। दण्डाख्यमुदक्पूर्वे वाताख्यं प्राग्युता याम्या॥ पूर्वापरे तु शाले गृहचुल्ली दक्षिणोत्तरे काचम्। सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिर्यमसूर्ये गृहपतेर्मृत्युः॥ दण्डवधो दण्डाख्ये कलहोद्वेगः सदैव वाताख्ये। वित्तविनाशश्चुल्यां ज्ञातिविरोधः स्मृतः काचे॥ (बृहत्संहिता 54, 39-41)

अनेकभेदभिन्नानि लघुप्रस्तारयोगतः।
मूषाभेदक्रमेण स्युर्भेदाभेदक्रमेण **च**॥ 3॥

लघुप्रस्तार योग से इनके भी अनेकों भिन्न-भिन्न भेद होते हैं। इनके मूषाभेद क्रम से भी मुखाकार और भेदाभेद क्रम से भी नाना स्वरूप होते हैं।

तथा विलीनकरणाद् **मूषा** चालिन्दमार्गतः।[1]
प्राग्ग्रीवादिविधानेन द्विशालानि विपर्ययात्॥ 4॥
यथासम्भवमेतानि कथयामि **समासतः**।

इसी प्रकार द्विशालाओं में विलीनकरण (?निलीनकर्ण) से, मूषा (? वीथिका) और अलिन्द के मार्ग से, प्राग्ग्रीव विधान से और विपर्यय यानी उलटफेर से भी जितने भेद हो सकते हैं, उनके बारे में मैं संक्षिप्त रूप से कहता हूँ।

निर्वाहश्चैवमूषाणामनिर्वाहश्च नामतः॥ 5॥
छन्दतो गुणतो रूपादशुभानि **शुभानि च**।
हितार्थाय **नरेद्राणां वर्णिनां** लिङ्गिनामपि॥ 6॥

मूषाओं का वर्णन (निर्वाह) उनके नामों से नहीं करते हुए, उनके छन्द (यहाँ अभिप्राय उद्दिष्ट व नष्ट से है) से, गुण से, शुभ रूप आदि प्रस्तारों से, अशुभ रूप से, राजाओं, वर्णाश्रित वर्गों (विप्रादिकों) और लिङ्गियों के हित के लिए कहे गए हैं, उन चिह्न और नामों को कहता हूँ।

सिद्धार्थादि फलाफलमाह —

हस्तिनी महिषी चेति द्वे शाले यत्र वेश्मनि।
तत् सिद्धार्थमिति **ज्ञेयं** वित्तसम्पत्तिकारकम्॥ 7॥

जिस गृह में हस्तिनी और महिषी— इन दो शालाओं का संयोजन होता है, उसको 'सिद्धार्थ' नाम से जाना जाता है। यह वित्त, सम्पत्ति आदि की कारक है।

मृत्युदं महिषीणवीभ्यां **भवेद्** यमसूर्यकम्।
दण्डाख्यं छागलीगावीशालाभ्यां दण्डभीतिदम्॥ 8॥

जिस गृह में महिषी और गावी— इन दो शालाओं का संयोजन होता है, उसको 'यमसूर्यक' कहते हैं। यह मृत्युप्रद है। जिस गृह में छागली और गावी— इन दो शालाओं का संयोजन होता है, उसको 'दण्ड' नाम से जाना जाता है और यह दण्ड, भयदायक है।

---

1. तथा निलीनकरणाद् वीथिकालिन्दमार्गतः। इति समराङ्गणे. (22, 4)

करेणुच्छालीयुक्तं वातमुद्वेगकारकम्।
महिष्यजाभ्यामुद्वेगकरी **चुल्ली धनापहा**॥ 9॥

जिस गृह में हस्तिनी और छागली— इन दो शालाओं का संयोजन होता है, उसे 'वात' नाम से जाना जाता है, इससे उद्वेग बना रहता है। जिस गृह में महिषी और छागली शालाओं का संयोजन हो, उसे 'चुल्ली' कहा जाता है, यह धन अपहर्ता है।

काचं करेणुगावीभ्यां सुहृत्प्रीतिविनाशनम्।

जिस गृह में हस्तिनी और गावी— इन दो शालाओं का संयोजन होता है, उसे 'काच' नामक शाला के रूप में जाना जाता है, यह मित्रों में प्रीति विनाशक है।[1]

अन्यदप्याह —

एकमूषममूषं **च न** द्विशालेषु **कारयेत्**॥ 10॥

द्विशालाओं में कभी भी एक मूष (जाली, रोशनदान) न करें और उनको बिना मूष का भी नहीं करे।

व्यत्यासात् काचचुल्लयोश्च सर्वाभिस्तिसृभिस्तथा।

काच और चुल्ली के जैसे द्विशाल गृहों में वैपरीत्य या अदला-बदली कर दिया जाए तो समस्त अस्तित्व का नाश हुआ जानना चाहिए।

चत्वार्याद्यानि **भिद्यन्ते** लघुप्रस्तारयोगतः॥ 11॥
प्रत्येकमेकादशधा 11 मन्दिराण्यभिधानतः।

पूर्वोक्त चारों— सिद्धार्थ, यमसूर्यक, दण्ड और वात के भी लघु प्रस्तार योग से कई भाग बनते हैं। उन भागों में प्रत्येक के 11 प्रकार होते हैं जिनके मन्दिर आदि नाम रखे गए हैं।

अन्यदप्याह —

अन्ये चतुर्धा भिद्येते प्रत्येकं द्वे निवेशने॥ 12॥
एषां मूषाभिधाभेदात् तद्वाह्यावाहहेतुकाः।

---

1. मनुष्यालयचन्द्रिका में आया है कि ऐसी शाला जो पूर्व और पश्चिम में शाला से रहित हो 'काच' कही जाती है। ऐसी शाला कलह और उद्वेग को उत्पन्न करने वाली है। दक्षिण और उत्तर से रहित द्विशाला को 'सिद्धार्थ' कहा जाता है। यह अपने नामानुसार ही धन की सिद्धि देने वाली है। पूर्व आदि से क्रम से प्रारम्भ कर बनने वाली द्विशालाएँ मृत्य, भय, विक्रम और धनागम में सहायक मानी गई हैं, ऐसे याम्यादिक या दक्षिण के क्रम से द्विशालाओं का कार्य करवाया जाना चाहिए— **प्राक्पाश्चात्यविहीनके कलहमुद्वेगं च काचाभिधे याम्योदग्रहितेऽर्थसिद्धिरुदिता सिद्धार्थकाख्ये द्विके। प्रागादिद्वितयोनिते क्रमवशान्मृत्युं भयं विक्रमं चार्थाप्तिं प्रवदन्त्यतः क्रमवशाद् याम्यादिकं कल्प्येत्**॥ (मनुष्यालय. 4, 29)

अन्य द्विशाल गृहों यानी चुल्ली और काच में प्रत्येक के चार-चार भाग होते हैं। इनके मूषा भेद यानी जालियाँ आदि रखने से गृह के बाहर से शुद्ध पवनादि का प्रवाह निश्चित होता है।

सिद्धार्थात् गृहनामानि —

वसुधारं भवेत् तेषामाद्यं सिद्धार्थकं ततः ॥ 13 ॥
कल्याणकं शाश्वतं च शिवं कामप्रदं सदा।
स्त्रीदं शान्तं निष्कलङ्कं धनाधीशं कुबेरकम् ॥ 14 ॥
सिद्धार्थमनुजात्येवमेतान्येकादश क्रमात्।

प्रथमतः 1. सिद्धार्थक के बाद उससे 2. वसुधार, 3. कल्याणक, 4. शाश्वत, 5. शिव, 6. कामप्रद, 7. स्त्रीद, 8. शान्त, 9. निष्कलङ्क, 10. धनाधीश और 11. कुबेरक— ये सिद्धार्थ के अनुक्रम से ग्यारह भेद कहे गए हैं।

यमसूर्यात् गृहनामानि —

संहारं यमसूर्यं च कालं वैवस्वतं यमम् ॥ 15 ॥
करालं विकरालं च कबन्धं मृतकं शवम्।
यमसूर्यस्य भेदाः स्युः सद्मनो महिषं तथा ॥ 16 ॥

इसके उपरान्त 1. यमसूर्य के बाद उससे 2. संहार, 3. काल, 4. वैवस्वत, 5. यम, 6. कराल, 7. विकराल, 8. कबन्ध, 9. मृतक, 10 शव और 11. महिष— ये सब यमसूर्य द्विशाल गृह के ग्यारह भेद हैं।

दण्डात् गृहनामानि —

प्रचण्डचण्डे दण्डाख्यमुद्दण्डं काण्डकोटरे।
विग्रहं निग्रहं धूम्रं निर्धूमं दन्ति दारुणम् ॥ 17 ॥
एकादशामी दण्डस्य भेदा दण्डभयप्रदाः।

इसके अनन्तर, 1. दण्ड के बाद उससे होने वाले 2. प्रचण्डचण्ड, 3. दण्ड, 4. उद्दण्ड, 5. काण्डकोटर, 6. विग्रह, 7. निग्रह, 8. धूम्र, 9. निर्धूम, 10. दन्ति और 11. दारुण— ये दण्ड द्विशाल गृह के ग्यारह भेद हैं और दण्ड, भयप्रद कहे गए हैं।

वातात् गृहनामानि —

मरुत्पवनवाताख्यान्यनिलं सप्रभञ्जनम् ॥ 18 ॥
(घ)धनार्यम्बुदविध्वंसि प्रलयं कलहं कलिः।
कलिचुल्ली च वातस्य भेदा उद्वेगकारकाः ॥ 19 ॥

पुनः 1. वात संज्ञित द्विशाल गृह से होने वाले 2. मरुत, 3. पवन, 4. अनिल, 5. प्रभञ्जन, 6. घनार्य, (घनाख्य, जैसा कि अगले सूत्र में आया है) 7. अम्बुद विध्वंसी (रोग!), 8. प्रलय, 9. कलह, 10. कलि और 11. कलि चुल्ली— ये ग्यारह वात द्विशाल गृह के भेद हैं जो उद्वेगकारक हैं।

चुल्ल्याकाचात् गृहनामानि —

रोगं चुल्ल्यनलं भस्म चुल्ल्या भेदचतुष्टयम्।
काचस्य तु च्छलं काचं कुलघ्नं च विरोधिकृत्॥ 20॥

इसके बाद चुल्ली द्विशाल गृहों के चार भेदों में 1. रोग, 2. चुल्ल, 3. अनल और 4. भस्म होते हैं। काच के द्विशाल गृहों के चार भेदों में 1. छल, 2. काच, 3. कुलघ्न और 4. विरोधीकृत कहे गए हैं।

अन्यदप्याह —

द्वापञ्चाशद्$_{52}$ द्विशालानां नामभेदाः प्रकीर्तिताः।[1]
इत्युक्ताश्च पृथग्भेदा द्विशालानां यथाक्रमम्॥ 21॥

इस प्रकार से प्रारम्भ के सिद्धार्थादि चार गृहों के 11 के क्रम से चवालीस और अन्तिम चुल्ल्यादि दो के 4 क्रम से आठ- कुल मिलाकर सब द्विशाल गृहों के नामानुसार बावन भेद बताए गए हैं।

द्विपञ्चाशद् द्विशालानां प्रत्येकं द्विसहस्रतः।
सचतुःसहस्रलक्षं द्विशालानां त सद्मनाम्॥ 22॥

इन सब द्विशालाओं के कहे गए पृथक्-पृथक् भेदों के भी क्रम से इन 52 द्विशालाओं के प्रत्येक के 2000 भेद होते हैं और इसी प्रकार 52 × 2000 = 104000 यानी इन गृहों के एक लाख चार हजार भेद बनते हैं।

अष्टाष्टतो द्विशालनां हर्म्यादीनां पुनस्तथा।
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि चाष्टलक्षाणि भेदतः॥ 23॥

यही नहीं, इन सभी द्विशाल गृहों के भी पुनः आठ भेद होते हैं जो मिलाकर 104000 × 8 = 832000 यानी आठ लाख बत्तीस हजार भेदों में कहे गए हैं।

एकशालागृहादीनामेतत्तुल्यं प्रभेदतः।
चतुःषष्टिसहस्राणि द्व्यष्टलक्षाणि वै तथा॥ 24॥

---

1. समराङ्गण. में यहाँ तक पाठ समानतः मिलता है, किञ्चित पाठभेद हैं— द्वापञ्चाशद् द्विशालानाममी भेदाः प्रकीर्तिताः। ब्रूमः साम्प्रतमेतेषां लक्षणानि पृथक्-पृथक्॥ (समराङ्गण. 22, 21) शेष श्लोक ग्रन्थकार ने अगले सूत्र में प्रयुक्त किए हैं।

एक शाल गृहों के भी इतने ही (832000) भेद होने से ये कुल सोलह लाख चौंसठ हजार (16, 64000) भेद हो जाते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां द्विशालगृहलक्षणाधिकारो नाम चतुर्नवतितमं सूत्रम्॥ 94॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में द्विशाल गृह लक्षण अधिकार नामक चौरानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 94॥

द्विशालगृहलक्षणक्रमो नाम पञ्चनवतितमं सूत्रम्॥ 95॥[1]

अधुना द्विशालप्रभेदस्य फलाफलं। विश्वकर्मोवाच —

सम्प्रत्येषां च कथये लक्षणानि पृथक् पृथक्।

अब मैं (सिद्धार्थादि) के प्रभेदों के फल लक्षणों को पृथक्-पृथक् कहता हूँ।

आद्याद्द्वितीये वहतो यत्र मूषे धनप्रदम्॥ 1॥
वसुधाराभिधानं तद् गृहं सर्वार्थसिद्धिदम्।

इन द्विशाल गृहों में पहली एवं द्वितीय धनप्रद मूषाओं (जाली, खिड़की) को वहन करने वाला सर्वार्थ-सिद्धक गृह 'वसुधार' नामक होता है।

आद्यातृतीये वहतो यत्र सिद्धार्थकं विदुः॥ 2॥
सर्वोपद्रवनिर्मुक्तं सिद्धिकृच्चिन्तितार्थकृत्।
द्वितृतीयं वहन्मूषं भवेत्कल्याणमृद्धिकृत्॥ 3॥

जिस गृह में पहली और तीसरी मूषाएँ हों, वह 'सिद्धार्थक' होता है। द्वितीय तृतीय मूषाओं को वहन करता हुआ, समस्त उपद्रवों से रहित, सिद्धिकारी, इच्छित अभीष्टों की पूर्ति करने वाला, ऋद्धिकारी कल्याण संज्ञक गृह कहा जाता है।

वहदाद्यचतुर्थीकं शाश्वतं गृहमुत्तमम्।

प्रथम और चतुर्थ मूषाओं से युक्त 'शाश्वत' नामक उत्तम गृह कहा जाता है।

शिवं द्वितीयातुर्याभ्यां वहन्तीभ्यां सुखप्रदम्॥ 4॥
कामदं त्रिचतुर्थीभ्यां भवेच्चिन्तितकामदम्।

द्वितीय व चतुर्थ मूषाओं का धारक सुख प्रदायक 'शिव' संज्ञक गृह होता है। अभीष्ट मनोरथों की पूर्ति करने वाला 'कामद' नामक गृह तृतीय और चतुर्थ मूषाओं से युक्त होता है।

---

1. यह सूत्र समराङ्गणसूत्रधार के 22वें अध्याय के श्लोक 22 से किञ्चित पातान्तर के साथ उद्धृत है।

आद्याभिश्च तिसृभिश्च [1]स्त्रीपदं शं(?सम-)प्रदं प्रभोः ॥ 5 ॥
आद्याद्वितीयातुर्याभिः शान्तं शान्तिप्रदायकम्।

गृहकर्ता के निमित्त शान्ति और सुख प्रदाता 'स्त्रीप्रद' संज्ञक गृह पहले की तीन मूषाओं से संयुक्त होता है एवं शान्तिदायक 'शान्त' संज्ञक गृह पहली, द्वितीय एवं चतुर्थ मूषा से युक्त कहा जाता है।

आद्यातृतीयातुर्याभिर्निष्कलङ्कं समृद्धिकृत् ॥ 6 ॥
द्वितृतीयाचतुर्थीभिर्धनेशं धनवर्द्धनम्।
आद्याद्याभिश्चतसृभिः कुबेरं वित्तवृद्धिकृत् ॥ 7 ॥

प्रथम, तृतीय और चतुर्थ मूषा से युक्त गृह 'निष्कलङ्क' है जो समृद्धिकारी है और धनवर्धक गृह धनेश द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ मूषा से युक्त होता है। इसी प्रकार वित्त वृद्धिकारी गृह 'कुबेर' पहले की चारों मूषाओं से युक्त होता है।

यमसूर्यस्य प्रभेदमाह —

यमसूर्यप्रभेदेषु कथये फललक्षणे।[2]
आद्याद्वितीयामूषाभ्यां संहारं स्वामिनाशनम् ॥ 8 ॥

अब मैं यमसूर्य के प्रभेदों के लक्षणों व फलों को कहता हूँ। स्वामी का विनाशकारी 'संहार' संज्ञक गृह प्रथम व दूसरी मूषाओं से युक्त होता है।

गृहमाद्यातृतीयाभ्यां मृत्युदं यमसूर्यकम्।
द्वितीयातृतीयाभ्यां च कालं पीठविनाशनम् ॥ 9 ॥[3]

गृहस्वामी के लिए मृत्युकारी 'यमसूर्यक' गृह प्रथम व तृतीय मूषाओं से युक्त होता है जबकि द्वितीय व तृतीय मूषाओं से युक्त गृह 'काल पीठ' विनाशक (पाठान्तर से स्त्री विनाशक) होता है।

वैवस्वतं वहत्तूर्यप्रथमं रोगकारकम्।
यमालयं द्वितुर्याभ्यां स्वामिनो यमदर्शनम् ॥ 10 ॥

रोगकारक 'वैवस्वत' चतुर्थ और प्रथम मूषाओं का वाहक होता है। द्वितीय व चतुर्थ मूषाओं का धारक 'यमालय' गृहस्वामी को यम का दर्शन करवाता है।

करालं त्रिचतुर्थीभ्यां भर्तुः प्राणविनाशनम्।
आद्याभिस्तिसृभिः स्वामिनाशनं विकरालकम् ॥ 11 ॥

---

1. 'श्रीपदं' इति प्रकाशित पाठः।
2. तथा च समराङ्गणे—यमसूर्यप्रभेदेषु ब्रूमो लक्ष्म फलानि च। (समराङ्गण. 22, 28)
3. तथा च समराङ्गणे—द्वितृतीयं वहन्मूषं कालं योषिद्विनाशनम् ॥ (तत्रैव 22, 30)

'कराल' नामक गृह तृतीय व चतुर्थ मूषाओं से युक्त होता है और गृहस्वामी के प्राणों का विनाश करता है। स्वामिनाशक 'विकराल' संज्ञक गृह पहले की तीन मूषाओं से युक्त होता है।

आद्याद्वितीयातुर्याभिः कबन्धं भर्तृनाशनम्।
आद्यातृतीयातुर्याभिर्भर्तृघ्नं मृतकालयम्॥ 12॥

प्रथम, द्वितीय व चतुर्थ मूषाओं से उपलक्षित होने वाला 'कबन्ध' संज्ञक गृह भर्ता के प्राण लेने वाला होता है जबकि प्रथम, तृतीय व चतुर्थ मूषाओं का वाहक गृह 'मृतकालय' स्वामी का संहारक होता है।

शवं द्वित्रिचतुर्थीभिः स्वामिनो मरणप्रदम्।
आद्याद्याभिश्चतसृभिः स्वामिघ्नं महिषं विदुः॥ 13॥

इसी प्रकार 'शव' नामक गृह द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ मूषाओं का वहनकर्ता और स्वामी के लिए मरणप्रद है। पहले की चारों मूषाओं से युक्त गृह महिष स्वामी का प्राणहन्ता होता है।

दण्डस्य प्रभेद सफलमाह —

प्रचण्डं दण्डभेदेषु पूर्वया सद्वितीयया।
गृहमादौ विजानीयाद् भर्तुर्नृपभयप्रदम्॥ 14॥

इसके अतिरिक्त दण्ड संज्ञक द्विशाल वाले गृहों के भेदों में प्रचण्ड संज्ञक गृह प्रथम व द्वितीय मूषाओं से युक्त होता है। इससे प्रारम्भ में स्वामी के लिए नृपभयकारी जानना चाहिए।

चण्डमाद्यातृतीयाभ्यां चण्डदण्डभयप्रदम्।
दण्डं स्याद् द्वितृतीयाभ्यां राजदण्डप्रदारुणम्॥ 15॥

प्रचण्ड दण्ड का भय उत्पन्न करने वाला 'चण्ड' संज्ञक गृह प्रथम व तृतीय मूषाओं से युक्त कहा है। राजदण्ड का हेतु 'दारुण दण्ड' संज्ञक गृह द्वितीय व तृतीय मूषाओं से युक्त होता है।

उद्दण्डमाद्यातुर्याभ्यां स्वामिनो दण्डभीतिदम्।
काण्डं द्वितीयातुर्याभ्यां काण्डवद्भेदकारकम्॥ 16॥

'उद्दण्ड' नामक गृह प्रथम व चतुर्थ मूषाओं से युक्त होता है और स्वामी को दण्ड और भय देने वाला होता है। 'काण्ड' संज्ञक गृह द्वितीय व चतुर्थ मूषाओं से युक्त और काण्डवत् भेद-कारक है।

कोटरं त्रिचतुर्थीभ्यां स्वामिनो विग्रहावहम्।
प्रथमाद्वितृतीयाभिर्विग्रहं वधबन्धकृत्॥ 17॥

'कोटर' संज्ञक गृह तृतीय व चतुर्थ मूषाओं से युक्त होता है एवं गृहस्वामी के लिए वैर-विग्रह खड़े करने वाला होता है। वध एवं बन्धन प्रदायक 'विग्रह' संज्ञक गृह प्रथम, द्वितीय व तृतीय मूषाओं से संयुक्त होता है।

आद्याद्वितीयातुर्याभिर्निग्रहं विग्रहावहम्।
आद्यातृतीयातुर्याभिर्धूम्रं सर्वधनापहम्॥ 18॥

इसी प्रकार विग्रह करवाने वाला 'निग्रह' संज्ञक गृह प्रथम, द्वितीय व चतुर्थ मूषाओं से युक्त बनता है। 'धूम्र' नामक गृह प्रथम, तृतीय व चतुर्थ मूषाओं से युक्त एवं समस्त धन का अपहर्ता होता है।

द्वितृतीयाचतुर्थीभिर्निर्धूमं धननाशनम्।
आद्याद्याभिश्चतसृभिर्दन्ति दारुणमर्थहृत्॥ 19॥

द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ मूषाओं से विनिर्मेय गृह 'निर्धूम' धननाशक माना गया है। पहले ही चारों ही मूषाओं का वाहक 'दन्तिदारुण' गृह अर्थ क्षयकारी होता है।

वातस्य प्रभेद सफलमाह —

आद्याद्वितीयामूषाभ्यां वातभेदेषु **मन्दिरम्।**
मरुत्सञ्ज्ञं भवेत्तत्र वसतां कलहः सदा॥ 20॥

इसके बाद वात नामक मुख्य द्विशाल गृह के भेदों में 'मरुत' नामाभिधान उस मन्दिर का है जिसमें प्रथम व द्वितीय मूषाओं का संयोजन होता है। वहाँ जो भी निवास करते हैं, उनमें परस्पर कलह ही बना रहता है।

उद्वेगकारि **पवनं** तृतीयाद्योपलक्षितम्।
वाताख्यं द्वितृतीयाभ्यां **सदा** सन्तापकारकम्॥ 21॥

गृहस्वामी के लिए उद्वेगकारी गृह 'पवन' संज्ञक है जो तृतीय व प्रथम मूषाओं से उपलक्षित होता है। 'वात' संज्ञक गृह द्वितीय व तृतीय मूषाओं से युक्त होता है जो सदा ही सन्तापकारी कहा गया है।

सन्तापोद्वासकार्याद्यातुर्याभ्यामलिनं **भवेत्।**
प्रभञ्जनं द्वितुर्याभ्यां शोकसन्तापकारकम्॥ 22॥

'अनिल' नामक गृह सन्ताप और उद्वासकारक कहा गया है। यह प्रथम व चतुर्थ मूषाओं से युक्त होता है। 'प्रभञ्जन' नामक गृह द्वितीय व चतुर्थ मूषाओं से युक्त और शोक, सन्तापकारक होता है।

घनाख्यं मोदविध्वंसि चतुर्थ्या च तृतीयया।[1]
आद्यया द्वितृतीयाभ्यां **रोगं** कार्यार्थनाशनम्॥ 23॥

'घनाख्य' गृह आमोद-प्रमोद का विध्वंसकारी होता है जो कि चतुर्थ व तृतीय मूषाओं से विनिर्मित होता है। प्रथम, द्वितीय व तृतीय मूषाओं के योग से बनने वाला 'रोग' नामक गृह मनोरथ, अर्थ का विनाश करता है।

आद्याद्वितीयातुर्याभिः **प्रलयं** चित्ततापकृत्।
आद्यातृतीयातुर्याभिः **कलहं** कलहावहम्॥ 24॥

चित्त में तापोत्पादक गृह की संज्ञा 'प्रलय' है जो कि प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ मूषाओं से बनता है। 'कलह' संज्ञक गृह कलहकारी होता है तथा प्रथम, तृतीय व चतुर्थ मूषाओं से विनिर्मितेय होता है।

द्वितृतीयाचतुर्थीभिः **कलिः** सन्तापकारकम्।
आद्याद्याभिश्चतसृभिः **कलिशूलं**(कलिचुल्ली!) धनापहम्॥ 25॥

द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ मूषाओं से बनने वाला गृह 'कलि' है जो कि सन्तापकारक होता है। इसी प्रकार पहले की चारों ही मूषाओं से युक्त होने वाला 'कलिशूल' (पाठान्तर से कलिचुल्ली, जैसा कि पूर्व सूत्र में आया है) धन का अपहर्ता माना गया है।

चुल्लीगृहस्य प्रभेद सफलमाह —

रोगमाद्याद्वितीयाभ्यां चुल्लीभेदेषु शोकदम्।
स्याद् द्वितीयातृतीयाभ्यां **चुल्ली** वित्तविनाशनी॥ 26॥

द्विशाल गृहों में चुल्ली के भेदों में 'रोग' नामक गृह प्रथम व द्वितीय मूषाओं से निर्मित होता है और यह शोकप्रदायक है। इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय मूषाओं की वाहक 'चुल्ली' वित्तविनाशक है।

वसुघ्नमनलं **नाम** त्रितुर्याभ्यां निवेशनम्।
वित्तघ्नमाद्यातुर्याभ्यां **भस्माख्यं स्वामिनः सदा**॥ 27॥

'अनल' संज्ञक गृह अपने यहाँ निवास करने वालों का प्राणान्तक (अथवा अर्थनाशक— वसुघ्न) है जो कि तृतीय व चतुर्थ मूषाओं के न्निवेशन से बनता है। 'भस्म' नामक गृह उसके बनवाने वाले के वित्त का सदा विनाशक है जो कि प्रथम व चतुर्थ मूषाओं से बनता है।

---

1. तथा च समराङ्गणे—तृतीयया चतुर्थ्या च घनार्युद्वेगकारकम्॥ (तत्रैव 22, 43)

काच प्रभेद सफलमाह —

उदङ्मुखाभ्यां मूषाभ्यां काचभेदेषु मन्दिरम्।
छलं नाम भवेन्नित्यं बन्धुवर्गापमानकृत्॥ 28॥

काच संज्ञक द्विशाल के प्रभेदों में 'छल' नामक मन्दिर उत्तराभिमुखी दो मूषाओं के योग से विनिर्मितेय है और यह सर्वदा बन्धुवर्ग के लिए अपमानकारी कहा गया है।

दक्षिणोत्तरमूषाभ्यां पौरस्ते वहतो यदि।
काचं नाम तदा वेश्म सज्जनानन्दकारकम्॥ 29॥

दक्षिण तथा उत्तराभिमुख मूषाओं का यदि पूर्व की ओर वहन हो तो 'काच' संज्ञक वेश्म बनता है जो कि सज्जनों के लिए आनन्दकारक होता है।

मूषाभ्यां दक्षिणाभ्यां स्यात्कुलहं त्रिकुलक्षयम्।
दक्षिणोत्तरमूषाभ्यां पाश्चात्ये वहतो यदि॥ 30॥
विरोधं नाम तद्वेश्म सर्वलोकविरोधकृत्।

इसी प्रकार दक्षिण की दोनों ही मूषाओं से निर्मितेय गृह तीनों कुलों (अपनी तीन पीढ़ियों अथवा स्व-कुल, मातुल-कुल एवं श्वसुर-कुल) का क्षय करने वाला होता है। दक्षिण व उत्तर की मूषाओं का यदि वहन पश्चिम की ओर हो तब विरोध संज्ञक गृह होगा जो कि समस्त लोक का विरोध कराने वाला होगा।

उक्तान्येवं द्विपञ्चाशद्$_{52}$ द्विशालानि समासतः॥ 31॥
मूषावहनभेदास्तु द्विशालनां यथाक्रमम्।
निदर्शिता वेश्मनां च त्रिशालं सूत्र गद्यते॥ 32॥

इस प्रकार यहाँ द्विशाल भवनों के बावन भेदों (व उनके फलों) को संक्षिप्ततः बताया गया। उन द्विशालाओं के मूषा वहन (जालियों से पवन प्रवाह) भेदों को भी यथाक्रम से कहा गया है। अब आगे वेश्मों में त्रिशाल के सूत्रों को कहूँगा।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
द्विशालगृहलक्षणक्रमाधिकारो नाम पञ्चनवतितमं सूत्रम्॥ 95॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में द्विशाल गृह लक्षण क्रम अधिकार नामक पचानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 95॥

त्रिशाललक्षणं षण्णवतितमं सूत्रम्॥ 96॥

अधुना त्रिशालप्रभेदस्य फलाफलं। विश्वकर्मोवाच —

कालदण्डं सुनाभं च जयन्तं रिपुमर्द्दनम्।
त्रिशालानि तु चत्वारि दिशावहनभेदतः॥ 1॥

विश्वकर्मा अपराजित के प्रति आगे बोले— 1. कालदण्ड, 2. सुनाभ, 3. जयन्त और 4. रिपुमर्दन— त्रिशाल गृहों के ये चार नाम हैं जो दिशाओं के वहन के अनुसार होते हैं।[1]

दिशाच्छन्दोद्भवे छन्दे पृथगेकैकसद्मनाम्।
चतुःषष्टि$_{64}$स्त्वीरितानि पुनरन्यानि चाष्टभिः$_{88}$॥ 2॥

इनमें एक-एक भवन का छन्द दिशाओं के अनुसार बनता हुआ छन्द होता है। इस प्रकार से इन शालाओं के चौंसठ रूप होते हैं जो पुनः आठ-आठ के भेद से नए बनाए जाते हैं।

प्राच्यानुसारेण सञ्ज्ञामाह —

प्राग्दिग्मुखं भवेद्वेश्म कालदण्डं तु नामतः।
याम्यामुखं सुनाभं स्याद्वेश्मैवं नाम शोभनम्॥ 3॥
जयन्तं नामकं वेश्म तथा स्याद्वरुणोन्मुखम्।
उत्तरास्यं तु कर्तव्यं कामदं रिपुमर्द्दनम्॥ 4॥

दिशानुसार ही इन भवनों के नाम होते हैं। यथा— 1. पूर्व दिशा की ओर मुख वाला भवन कालदण्ड संज्ञक होता है; 2. दक्षिण दिशा की ओर मुख वाला भवन सुनाभ नामक शोभाजनक गृह होता है; 3. पश्चिम दिशा की ओर मुख वाला भवन जयन्त नामक होता है और 4. उत्तर दिशा की ओर मुख वाला भवन कामद नामक रिपुदमनकारी गृह होता है।

तस्य फलमाह —

कालदण्डं तथा वेश्म धनधान्यक्षयावहम्।
सुनाभे सर्वभद्रेषु पतिकल्याणकारकम्। 5॥
जयन्तं कीर्तिदं लोके सुरेन्द्रादिप्रपूजितम्।

---

1. समराङ्गणसूत्रधार में त्रिशाल भवनों के मुख्य नाम क्रमशः 1. हिरण्यनाभ, 2. सुक्षेत्र, 3. चुल्ली और 4. पक्षघ्न आए हैं— हिरण्यनाभमुत्कृष्टं हीनमुत्तरशालया। तत् स्याद् धनप्रदं भर्तुः सुक्षेत्रं पूर्वया विना॥ सुक्षेत्रं लक्षणोपेतमृद्धिवृद्धिप्रदं विभोः। चुल्ली दक्षिणया हीना शालया वित्तनाशिनी॥ (समराङ्गण. 22, 3-4)

रिपुमर्दनं तु राज्ञां शत्रूनुच्चाटयेद् ध्रुवम्॥ 6॥

इन भवनों के गुण इस प्रकार कहे गए हैं— कालदण्ड नामक भवन धन-धान्य का क्षरण करने वाला होता है। सुनाभ नामक भवन प्रत्येक भद्र, दिशा से प्रति कल्याणकारक होता है। जयन्त नामक गृह लोक में कीर्तिकारक होता है, ऐसा गृह सुरेन्द्रादि से पूजित होता है जबकि रिपुमर्दन संज्ञक गृह राजाओं के शत्रुओं का उच्चाटन करता है।

अथ प्रशस्तभवनमाह —

गृहाः प्राच्यापराः शस्ता नित्यं कल्याणकारकाः।
याम्योत्तरामुखा ये ते प्रतापकीर्तिवर्द्धनाः॥ 7॥

जो गृह पूर्व दिशोन्मुख अथवा पश्चिम दिशा मुखी होते हैं, वे प्रशस्त हैं और सदा कल्याणकारी होते हैं। इसी प्रकार जो गृह अपना मुख दक्षिण दिशा की ओर या उत्तर दिशा की ओर रखते हुए बनाए जाते हैं, वे भी प्रताप और कीर्ति बढ़ाने वाले होते हैं।

कालदण्डादिसद्मनामानि —

कालदण्डं प्रचण्डं च श्रीजयन्तं धनावहम्।
मायासद्मं महाकान्तं मनोहरं लक्ष्मीप्रियम्॥ 8॥
विमुखं क्रोधनाख्यं च स्वामिभक्तं धनेश्वरम्।
कालाख्यं विकरालाख्यं जनप्रियं च कामदम्॥ 9॥
कालदण्डादिसद्मानि सङ्ख्यया चैव षोडश$_{16}$।

अब कालदण्ड संज्ञक भवन के 16 भेदों के नाम दिए जाते हैं— 1. कालदण्ड, 2. प्रचण्ड, 3. श्रीजयन्त, 4. धनावह, 5. मायासद्म, 6. महाकान्त, 7. मनोहर, 8. लक्ष्मीप्रिय, 9. विमुख, 10. क्रोधन, 11. स्वामीभक्त, 12. धनेश्वर, 13. काल, 14. विकराल, 15. जनप्रिय और 16 कामद।

तस्य नामानुसारेण गुणदोषादीनां —

कालदण्डं विना मूषं त्रिशालं स्यादलङ्कृतम्॥ 10॥
आद्यमूषं प्रचण्डाख्यं श्रीजयं च द्वितीयया।
धनावहं तु द्व्याद्याभ्यां मायासद्म तृतीयया॥ 11॥

अब कालदण्ड भवनों के नामानुसार गुण-दोष कहे जाते हैं— 1. बिना मूषा या जाली के अलंकृत विशाल भवन को कालदण्ड कहा जाता है; 2. आगे एक मूषा वाला भवन प्रचण्ड कहलाता है; 3. वहीं दो मूषा वाला भवन श्रीजयन्त कहा

जाता है; 4. आरम्भ में ही दो मूषा वाला भवन धनावह और 5. आरम्भ में तीन मूषा वाला भवन मायासद्म कहा जाता है।

साद्ययैवं महाकान्तं द्वित्रयाभ्यां मनोहरम्।
द्व्याद्यतृतीयमूषैश्चेदेव लक्ष्मीप्रियं भवेत्॥ 12॥

इसके बाद, 6. दो-दो मूषाओं के साथ वाला भवन महाकान्त और 7. तीन-तीन मूषाओं वाला भवन मनोहर तथा इसी प्रकार 8. आदि में दो और तीसरी मूषाओं से युक्त भवन को लक्ष्मीप्रिय कहा जाता है।

विमुखं च चतुर्थ्या च क्रोधनाख्यं तु [1]साद्व्या।
स्वाभिभक्तं द्वितुर्याभ्यां [2]साद्व्या तु धनेश्वरम्॥ 13॥

इसके उपरान्त, 9. चतुर्थ मूषा युक्त भवन को विमुख; 10. दूसरी मूषा युक्त भवन को क्रोधन नाम से जाना जाता है; 11. दूसरी व चतुर्थ मूषायुक्त भवन को स्वामीभक्त कहते हैं और 12. दो-दो मूषा युक्त भवन को धनेश्वर कहा जाता है।

विना याम्यां तु कालाख्यं विकरालं चतुर्दिशम्।
जनप्रियं प्रतिमूषैः षड्दारुकं च कामदम्॥ 14॥

इसी प्रकार 13. दक्षिण दिशा में मूषा नहीं होने पर उसे काल नामक भवन कहते हैं; 14. चारों ही दिशाओं में मूषा हो तो उसे विकराल कहा जाता है। इसी तरह 15. प्रतिमूषा होने पर भवन जनप्रिय कहा जाता है जबकि 16. षड्दारुक का प्रयोग किए जाने पर भवन कामद हो जाता है।

कालदण्डाद्यष्टादशवेश्मानां वै भवन्ति हि।
नाम तुल्या गुणदोषाः शस्ताऽशस्ताश्च सर्वदा॥ 15॥

इस प्रकार कालदण्डादि से आरम्भ करके अठारह (? जबकि नामादि 16 ही आए हैं[3]) होते हैं जिनके नामानुसार ही उनका गुण-दोष और उपयोग की दृष्टि से वे सदा प्रशस्त-अप्रशस्त होते हैं।

सुनाभादिसद्मनामानि —

सुनाभं च शुभं शान्तं जयं च विभद्रं तथा।

---

1. 'साद्यया।' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'साद्यया।' इति प्रकाशित पाठः।
3. समराङ्गण. में सभी अठारह नाम मिलते हैं किन्तु उनकी संज्ञाएँ पृथक् हैं। यहाँ ग्रन्थकार ने नामों में भेद तो किया किन्तु सम्भवतः दो नाम रह गए हैं। अतएव सूत्रान्त में भवनों की संख्या 72 बताई है जबकि नामानुसार यह गणना 70 ही होती है।

कुबेर यक्षं पक्षाख्यं विवक्त्रं कलिसौम्यके ॥ 16 ॥
सुवक्त्र क्षयं कालाख्यं विपुलं राज्यवर्धनम्।
आत्मकं दारुणाख्यं च अष्टादश$_{18}$ सुनाभतः ॥ 17 ॥

अब सुनाभ कोटि से अठारह प्रकार के भवनों के नामादि कहे जा रहे हैं— 1. सुनाभ, 2. शुभ, 3. शान्त, 4. जय, 5. विभद्र, 6. कुबेर, 7. यक्ष, 8. पक्ष, 9. विवक्त्र, 10. कलि, 11. सौम्यक, 12. सुवक्त्र, 13. क्षय, 14. काल, 15. विपुल, 16. राज्यवर्धन, 17. आत्मक और 18. दारुण।

जयन्तादिसद्मनामानि —

जयन्तं भासुरं भीमं श्रीजयं सुविश्वासकम्।
शस्तं च शाश्वतं सारं दुर्दयं चैव क्रोधनम्॥ 18 ॥
सौख्यं पुष्टं भयं घोरमीश्वरानन्दकं तथा।
पशुपत्युत्तमे चैव अष्टादश$_{18}$ जयन्ततः ॥ 19 ॥

अब जयन्त कोटि से अठारह प्रकार के भवनों के नामादि बताए जा रहे हैं— 1. जयन्त, 2. भासुर, 3. भीम, 4. श्रीजय, 5. सुविश्वासक, 6. शस्त, 7. शाश्वत, 8. सार, 9. दुर्दय, 10. क्रोधन, 11. सौख्य, 12. पुष्ट, 13. भय, 14. घोर, 15. ईश्वर, 16. आनन्दक, 17. पशुपति और 18. उत्तम।

रिपुमर्दनादिसद्मनामानि —

रिपुमर्दनसुनेत्रे बलं चातिबलं तथा।
अशुभं च शिवं लाभं विशालं श्रीक्रूरे प्रभुम्॥ 20 ॥
कालनेत्रं विनेत्र च लक्ष्मीधरं च श्रीपतिम्।
महाजयं जयाख्यं च अष्टादश$_{18}$ प्रकीर्तिताः ॥ 21 ॥

अब रिपुमर्दन भवन की कोटि के अठारह प्रकार के भवनों के नामादि कहे जा रहे हैं— 1. रिपुमर्दन, 2. सुनेत्र, 3. बल, 4. अतिबल, 5. अशुभ, 6. शिव, 7. लाभ, 8. विशाल, 9. श्री, 10. क्रूर, 11. प्रभु, 12. काल, 13. नेत्र, 14. विनेत्र, 15. लक्ष्मीधर, 16. श्रीपति, 17. महाजय और 18. जय।

यथानाम गुणाश्चैवं दोषा ये तान् विवर्जयेत्।
प्रोक्ता चैवं त्रिशालानां सङ्ख्या द्वासप्ततिस्तथा$_{72}$ ॥ 22 ॥

इनके यथा नाम तथा गुण-दोष कहे गए हैं। अस्तु, दोषकारक भवनों को वर्जित जानकर त्याग दें। त्रिशालाओं के ये 72 नाम क्रमानुसार होते हैं।

यथा युग्मोद्भवा भेदा द्विशाले च त्रिशालके।
तद्युक्तिश्च विधातव्या चतुःशालगृहेषु च॥ 23॥

जिस प्रकार से द्विशाल भवनों और त्रिशाल भवनों के युग्मोद्भवभेद अर्थात् दो के मिलन से बनने वाले गृह-प्रकार होते हैं, उसी प्रकार चतुःशाल भवनों का भी उक्त युक्ति के अनुसार ही भेद करने का विधान है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां त्रिशाललक्षणाधिकारो नाम षण्णवतितमं सूत्रम्॥ 96॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में त्रिशाल लक्षण अधिकार नामक छियानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 96॥

त्रिशालगृहलक्षणक्रमो नाम सप्तनवतितमं सूत्रम्॥ 97॥[1]

विश्वकर्मोवाच —

कालदण्डं विनामूषैर्धनधान्यसुखावहम्।
आद्यमूषं प्रचण्डाख्यं प्रतापकीर्तिवर्द्धनम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि कालदण्ड जाति का गृह बिना मूषा या जाली के ही धन-धान्य और सुख का दाता होता है। उसमें जो आगे की मूषा होती है, उस गृह का नाम प्रचण्ड होता है। उससे प्रताप व कीर्ति बढ़ती है।

श्रीजयं श्रीप्रदं चैव प्रोक्तं दक्षिणमूषिकम्।
धनावहं च धनदं पूर्वदक्षिणमूषिकम्॥ 2॥

जिस भवन के दक्षिण में मूषा हो, उसे श्रीजय और श्रीपद नाम वाला गृह कहा जाता है। जिस भवन के पूर्व और दक्षिण में मूषा होती है, उसे धनावह और धनद नामक गृह कहा जाता है।

कलिप्रियं मायासद्म मूषां पश्चिमतो वहत्।
श्रेयस्करं महाकान्तं पूर्वापरमुखं वहत्॥ 3॥

जिस भवन के पश्चिम में मूषा वहन हो तो उसे कलिप्रिय और मायासद्म नाम से जाना जाता है। जिसमें पूर्व व पश्चिम में वहन हो तो उसे श्रेयस्कर और महाकान्त नाम से जाने।

---

1. इस सूत्र में पुनः कालदण्डादि त्रिशाल गृहों के लक्षण क्रम के साथ फलों पर विचार है किन्तु इसमें गत सूत्र से वैपरीत्य भी लक्षित है।

मनोहरं मनस्तुष्टिं दक्षिणापरमूषिकम्।
लक्ष्मीप्रियं **नामगुणं मूषा यत्रोत्तरां विना ॥ 4 ॥**

जिस भवन के दक्षिण और उत्तर में मूषा हो उसे मनोहर और मन:तुष्टि नाम से जानना चाहिए। जिस भवन में उत्तर दिशा में मूषा नहीं होती, उसे लक्ष्मीप्रिय और नामगुण से जाना जाता है।

विमुखं चोत्तरामूषं कलिसन्तापकारकम्।
क्रोधनाख्यं **सदाक्रूरं** तत्पूर्वोत्तरमूषकम् ॥ 5 ॥

यदि भवन के उत्तर में मूषा होती है, उसे विमुख नाम से जाना जाता है और वह कलह तथा सन्तापकारक होता है। जिसमें पूर्व व उत्तर में मूषा होती है, उसे क्रोधन नाम से सदा ही क्रूर के रूप में जाना जाता है।

स्वामित्वदं स्वामिभक्तं दक्षिणोत्तरमूषिकम्।
धनेश्वरं धनप्रियं त्रिमूषं पश्चिमां विना ॥ 6 ॥

जिस भवन के दक्षिण और उत्तर में मूषा होती है, उसे स्वामित्त्वद व स्वामिभक्त के रूप में जाना जाता है। जिसमें तीनों ओर मूषा हो और पश्चिम दिशा में मूषा न हो, उसे धनेश्वर और धनप्रिय नाम से जानते हैं।

कालं चापि विना याम्यां कालानलसमप्रभम्।
विकरालं **महाघोरं मूषा यत्र** चतुर्दिशम् ॥ 7 ॥

जिस भवन के दक्षिण दिशा में मूषा नहीं होती उसे काल नामक भवन कहते हैं। यह बड़ा कष्टदायक, काल की अग्नि या कालानल रूप होता है। जिस भवन के चारों ही ओर मूषा होती है वह विकराल नाम का भवन भी महाघोर सङ्कट का कारक होता है।

सर्वलाभं जनप्रियं प्रतिमूषाश्चतुर्दिशम्।
भोगदं सिद्धिकामं **च सदृशं च** षड्दारुकम् ॥ 8 ॥

इसी प्रकार जिस भवन में चारों दिशाओं में प्रतिमूषा हो उसे सर्वलाभ और जनप्रिय नाम का कहते हैं। यह षड्दारुक निर्मिति की भाँति ही भोग और सिद्धियों यानी कामनाओं को देने वाला कहा गया है।

अन्यदप्याह —

स्वामिपुष्टिकृत् **सुनाभं शुभं च** शुभदायकम्।
शान्तं शान्तिप्रदं **नित्यं जयन्तं** जयकारकम् ॥ 9 ॥

सुनाभ नामक भवन स्वामी को पुष्टिदायक होता है और शुभ नामक भवन स्वामी का शुभ करने वाला होता है। शान्त नामक भवन स्वामी को शान्ति देने वाला और जयन्त नामक भवन जय कराने वाला होता है।

विभद्रं विहृतिं लोके कुबेरं पुरु तुष्टिदम्।
धनधान्यप्रदं यक्षं पक्षाख्यं प्रतिपक्षकृत्॥ 10॥

विभद्र नामक भवन लोक में विहार कराता है। कुबेर नामक भवन पुर को तुष्टिप्रद होता है। यक्ष नामक भवन धन-धान्य देने वाला होता है और पक्ष नामक भवन प्रतिपक्ष को लाभदायक होता है।

क्रूरं घोरं विवक्त्रं स्यात् कलहं कलिकारकम्।
सौम्यकं च शुभं शान्तं सुवक्त्रं च जनप्रियम्॥ 11॥

विवक्त्र गृह क्रूर, घोर कष्टप्रद होता है और कलिकारक कलह का कारक होता है। सौम्यक भवन शुभ, शान्त और सुवक्त्र नामक भवन जनप्रिय होते हैं।

क्षयं क्षयावहं वेश्म कालाख्यं कालसम्भवम्।
विपुलं राजसन्मानं प्रतापं राज्यवर्द्धनम्॥ 12॥

क्षय नामक भवन क्षयकारक होता है और काल नामक भवन काल का कारक होता है। विपुल भवन राज्य से सम्मान दिलाता है जबकि प्रताप नामक भवन राज्यवर्द्धक होता है।

प्रोक्ता हिताय लोकानां मूषाभेदास्तु पूर्वतः।
कालदण्डाद्यष्टादश$_{18}$ मूषावहननामकाः॥ 13॥

उक्त सभी पूर्व दिशा में मूषा युक्त भवनों को लोक के हितार्थ कालदण्डादि अठारह मूषा वहन नाम के साथ कहा गया है।

अन्यदप्याह —

जयन्तं जयदं प्राहुर्भासुरं पुष्टिदायकम्।
भीमविक्रमदं भीमं श्रीजयं जयकारकम्॥ 14॥

जयन्त्यादि भवनों में जयन्त जय दिलाने वाला गृह कहा है जबकि भासुर पुष्टिदायक, भीम नामक गृह बृहत्विक्रम प्रदायक है और श्रीजय नामक भवन जयकारक कहा गया है।

अतिशस्तं सुविश्वासं शस्तं शान्तिप्रदायकम्।
शाश्वतं च चिरायुष्यं सारं राजसन्मानदम्॥ 15॥

सुविश्वास अति प्रशस्त है और शस्त शान्ति प्रदायक है। शाश्वत संज्ञक भवन चिरायु करने वाला और सार संज्ञक भवन राज्य, से सम्मान दिलाता है।

दुर्दयं च दयाहीनं क्रोधनं क्रोधकारकम्।
सौख्यं सौख्यप्रदं नित्यं पुष्टं पुष्टिप्रदायकम्॥ 16॥

इसी प्रकार दुर्दय नामक गृह दयाहीन होता है। क्रोधन संज्ञक भवन क्रोध-कोप देता है। सौख्य भवन सुखप्रदायक और पुष्ट भवन पुष्टि प्रदान करने वाला होता है।

भयं भयावहं घोरमीश्वरं श्रीकरं भवेत्।
आनन्दमानन्दकरं पाशुपत्यं च सौख्यदम्॥ 17॥

भय नामक भवन भयावह होता है, ईश्वर भवन श्री, सौभाग्यकारक होता है। आनन्द नामक भवन आनन्ददायक और पाशुपत संज्ञक भवन सुखदाता होता है।

उत्तुङ्गमुन्नतिकरं जयन्ताद्यास्तु भेदतः।
मूषास्तु पूर्वत उक्ताः कालदण्डादिके यथा॥ 18॥

इसी प्रकार उत्तुङ्ग या उत्तम नामक भवन उन्नति देता है। इस प्रकार ये जयन्तादि भेद से पूर्व दिशा की मूषा वाले भवनों के बारे में भी वैसे ही कहा गया, जैसे कि पूर्व में कालदण्डादि भवनों के विषय में कहा गया था।

अन्यदप्याह —

रिपुमर्दनं रिप्वन्तं सुनेत्रं सर्वनन्दकम्।
बलं बलप्रदं नित्यमतिबलं च महाबल्॥ 19॥

रिपुमर्दन नामक भवन शत्रुओं का अन्त करता है। सुनेत्र नामक भवन सभी को आनन्द देता है। बल नामक भवन बल-शौर्य प्रदायक और अतिबल नामक भवन नित्य ही महान् बल को देने वाला होता है।

अशुभं शुभहीनाङ्गं शिवं शान्तिप्रदायकम्।
यशोबलं सर्वलाभं विशालं विदितं गृहम्॥ 20॥

अशुभ संज्ञक भवन शुभ से हीन, शिव भवन शान्ति प्रदायक, लाभ नामक गृह यशोबल व सर्वलाभ और विशाल नामक भवन भी ऐसा ही विदित है।

क्रूरं क्रूरजनावासं श्रियं च विपुलां श्रियम्।
प्रभु प्रभुसमुत्साहं कालनेत्रं तु विद्रुतम्॥ 21॥

क्रूर नामक भवन जनावास की दृष्टि से क्रूर होता है जबकि श्रिय नामक गृह विपुल सम्पदा प्रदायक है। प्रभु संज्ञक गृह स्वामी के समान ही उत्साह देता है। काल व नेत्र भवन विद्रुत होते हैं।

विद्विनेत्रं श्रीविहीनं लक्ष्मीधरं **तु श्रीकरम्।**

श्रियः पति पतिमानं जयकृच्च महाजयम्॥ **22**॥

विनेत्र भवन श्रीविहीन होता है जबकि लक्ष्मीधर नामक गृह श्रीकारक होता है। श्रीपति संज्ञक भवन गृहपति का मान रखने वाला और जयकृत नामक भवन महान् जय दिलाता है।

जयाख्यं च सदा तुष्टिमष्टादश[18] प्रकीर्तिताः।

कालदण्डादिवच्चैषां **मूषाभेदा** यथाक्रमम्॥ **23**॥

इसी प्रकार जय नाम वाला भवन सदा ही सन्तुष्टि देता है। इस प्रकार ये अठारहों गृह कालदण्डादि भवनों के समान मूषा भेद या जालिकाओं के दिशावार भेद से युक्त यथाक्रम कहे गए हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां त्रिशालगृहलक्षणक्रमाधिकारो नाम सप्तनवतितमं सूत्रम्॥ 97॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में त्रिशाल गृह लक्षण क्रमाधिकार नामक सत्तानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 97॥

चतुःशालगृहलक्षणं नामाष्टनवतितमं सूत्रम्॥ 98॥

अधुना चतुश्शालविधानं। विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चतुःशालं गृहोत्तमम्।

प्रस्तारनिर्णयं वत्स कथयामि समासतः॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं चतुःशाल नामक उत्तम भवनों के बारे में कहता हूँ। हे वत्स! उन भवनों के प्रस्तार निर्णय को भी संक्षेप से कहूँगा।

अष्टमूषायते छन्दे त्रिपुटेः स्यात्तु छन्दकम्।

द्वे द्वे मूषे प्रतिदिशं मूषाणां स्यादयं क्रमः॥ 2॥

उन भवनों का छन्द, रचना, बनावट, आठ मूषा या जालियों वाला छन्द और वह भी त्रिपुटीयुक्त अर्थात् तीन-तीन प्रकार का होता है। इन चतुःशाल भवनों में मूषाओं का क्रम दो-दो मूषा प्रत्येक दिशा, इसके अनुसार कल्पित किया जाता है।

स्वस्थानसंस्थिता स्थानं द्विगुणं चोत्तरोत्तरम्।

एषा युक्तिर्विधातव्या प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्॥ 3॥

अपने स्थान पर बना हुआ स्थान ही आगे से आगे दुगुना होता जाता है। यह युक्ति पूर्व दिशा से प्रदक्षिणतः करनी होती है।

मध्यकोष्ठकेषु रूपं[1] चन्द्रध्वजसञ्ज्ञान्तरे।
चन्द्रायुक्तमयोगे तु विधातव्याः प्रदक्षिणैः॥ 4॥

मध्य कोष्ठक में जो रूप बनते हैं, उन्हें चन्द्रध्वज संज्ञक कहा जाता है। इसको चन्द्र के साथ ही प्रदक्षिणा क्रम में इन्हें बनाना चाहिए।

अथैक$_1$ द्वि$_2$ चतुर$_4$ ष्ट$_8$ द्विरष्ट$_{16}$ द्वात्रिंशस्तथा$_{32}$।
चतुःषष्टिः$_{64}$ शतमष्टाविंशत्युत्तरमेव$_{128}$ च॥ 5॥

इस क्रम में 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, 128 इस प्रकार क्रमशः एक से 128 तक निर्मितियाँ होंगी।

द्वे द्वे मूषे प्रतिदिशं विधेये सुप्रदक्षिणम्।
कथयामि समासेन षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$॥ 6॥

इनके प्रदक्षिण क्रम में दो-दो मूषा या जालियाँ प्रत्येक दिशा में विधेय बताई गई हैं जिनके मैं संक्षेप में 256 रूपों को कहता हूँ।

अथ चतुःषष्टिगृहाः —

सुनाभं च विना मूषामादिमूषं च पूर्वकम्।
द्वितीयात्वीश्वरे चाऽऽद्या द्वितीये य श्रियोद्भवे॥ 7॥

अब विविध मूषाओं से युक्त भवनों के क्रमानुसार नाम और गुणों को कहा जा रहा है— मूषा रहित भवन को सुनाभ नाम से जानते हैं और पहली मूषा युक्त भवन को पूर्ण नाम से कहा गया है। दूसरी मूषा युक्त भवन को ईश्वर और पहली व दूसरी मूषा युक्त भवन को श्रियोद्भव नाम से कहा गया है।

याम्ये दक्षिणमूषे च धान्ये आद्यातृतीयके।
द्वितृतीये मूषिके च गृहसौख्यं च नामतः॥ 8॥

दक्षिण दिशा में मूषा वाले भवन को याम्य और पहली व तीसरी मूषा साथ में हो तो ऐसे भवन को धान्य तथा दूसरी व तीसरी मूषा वाले भवन को गृहसौख्य नाम से जाना जाता है।

---

1. 'चन्द्रध्वजसङ्ख्यान्तरे ?' इति प्रकाशित पाठः।
राजवल्लभ. में आया है कि नौ त्रिशाल गृहों को चतुश्शाल कर उनके मुख के आगे दो लघु, दायें एक लघु बनाने पर वह गृह चन्द्र कहलाता है। इन चतुश्शाल गृहों में सदैव पट्दारु होते हैं। इसी तरह इन नौ गृहों में जो अन्तिम कामद गृह होता है, उसमें दो षट्दारु होते हैं, शेष आठ गृहों में एक-एक पट्दारु होता है—भवननवकमुक्तं तच्चतुःशालमध्यात्रयनलघुमुखं स्यादक्षिणैकेन चन्द्रम्। भवति सदनमध्ये सर्वतो दारुषट्कं द्वितयमपि च तेषामन्तिमं युग्मयुक्तम्॥ (राजवल्लभ. 7, 27)

मूषा आद्याद्वितृतीयाः **श्रियः कान्ते** चतुर्थकम्।
आद्यातुर्ये महाकान्ते **द्वितुर्ये** स्वामिवत्सले॥ 9॥

आद्य, दूसरी व तीसरी मूषा युक्त भवन का नाम श्रिय है और चौथी मूषा वाला भवन कान्त कहलाता है। पहली और चौथी मूषा युक्त भवन को महाकान्त व दूसरी व चौथी मूषा युक्त भवन को स्वामीवत्सल कहते हैं।

भोगदे आद्यादितुर्यास्त्रिचतुर्थ्यौ **च शाश्वते।**
क्षेमे आद्यात्रिचतुर्थ्यो द्वित्रित्तुर्याश्च **संवरे**॥ 10॥

पहली, दूसरी और चतुर्थ मूषा युक्त भवन को भोगद तथा तीसरी व चौथी मूषा युक्त भवन को शाश्वत कहते हैं। पहली, तीसरी व चतुर्थ मूषा युक्त भवन को क्षेम एवं दूसरी, तीसरी व चतुर्थ मूषा युक्त भवन को संवर कहा जाता है।

रम्ये आद्याद्वित्रितुर्याः **पञ्चमी स्यात्तु वारुणे।**
पञ्चम्याद्ये **च पूर्णाक्षे** द्विपञ्चम्यौ **च सम्भवे**॥ 11॥

पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी मूषा युक्त भवन को रम्य और इसमें पाँचवीं मूषा युक्त भवन को वारुण तथा पाँचवीं व पहली मूषा युक्त भवन को पूर्णाक्ष तथा दूसरी व पाँचवीं मूषा वाले भवन को सम्भव नाम दिया गया है।

मोघे आद्याद्विपञ्चम्ये **महामोघे** त्रिपञ्चम्यौ।
शते आद्यात्रिपञ्चम्यो द्वित्रिपञ्चम्यो **भोग्यदे**॥ 12॥

पहली, दूसरी व पाँचवीं मूषा युक्त भवन को मोघ तथा तीसरी और पाँचवीं मूषा से युक्त भवन को महामोघ कहा जाता है। पहली, तीसरी व पाँचवीं मूषा युक्त भवन को शत तथा दूसरी, तीसरी व पाँचवीं मूषा युक्त भवन को भोग्यद नाम से जाना जाता है।

राज्याद्याद्वित्रिपञ्चम्यो **भावुके** पञ्चतुर्यके।
नेत्रे चाद्यापञ्चतुर्य्या **नन्दे** पञ्चद्वितुर्यकाः॥ 13॥

इसी प्रकार पहली, दूसरी, तीसरी और पाँचवीं मूषा युक्त भवन को राज्या एवं पाँचवीं और चौथी मूषा युक्त भवन को भावुक नाम का कहते हैं। पहली, पाँचवीं और चौथी मूषा युक्त भवन को नेत्र तथा पाँचवीं, दूसरी और चौथी मूषा युक्त भवन को नन्द नाम दिया गया है।

द्वित्रितुर्याद्याश्च **राज्ये ईशे** पञ्चत्रितुर्यकाः।
नाभ्ये द्व्याद्ये पञ्चतुर्य्ये **भवे** पञ्चद्वित्रितुर्याः॥ 14॥

दूसरी, तीसरी, चौथी व पहली मूषा युक्त भवन को राज्य तथा पाँचवीं, तीसरी

व चौथी मूषा युक्त भवन को ईश कहा है। दूसरी, पहली, पाँचवीं और चौथी मूषा युक्त भवन को नाभि एवं पाँचवीं, दूसरी, तीसरी व चौथी मूषा युक्त भवन को भव नाम से जाना जाता है।

आद्यद्वित्रिचतुःपञ्चमूषाणां वहनेषु च।
सालङ्कारमिदं प्रोक्तं गृहं तत्पूजितं श्रिया॥ 15॥

पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी व पाँचवीं मूषाओं के वहन से युक्त भवनों को सालङ्कार नामक गृह कहा जाता है जिनकी पूजा करने से श्रिया या कल्याण होता है।

षष्ठी च षष्ठके ? नाम आद्या षष्ठ्यौ महोद्भवे।
मूषे द्वितीयाषष्ठ्यौ च महाभूते च नामतः॥ 16॥

छठी मूषा युक्त भवन का नाम षष्ठक (?) है। पहली और छठी मूषा युक्त भवन को महोद्भव और दूसरी व छठी मूषा युक्त भवन को महाभूत नाम से जानते हैं।

आद्याद्वितीयाष्ठ्यश्च श्रियि वै सर्वकामदाः।
मूषे तृतीयाषष्ठ्यौ च क्रूरे क्रूरफलोदये॥ 17॥

पहली, दूसरी और छठी मूषा से श्रियि सर्वकामना पूर्ति करने वाला भवन बनता है जबकि तीसरी व छठी मूषा युक्त भवन क्रूर नामक होता जिसका फल भी क्रूर ही होता है।

आद्यात्रिषष्ठ्यः शुभदे द्वित्रिषष्ठ्यश्च कामदे।
सौख्ये आद्याद्वित्रिषष्ठ्यस्तुर्याषष्ठ्यौ करालके॥ 18॥

पहली, तीसरी और छठी मूषा युक्त शुभद और दूसरी, तीसरी व छठी मूषा युक्त भवन को कामद कहते हैं। पहली, दूसरी, तीसरी, छठी मूषा युक्त भवन को सौख्य तथा चौथी व छठी मूषा युक्त भवन को करालक कहा जाता है।

धान्ये आद्याचतुःषष्ठ्यो द्विचतुःषष्ठ्य उत्तमे।
प्रिये द्व्याद्याचतुःषष्ठ्यः क्रोधे तुर्यात्रिषष्ठिकाः॥ 19॥

पहली, चौथी व छठी मूषा वाले भवन को धान्य और दूसरी, चौथी व छठी मूषा वाले भवन को उत्तम नाम से कहा गया है। पहली, दूसरी, चौथी और छठी मूषा युक्त भवन को प्रिय तथा तीसरी, चौथी और छठी मूषा युक्त भवन क्रोध कहलाता है।

आद्यायुक्ताश्च ताः शान्ते मेघे षड्द्वित्रितुर्यकाः।
आद्यायुक्ताः श्रियि च ताः प्रिये षष्ठी च पञ्चमी॥ 20॥

यहाँ पहली मूषा युक्त भवन को शान्त तथा छठी के साथ दूसरी, तीसरी व चौथी मूषा हो तो उस भवन को मेघ कहा जाता है और पहली मूषा युक्त भवन को श्रियि एवं छठी व पाँचवीं मूषा युक्त भवन को प्रिय कहते हैं।

आद्यायुक्ते च ते साम्ये सौम्ये पञ्चद्विषष्ठिकाः।
आद्यायुक्ताः समाख्ये ताः अर्थे पञ्चत्रिषष्ठिकाः॥ 21॥

इसमें पहली मूषा युक्त साम्य नामक भवन तथा पाँचवीं, दूसरी और छठी मूषा युक्त भवन का नाम सौम्य है तथा इसमें भी पहली मूषा युक्त हो तो सम तथा पाँचवीं, तीसरी व छठी युक्त हो तो उसका नाम अर्थ होगा।

आद्यायुक्ताः शोभने ताः द्वित्रिपञ्चषष्ठ्यो महे।
आत्महन्तुर्य्या[1]द्यायुक्ताश्चतुःपञ्चषष्ठ्योऽगाहे ?॥ 22॥

पहली मूषा युक्त गृह शोभन, उससे दूसरी, तीसरी, पाँचवीं व छठी मूषा युक्त हो तो मह भवन होगा। पहली मूषा युक्त व चौथी मूषा युक्त भवन को आत्महन्त तथा चौथी, पाँचवीं व छठी मूषा युक्त भवन को अगाह (?) कहा जाता है।

आद्यायुक्ता मोक्षदे द्विचतुःपञ्चषष्ठ्यः सत्ये।
आद्यायुक्ता उत्तमे त्रिचतुःपञ्चषष्ठ्योऽयने॥ 23॥

उसमें पहली मूषा युक्त भवन मोक्षद और दूसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी मूषा युक्त भवन को सत्य तथा इसमें पहली मूषा युक्त हो तो उत्तम भवन एवं तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी मूषा युक्त भवन को अयन कहा जाएगा।

आद्यायुक्तास्तुङ्गे समे अनाद्याः सद्वितीयकाः।
आद्ययुक्ता महदाख्ये चतुःषष्टिर्गृहा$_{64}$ मताः॥ 24॥

इति चतुषष्टिगृहाः।

यहाँ पहली मूषा युक्त तुङ्ग तथा बिना प्रथम व दूसरी मूषा युक्त को सम एवं पहली मूषा युक्त हो तो महद भवन होगा। इस प्रकार चौंसठ गृह हुए।

षण्णवतिगृहाः —

सप्तमी चैव स्वामित्वे सप्तम्याद्ये महाद्भुते।
द्विसप्तम्यावद्भुते च त्रिसप्तम्यौ सुसम्भवे॥ 25॥

(इस क्रम में अब छियानवें गृहों के विषय में कहा जा रहा है) सातवीं मूषा युक्त भवन का नाम स्वामित्व और सातवीं के साथ पहली मूषा हो तो उसका नाम

1. 'आत्महन्तर्य्या' इति प्रकाशित पाठः।

महाद्भुत होगा और यदि दूसरी और सातवीं मूषा हो तो अद्भुत तथा तीसरी व सातवीं मूषा युक्त हो तो उस भवन को सुसम्भव कहा जाता है।

आद्यायुक्ताः **सम्भवे** द्वित्रिसप्तम्यस्तु **कामिके**।
आद्यायुक्तास्तु कामाख्ये **विध्वङ्से** सप्ततुर्यके ॥ 26 ॥

पहली मूषा के साथ सम्भव और दूसरी, तीसरी व सातवीं के साथ हो तो कामिक तथा पहली के साथ युक्त हो तो कामाख्य तथा चौथी व सातवीं मूषा युक्त हो तो उसका नाम विध्वंस होता है।

आद्यायुक्ता **ललिते** द्विसप्ततुर्याश्च **तिलके**।
सौभाग्ये साद्या दुर्भाग्ये त्रितुर्ये सप्तमी तथा ॥ 27 ॥

इसमें पहली मूषा युक्त ललित, दूसरी, सातवीं व चौथी मूषा युक्त होने पर तिलक और पहली मूषा युक्त हो तो सौभाग्य तथा उसमें चौथी, तीसरी व सातवीं मूषा का न्यास हो तो दुर्भाग्य संज्ञक भवन होगा।

साद्याः कान्तारके **कान्ते** द्वित्रिसप्ततुरीयकाः।
आद्यायुक्ताः **श्रिये पञ्चसप्तम्यौ रौरवे तथा** ॥ 28 ॥

पहली मूषा युक्त कान्तारक, दूसरी, तीसरी, सातवीं और चौथी मूषा युक्त होने पर कान्त तथा पहली मूषा युक्त श्रिय और पाँचवीं, सातवीं मूषा युक्त हो तो रौरव नाम होगा।

साद्या ऋद्धौ च द्विपञ्चसप्तम्यश्चैव **कामिके**।
साद्या महाकामेऽ**कामे** त्रिपञ्चम्यौ **च सप्तमी** ॥ 29 ॥

पहली मूषा सहित ऋद्धि को दूसरी, पाँचवीं और सातवीं मूषा युक्त होने पर कामिक तथा पहली मूषा युक्त महाकाम को तीसरी, पाँचवीं और सातवीं मूषा युक्त होने पर अकाम कहा जाता है।

साद्याः कान्तारके द्वित्रिपञ्चम्यः **सप्तमी शिवे**।
आद्यायुक्ताः **सर्वलाभे** सप्तपञ्चतुर्य्याः **शुभे** ॥ 30 ॥

इसी प्रकार पहली मूषा युक्त कान्तार को दूसरी, तीसरी, पाँचवीं और सातवीं मूषा युक्त होने पर शिव और पहली मूषा युक्त सर्वलाभ को सातवीं, पाँचवीं और चौथी मूषा युक्त होने पर शुभ कहते हैं।

साद्याः सिद्धार्थे द्विसप्तपञ्चतुर्यास्तुपूर्वके।
साद्या महापूर्व ईशे सप्तपञ्चत्रितुर्यकाः ॥ 31 ॥

पहली मूषा युक्त सिद्धार्थ को दूसरी, सातवीं, पाचवीं और चौथी मूषा युक्त होने

पर पूर्वक और पहली मूषा युक्त महापूर्व को सातवीं, पाँचवीं, तीसरी और चौथी मूषा युक्त होने पर ईश कहा जाता है।

साद्यास्तेजः सुतेजो द्वित्रिपञ्चसप्ततुर्यका:।

आद्यायुक्ता महातेजो गृहाः षण्णवतिर्मता:$_{96}$ **॥ 32 ॥**

इति षण्णवतिगृहाः।

इसी तरह पहली मूषा युक्त तेज को दूसरी, तीसरी, पाँचवीं, चौथी और सातवीं मूषा युक्त होने पर सुतेज नाम और पहली मूषा से महातेज को मिलाकर इन सब गृहों की संख्या छियानवें होती है।

अष्टाविंशत्युत्तरशतं गृहाणि —

घोरे च षष्ठीसप्तम्यौ स्वैरे आद्यायुते तथा।

पौरे द्विषष्ठीसप्तम्यः सौरे आद्यायुता मताः ॥ 33 ॥

(इस क्रम में अब एक सौ अट्ठाईस गृहों के विषय में कहा जा रहा है) छठी और सातवीं मूषा के साथ घोर भवन तथा पहली मूषा के साथ होने पर स्वैर नामक और दूसरी, छठी और सप्तमी मूषा युक्त हो तो तो पौर तथा यह पहली मूषा के साथ होने पर सौर कहलाता है।

रौद्रे त्रिषष्ठीसप्तम्यः साद्याः सारद्यके तथा।

शङ्खे द्वित्रिसप्तषष्ठ्यो महाशङ्खे तु सादिकाः ॥ 34 ॥

तीसरी, छठी और सातवीं मूषा के साथ रौद्र भवन और पहली मूषा के साथ हो तो सारद्यक भवन तथा दूसरी, तीसरी, सातवीं और छठी मूषा युक्त हो तो शङ्ख और पहली मूषा युक्त भवन को महाशङ्ख नाम से कहा गया है।

षट्सप्ततुर्याश्च परे साद्यास्ताः सुपरे मताः।

पक्षे द्विषट्सप्ततुर्या आद्यायुक्ताः सुपक्षके ॥ 35 ॥

छठी, सातवीं और चौथी मूषा युक्त हो तो पर कहते हैं और पहली मूषा युक्त हो तो सुपर नाम होगा जबकि दूसरी, छठी, सातवीं और चौथी को पक्ष नामक तथा पहली युक्त हो तो सुपक्ष नामक से जाना जाता है।

शान्ते त्रिषट्सप्ततुर्याः सान्ते आद्यायुतास्तथा।

द्वित्रितुर्याः सप्तषष्ठ्यावन्ते साद्यास्तु शान्तिके ॥ 36 ॥

इसी प्रकार तीसरी, छठी, सातवीं और चौथी मूषा युक्त होने पर शान्त नामक और पहली मूषा से युक्त होने पर सान्त एवं दूसरी, तीसरी, चौथी, सातवीं और छठी मूषा युक्त होने पर आवन्त तथा पहली मूषा युक्त होने पर शान्ति नाम से कहा गया है।

त्रिषष्ठयौ पञ्चसप्तम्यौ प्रिये साद्यास्तु सुप्रिये।
द्विपञ्चषट्सप्ततुर्याः सौम्ये भौक्ते च सादिकाः॥ 37॥

तीसरी, छठी, सातवीं और पाँचवीं मूषा युक्त भवन को प्रिय और पहली मूषा सहित होने पर सुप्रिय तथा दूसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं और चौथी मूषा युक्त होने पर सौम्य तथा यहाँ पहली मूषा युक्त हो तो भोक्त नामक भवन होगा।

पञ्चमी सप्तमी षष्ठी पुण्ये साद्याः सुपुण्यके।
द्वित्रिपञ्चसप्तषष्ठ्यः पुरे साद्याः सुपूर्वके॥ 38॥

पाँचवीं, छठी और सातवीं मूषा युक्त हो तो पुण्य तथा पहली मूषा से युक्त होने पर सुपुण्य नाम होगा। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, पाँचवीं, सातवीं और छठी मूषा युक्त होने पर पुर तथा यहाँ पहली मूषा समन्वित हो तो सुपूर्वक गृह कहा जाता है।

चतुःपञ्चषट्सप्तम्य इन्द्रे साद्यास्तथा शुभे ?।
पञ्चषड्द्वित्रिसप्तम्यः कङ्के काङ्के च सादिकाः॥ 39॥

इस कोटि में चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं मूषा युक्त भवन को इन्द्र तथा पहली मूषा युक्त होने पर शुभ और पाँचवीं, छठी, दूसरी व तीसरी व सातवीं मूषा युक्त होने पर कङ्क तथा वह निर्माण भी पहली मूषा सहित हो तो काङ्क नाम से जाना जाता है।

त्रिपञ्चषट्सप्ततुर्याश्चिह्ने साद्यास्तु शुभ्रके।
त्यक्ताद्या चाष्टमी साक्ष्ये सन्मुखे सादिकाऽष्टमी॥ 40॥

इसी क्रम में तीसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं व चौथी मूषा से समन्वित भवन चिह्न कहा जाता है जबकि यह पहली मूषा से युक्त होने पर शुभ्र नाम से जाना जाएगा। पहली छोड़कर आठवीं मूषा से युक्त होने पर यह साक्ष्य नाम से जाना जाता है और पहली मूषा के साथ आठवीं मूषा समन्वित हो तो उसकी संज्ञा सम्मुख होगी।

सप्तमूषावहनाय सम्मुखाख्यं गृहं शुभम्।
अष्टम्यादौ ततश्चाद्याऽष्टमीत्थं क्रमतोऽष्टमी॥ 41॥

इसी प्रकार सात मूषाओं से वहनाय होने पर भवन की संख्या सम्मुखा होगी जो कि शुभ गृह होगा। आठवीं से आरम्भ करके बाद में पहली मूषा अष्टमी तक क्रम से रखते हुए भवन बनाएँ।

पुनस्तेन क्रमेणैवाऽष्टाविंशत्युत्तरं शतम्।
यथानाम गुणाश्चैते शुभा वा अशुभा अपि॥ 42॥

इसके उपरान्त उन्हें क्रमवार एक सौ अट्ठाईस बनाएँ जिनके यथा नाम तथा गुण अर्थात् नामानुसार उनकी शुभाशुभता को जानना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
चतुःशालगृहलक्षणाधिकारो नामाष्टनवतितमं सूत्रम् ॥ 98 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में चतुःशाल गृह लक्षण अधिकार नामक अट्ठानुवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 98 ॥

गृहसंयोजननिर्णयो नाम नवनवतितमं सूत्रम् ॥ 99 ॥

अधुना पञ्चशालगृहसंयोजननिर्णयः। विश्वकर्मोवाच —

कथये गृहसंयोगाश्चतुःशालात्परे क्रमात्।
एकशालं चतुःशाले संयुक्तं पञ्चशालकम् ॥ 1 ॥

(इस सूत्र में गृहों के संयोजन की विधि का वर्णन किया जा रहा है। पूर्वोक्त एक से चतुश्शालाओं के संयोजन के उपरान्त पाँच से लेकर दस शालाओं के संयोजन तक की विधि यहाँ कही गई है) विश्वकर्मा ने कहा कि चतुःशाल गृहों के आगे के गृह संयोगों को क्रम से कहता हूँ। जब एकशाल गृह को चतुःशाल गृह के साथ योजित किया जाता है तो निर्मितेय शाला पञ्चशाला होगी (अर्थात् 1 + 4 = 5)।

युक्तं द्विशालं त्रिशाले पञ्चशालं तदिष्यते।
द्विशालद्विकयुक्तैकशालं स्यात्पञ्चशालकम् ॥ 2 ॥

यदि द्विशाल गृह के साथ त्रिशाल गृह को संयोजित किया जाए तो भी पञ्चशाल गृह बनता है (अर्थात् 2 + 3 = 5) और ऐसे ही दो द्विशालगृहों के साथ एकशाल गृह संयोजित हो तो भी पञ्चशाला गृह होगा (अर्थात् 2 + 2 + 1 = 5)।

एकशालद्वये युक्तं त्रिशालं पञ्चशालकम्।
पञ्चकं चैकशालानामन्यत्तत्पञ्चशालकम् ॥ 3 ॥

इति पञ्चशालं गृहम्।

यदि एकशाल गृह के साथ एकशाल गृह और लेकर उनके साथ त्रिशाल गृह मिलाएँ तो अन्य पञ्चशाल गृह होगा (अर्थात् 1 + 1 + 3 = 5) तथा पाँच एकशालाओं का संयोजन हो तो भी पञ्चशाल गृह होता है (अर्थात् 1 + 1 + 1 +1 +1 = 5)। इस प्रकार पाँच प्रकार से पञ्चशाल गृहों का निर्माण होता है।[1]

---

1. वास्तुमण्डनम् में छह प्रकार से संयोजन की विधि आई है। सूत्रधार मण्डन ने कहा है कि पञ्चशाला का विन्यास एक, द्वि, त्रि व चतुश्शाल के संयोजनपूर्वक छह प्रकार से हो सकता है। यह क्रमशः चतुश्शाल

अथ षट्शालगृहसंयोजननिर्णय: —

एकशालं द्विशालं च षट्शालं स्यात्रिशालकै।
त्रिशालद्वयसंयोगात् षट्शालं चैव तद्भवेत्॥ 4॥

एकशाल गृह के साथ द्विशाल गृह लें और इसमें त्रिशाल गृह को योजित करें तो षट्शाल गृह होगा (अर्थात् 1 + 2 + 3 = 6)। इसी प्रकार दो त्रिशालाओं के संयोजन से भी षट्शाल गृह बनता है (अर्थात् 3 + 3 = 6)।

द्विशालत्रयसंयोगे षट्शालं तद् विधीयते।
द्विशालद्वितयं चैकशलयुग्मं षट्शालकम्॥ 5॥

तीन द्विशाल गृहों के संयोग से भी षट्शाल गृह बनता है (अर्थात् 2 + 2 + 2 = 6)। दो द्विशाल गृह और दो एकशाल गृहों को मिलाकर भी षट्शाल गृह होता है (अर्थात् 2 + 2 + 1 + 1 = 6)।

एकशालानि चत्वारि द्विशाले च षड्भद्रकम्।
एकाशालत्रयं योज्यं त्रिशाले च षड्भद्रकम्॥ 6॥

चार एकशाल गृहों और एक द्विशाल गृह को मिलाकर षट्भद्रक या षट्शाल गृह बनता है (अर्थात् 1 + 1 + 1 + 1 + 2 = 6)। ऐसे ही तीन एक शाल गृहों के साथ त्रिशाल गृह मिलाने से षट्शाल गृह होता है (अर्थात् 1 + 1 + 1 + 3 = 6)।

दिशालयुक्चतु:शालं षड्भद्रं तद्भवेत्खलु।
चतु:शालं चैकशालद्वयं षड्भद्रकं स्मृतम्॥ 7॥

द्विशाल गृह के साथ चतु:शाल गृह मिलाने से भी षट्शाल गृह बनता है (अर्थात् 2 + 4 = 6) और एक चतु:शाल गृह के साथ दो एकशाल गृह मिलाने पर भी षट्शाल गृह निष्पन्न होता है (अर्थात् 4 + 1 + 1 = 6)।

योजयेदेकशालानि षट् षट्शालं तदुच्यते।
पञ्चशालं च षट्शालं कथितं त्वपराजित॥ 8॥

इति षट्शालम्।

और एकशाल को मिलाकर (4+1), त्रिशाल व द्विशाल को मिलाकर (3+2), त्रिशाल के साथ एक-एकशाला को मिलाकर (3+1+1), दो द्विशाल के साथ एकशाला को मिलाकर (2+2+1), तीन एकशालाओं के साथ द्विशाला (1+1+1+2)को मिलाकर तथा पाँच एकशालाओं को मिलाकर (1+1+1+1+1) होता है— पञ्चशालं भवेद्योगा चतु:शालैक शालयो॥ त्रिशालयुग्मशालाभ्यां द्वयेकशालात्रिशाल:। द्वि-द्विशालेकशालैन त्र्येकशाल द्विशालत:॥ (वास्तुमण्डनम् : सम्पादक - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, 2009 ई., 6, 29-30)

छह एकशाल गृहों को मिलाएँ तो भी षट्शाल गृह बनता है (अर्थात् 1 + 1 + 1 + 1 +1 +1 = 6)। इस प्रकार हे अपराजित! मैंने पञ्चशाल और षट्शाल गृहों के विषय में कहा है।[1]

अथ सप्तशालगृहसंयोजननिर्णय: —

त्रिशालद्वितयं कुर्यादेकशालं तथैव च।
सप्तशालं तु तज्ज्ञेयमधुना कथितं शुभम्॥ 9॥

अब मैं सप्तशाल शुभ गृहगृह के विषय में कहूँगा। दो त्रिशालों में एक एकशाला गृह मिलाने पर सप्तशाल गृह बनता है (अर्थात् 3 + 3 + 1 = 7 शाल गृह)।

द्विशालत्रितयं युक्तमेकं वै चैकशालकम्।
सप्तशालं सुसङ्ख्यातं वास्तुविद्भिरुदाहृतम्॥ 10॥
द्विशालद्वितयं योज्यं त्रिशालं सप्तभद्रकम्।
चतु:शाले त्रिशालं च तद्भवेत् सप्तभद्रकम्॥ 11॥

दो शाल गृहों को तीन बार करके उनमें एक एकशाल गृह को मिलाएँ तो भी सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 2+2+2+1= 7 शाल)। ऐसा वास्तुविदों ने कहा है। दो द्विशाल गृहों में एक त्रिशाल गृह मिलाएँ तो भी सप्तशाला गृह बनता है (यथा— 2 + 2 + 3 = 7 शालगृह) और चतुश्शाल गृह के साथ त्रिशाल गृह को मिलाएँ तो भी सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 4 + 3 = 7 शाल गृह)।

एकशालं द्विशालं चतु:शाले सप्तभद्रकम्।
त्रिशालद्वितयं चैकशालं तत्सप्तशालकम्॥ 12॥

एकशाल गृह और द्विशाल गृह के साथ चतुश्शाल गृह मिलाने से सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 1+2+4=7 शालगृह)। दो त्रिशाल गृहों के साथ एक एकशाल गृह मिलाने पर भी सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 3 + 3 + 1 = 7 शालगृह)।

चतु:शालं त्रिभिरेकशालैस्तत्सप्तशालकम्।
एकशालानि चत्वारि त्रिशाले सप्तभद्रकम्॥ 13॥
एकशालानि पञ्चैव द्विशालं सप्तभद्रकम्।

---

1. वास्तुमण्डनम् में छह प्रकार से संयोजन की विधि आई है— चतुश्शाल में एकशालादि के क्रम से नौ प्रकार से संयोजन कर षट्शालाओं (यथा- 1+1+1+1+1+1, 1+1+1+1+2, 1+1+2+2, 2+2+2, 3+2+1, 3+3, 4+1+1, 4+2 तथा 3+1+1+1) का विन्यास किया जा सकता है— योगात्यं चैक शालानां तत् षोढेवं पराण्यपि। नवधा रसशालानां सप्तशाले शिवोन्मिता॥ (पूर्वोक्त 6, 31)

सप्तैव चैकशालानि तद्भवेत् सप्तशालकम्॥ 14॥

इति सप्तशालम्।

इसी प्रकार चतुश्शाल गृह के साथ तीन एकशाल गृह मिलाने से भी सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 4 + 1 + 1 + 1 = 7 शाल गृह) और चार एकशालाओं के साथ एक त्रिशाल गृह मिलाने से भी सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 1 + 1 + 1 + 1 + 3 = 7 शाल गृह) और सातों एकशालाओं से भी सप्तशाल गृह बनता है (यथा— 1 + 1 + 1 + 1 + 1 + 1 + 1 = 7 शालगृह)।[1]

अथाष्टशालगृहसंयोजननिर्णयः —

द्विशालानि च चत्वारि तद्भवेदष्टशालकम्।
चतुःशालद्वयं योज्यमष्टशालं तदुच्यते॥ 15॥

चार द्विशालाओं को मिलाने से एक अष्टशाला बनती है। इसी तरह दो चतुश्शालाओं को मिलाने से भी अष्टशाला बनती है (यथा— 2 + 2 + 2 + 2 = 8 और 4 + 4 = 8 शालगृह)।

त्रिशालद्वितयं योज्यं द्विशालं चाष्टशालकम्।
त्रिशालं चैकशालं द्वे द्विशाले चाष्टशालकम्॥ 16॥

दो त्रिशालाओं को एक द्विशाला के साथ मिलाने से अष्टशाल गृह बनता है (यथा— 3 + 3 + 2 = 8 शाल गृह) और एक त्रिशाला, एक एकशाला और दो द्विशाला मिलाकर भी अष्टशाला बनती है (अर्थात् 3 + 1 + 2 + 2 = 8 शालगृह)।

एकशालद्वयं चैव चतुःशालं द्विशालकम्।
तदुक्तमष्टशालं वै वास्तुशास्त्रविशारदैः॥ 17॥

दो एकशाला गृह, एक चतुश्शालगृह और एक द्विशाला गृहों को मिलाने से भी वास्तुविद्या विशारदों के अनुसार अष्टशाल गृह बनता है (यथा— 1 + 1 + 4 + 2 = 8 शालगृह)।

त्रिशालं योजयेदेवमेकशालत्रयं तथा।
द्विशालेन तु संयुक्तं तद्भवेदष्टशालकम्॥ 18॥

एक त्रिशाल, तीन एक शाल और एक द्विशाल गृह को मिलाने पर भी अष्टशाल गृह बनता है (यथा— 3 + 1 + 1 + 1 + 2 = 8 शालगृह)।

---

1. वास्तुमण्डनम् में ग्यारह प्रकार से संयोजन की विधि आई है— यथा- 1+1+1+1+1+1+1, 2+1+1+1+1+1, 2+2+1+1+1, 2+2+2+1, 3+1+1+1+1, 3+2+1+1, 3+2+2, 3+3+1, 4+1+1+1, 4+2+1 तथा 4+3 के अनुसार सप्तशाला लिए संयोजन होता है। (पूर्वोक्त)

एकशालद्वयं योज्यं द्विशालत्रितयं तथा।
एवं संयोजितं यत्तु तद्भवेदष्टशालकम्॥ 19॥

इसी प्रकार दो एकशाला के साथ तीन द्विशाल मिलाने पर भी अष्टशाल गृह बनता है (यथा— 1 + 1 + 2 + 2 + 2 = 8 शालगृह)।

एकशालानि चत्वारि द्विशालद्वयमेव च।
एवमादिसंयोगे तु तद्भवेदष्टशालकम्॥ 20॥

इत्यष्टशालम्।

इसके अतिरिक्त चार एकशाल गृहों के साथ दो द्विशाल गृह मिलाने पर भी अष्टशाल गृह बनता है (यथा— 1 + 1 + 1 + 1 + 2 + 2 = 8 शालगृह)। इस तरह से आदि संयोग करते-करते सब अष्टशाला गृह बन जाते हैं।[1]

अथ नवशालगृहसंयोजननिर्णयः —

द्विशालं च त्रिशालं चतुःशालं नवशालकम्।
चतुःशालद्वयं चैकशालं तु नवशालकम्॥ 21॥

अब नवशालाओं के लिए कहा जा रहा है। द्विशाल गृह, त्रिशाल और चतुश्शाल गृहों को मिलाने से नवशाल गृह बनता है (यथा— 2 + 3 + 4 = 9 शालगृह)। दो चतुश्शाल गृहों के साथ एक एकशालगृह मिलाने पर भी नवशाल गृह बनता है (यथा— 4 + 4 + 1 = 9 शालगृह)।

त्रिशालत्रितयं योज्यं तद्भवेन्नवशालकम्।
एकशालं द्विशालं त्रिशालद्वयेऽङ्क९शालकम्॥ 22॥

तीन त्रिशालों को मिलाने से भी नवशाल गृह बनता है (यथा— 3 + 3 + 3 = 9 शालगृह)। एकशाल, द्विशाल और दो त्रिशालाओं को मिलाने से भी नवशाल गृह बन जाता है (यथा— 1 + 2 + 3 + 3 = 9 शालगृह)।

एकशालं द्विशालानां चतुष्कं नवशालकम्।
पञ्चैकशालानि चतुःशालं तु नवशालकम्॥ 23॥

इति नवशालम्।

एकशाल गृह के साथ चार द्विशाल गृह मिलाने से भी नवशाल गृह बनता है

---

1. वास्तुमण्डनम् में अष्टशाल के लिए संयोजन पन्द्रह प्रकार से बताया गया है। यथा— 1+1+1+1+1+1+1+1, 1+1+1+1+1+1+2, 1+1+1+1+2+2, 2+2+2+2, 3+1+1+1+1+1, 3+2+1+1+1, 3+2+2+1, 3+3+1+1, 3+3+2, 3+3+1, 4+1+1+1+1, 4+2+1+1, 4+2+2, 4+3+1 तथा 4+4 हो सकता है। (पूर्वोक्त)

(यथा— 1 + 2 + 2 + 2 + 2 = 9 शालगृह)। एक पञ्चशाल गृह के साथ एक चतुश्शाल को मिलाने से भी नवशाल गृह बनता है (यथा— 5 + 4 = 9 शालगृह)।[1]

अथ दशशालगृहसंयोजननिर्णय:—

चतु:शालद्वयं योज्यं द्विशाले दशशालकम्।
त्रिशालत्रयमायोज्यैकशालं दशशालकम् ॥ 24 ॥

दो चतुश्शाल गृह मिलाकर एक द्विशाल गृह जोड़ने से दशशाल गृह बनता है (यथा— 4 + 4 + 2 = 10 शालगृह) और तीन त्रिशाल मिलाकर एकशाल जोड़ने से भी दशशाल गृह बनता है (यथा— 3 + 3 + 3 + 1 = 10 शालगृह)।

द्विशालकानि पञ्चैव दशशालं तु तद्भवेत्।
द्विशालचतुष्के द्व्येकशालं तु दशशालकम् ॥ 25 ॥

पाँच द्विशाल गृहों को मिलाने से दशशाल गृह बनता है (यथा— 2 + 2 + 2 + 2 + 2 = 10 शालगृह)। दो चतुश्शाल गृह के साथ द्विशाल गृह मिलाने से भी दशशाला गृह बनता है (यथा— 4 + 4 + 2 = 10 शालगृह)।

एकशालत्रयं चैव चतु:शालं त्रिशालकम्।
दशशालमिति प्रोक्तं वास्तुशास्त्रविशारदै: ॥ 26 ॥

तीन एक शालागृह, एक चतुश्शाल गृह और एक त्रिशाल गृह सब मिलकर दशशाल गृह बन जाता है (यथा— 1 + 1 + 1 + 4 + 3 = 10 शालगृह)। इस तरह वास्तुशास्त्र के जानकारों ने संयोजनपूर्वक दशशाल कहे हैं।[2]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गृहसंयोजननिर्णयोधिकारो नाम नवनवतितमं सूत्रम् ॥ 99 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गृह संयोजन निर्णय अधिकार नामक निन्यानवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 99 ॥

---

1. वास्तुमण्डनम् में नवशाला के लिए इस प्रकार से संयोजन आया है—1+1+1+1+1+1+1+1+1, 2+1+1+1+1+1+1+1, 2+2+1+1+1+1+1, 2+2+2+1+1+1, 3+1+1+1+1+1+1, 3+2+1+1+1+1, 3+2+2+1+1, 3+2+2+2, 3+3+1+1+1, 4+2+1+1+1, 4+2+2+1, 4+3+1+1, 4+4+1, 4+3+2, 4+1+1+1+1+1, 3+3+3, 3+3+2+1 तथा 2+2+2+2+1 (पूर्वोक्त)

2. वास्तुमण्डनम् में दशशाला के लिए उक्त चारों शालाओं का संयोजन 23 प्रकार से बताया गया है। यथा— 1+1+1+1+1+1+1+1+1+1, 2+1+1+1+1+1+1+1+1, 2+2+1+1+1+1+1+1, 2+2+2+1+1+1+1, 2+2+2+2+1+1, 2+2+2+2+2, 3+1+1+1+1+1+1+1, 3+2+1+1+1+1+1, 3+2+2+1+1+1, 3+2+2+2+1, 3+3+3+1, 3+3+1+1+1+1, 3+3+2+1+1, 3+3+2+2, 4+1+1+1+1+1+1, 4+2+1+1+1+1, 4+2+2+1+1, 4+2+2+2, 4+3+1+1+1, 4+3+2+1, 4+3+3, 4+4+2 तथा 4+4+1+1— अष्टशाले तिथिमिता नवशालेऽष्टभूमिता। योजना दशशालानां त्रयोविंशतिधा मता ॥ (पूर्वोक्त 6, 32)

शालागृहनिर्णयो नाम शततमं सूत्रम्॥ 100॥

अधुना शुद्धासम्बद्धासंयुतापरिभ्रमेति चतुर्विधशालगृहं। विश्वकर्मोवाच —

शुद्धा तथा च सम्बद्धा संयुता च परिभ्रमा।
शालाश्चतुर्विधाः$_4$ प्रोक्ताः शृणु त्वमपराजित॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि 1. शुद्धा, 2. सम्बद्धा, 3. संयुता और 4. परिभ्रमा— ये चार प्रकार की शालाएँ कही गई है। हे अपराजित! अब इनके बारे में सुनो।

शुद्धा च केवला शाला सम्बद्धालिन्दतस्तथा।
शालाश्रेण्या संयुता स्यात् मध्यालिन्दा परिभ्रमा॥ 2॥

जो केवल शाला मात्र होती है उसे 'शुद्धा' नाम से जानते है परन्तु जिस शाला के साथ में आलिन्द अर्थात् पौशाल, बरामदा होता है उसका नाम 'सम्बद्धा' कहा गया है और इसी तरह शालाओं की श्रेणियों कतारों को 'संयुता' कहते हैं। जिन शालाओं को आलिन्दों के मध्य में बनाया जाता है उनको 'परिभ्रमा' नाम से कहा गया है।

एकशालादितो वृद्ध्या चान्ते स्याद् दशशालिकम्।
सर्वाश्चालिन्दरहिताः शुद्धा नाम्ना समीरिताः॥ 3॥

एकशाला से आरम्भ करके अन्त में दशशालिकाओं तक वृद्धि करते हुए सबको बिना आलिन्द-पौशाल के बनाने से उनको 'शुद्धा' नाम से कहा गया है।

साग्रालिन्दा दशशाला एकशालादितः क्रमात्।
सम्बद्धा नामतो ज्ञेया प्रोक्ताश्च गृहकर्मणि॥ 4॥

जिन शालाओं के आगे आलिन्द बना होता है और जो इस तरह एक से आरम्भ करके क्रमशः दशशाला तक होती है, उनको गृह कर्म के निर्माताओं ने 'सम्बद्धा' नाम से कहा है।

शालासङ्घट्टमध्ये तु बाह्यालिन्दैस्तु वेष्टिता।
संयुता नामतो ज्ञेया वास्तुविद्भिरुदाहृता॥ 5॥

शालाओं के सङ्घट्ट-समूह जब बाहर की ओर अलिन्दों से वेष्टित हों तो उन्हें 'संयुता' नाम दिया गया है, ऐसा सभी उदारमना वास्तुकर्म के ज्ञाताओं ने कहा है।

पृथगेकैकशालासु मध्येऽलिन्दा यदि स्थिताः।
परिभ्रमेति विज्ञेया सर्वशान्तिकरी नृणाम्॥ 6॥

जब एक एक पृथक् शाला के बीच-बीच में आलिन्द बने हुए हों तो ऐसी शालाओं को 'परिभ्रम' नाम से जाना जाता है, जो लोगों को सब प्रकार से शान्ति देने वाली होती है।

छन्दभिन्नासम्पुटाप्रतिक्रमेतिशालानामन्यभेदा: —

छन्दभिन्ना प्रतिभिन्ना सम्पुटा च प्रतिक्रमा।
उक्ताश्चतुर्विधा: शाला: पूर्वच्छन्दसमुद्भवा: ॥ 7 ॥

1. छन्दभिन्ना, 2. प्रतिभिन्ना, 3. सम्पुटा और 4. प्रतिक्रमा— ये चार प्रकार की शालाएँ पूर्वच्छन्द समुद्भवा कही गई है।

शालामध्ये पवरका फलकानि भित्त्यन्तरे।
छन्दभिन्नेति तन्नाम सर्वकामप्रदायिनी ॥ 8 ॥

(अब इनके फलाफल पर विचार किया जा रहा है) 1. जिन शालाओं के मध्य में पवरका (छोटी कोटड़ी या परसाल) हो व दीवार के पास फलक या किंवाड़ हो, उन शालाओं को 'छन्दभिन्न' नाम कहा गया है। ये सर्वकामनाओं की पूर्ति करती है।

शालामध्ये पवरकास्तथा पट्‌दारुकं भवेत्।
प्रतिभिन्नेति तन्नाम कर्तु: सर्वगृहोत्तमा ॥ 9 ॥

2. जिन शालाओं के बीच में पवरका हो और उनके पट्‌दारू-पाट भी हो, उनको 'प्रतिभिन्न' नाम से कर्ता ने कहा है, जो सब गृहों में उत्तम होते हैं।

भित्तिमध्ये च षड्‌दारु तथालिन्दे तु बाह्यत:।
सम्पुटेति च तन्नाम प्रशस्ता गृहकर्मणि ॥ 10 ॥

इसी प्रकार 3. जिन शालाओं की भित्तियों के मध्य में षडदारु-पाटड़ा हो तथा आलिन्द बाहर की ओर हो उनका नाम 'सम्पुट' और उनको गृहकर्मवेत्ताओं ने प्रशस्त बताया है।

शालोत्तरे द्वावलिन्दौ क्वचित्पूर्वे तथैव च।
प्रतिक्रमेति तन्नाम कर्तव्या सर्वकामदा ॥ 11 ॥

इनके अतिरिक्त 4. जिन शालाओं में उत्तर दिशा की ओर दो आलिन्द हो और इसी तरह कहीं-कहीं पूर्व दिशा की ओर भी हो उनको 'प्रतिक्रम' नाम से कहा गया है। इनको सर्वकामनाओं की पूर्ति हेतु बनाया जाना एक कर्त्तव्य समझें।

गृहमालागृहनाभिगृहसङ्घट्टगृहाणकेतिगृहभेद चतुष्टयमाह —

गृहमाला गृहनाभिर्गृहसङ्घट्ट एव च।
गृहाणक इति प्रोक्तं गृहभेदचतुष्टयम् ॥ 12 ॥

इसी क्रम में छन्दानुसार 1. गृहशाला, 2. गृहनाभि, 3. गृहसङ्घट्ट और 4. गृहाणक— इन चारों को गृहभेद चतुष्टय कहा गया है।

कुक्षौ चैवाग्रतः पृष्ठे पङ्क्तौ चैव गृहाः स्थिताः।
गृहमालेति नाम्ना वै प्रशस्ता छन्दसम्भवा॥ 13॥

इनकी पहचान के लिए कहा है कि 1. कुक्षी में अर्थात् मध्य में या अग्रतः अर्थात् आगे की ओर, पृष्ठे अर्थात् पीछे की ओर गृहों की पङ्क्तियाँ स्थित हो तो ऐसे छन्द को 'गृहमालाछन्द नाम से प्रशस्त माना है।

विदिक्षु दिक्षु पृष्ठेऽग्रे कुक्षौ वेश्मानि सर्वतः।
गृहसङ्घट्टनामासौ सम्प्रोक्तः शास्त्रकोविदैः॥ 14॥

सभी विदिशाओं में, दिशाओं में, पीछे, आगे, आजू-बाजू, कुक्षि में अर्थात् सब ओर भवन बने हों, उसे 'गृहसङ्घट्ट' नाम विद्वानों ने दिया है।

गृहमध्ये पवरका नानाकारा ह्यलिन्दकाः।
अलिन्दैश्चापवरकैर्गृहनाभिरितीर्यते॥ 15॥

इसके अतिरिक्त 3. जिन गृहों के मध्य में पवरका या छोटी कोटड़ियाँ और नाना प्रकार-आकार के आलिन्द-पौशालें बनी हों, उनको अतिरिक्त आलिन्दों के कारण ही 'गृहनाभि' नाम दिया गया है।

अधो भूमौ सुविस्तीर्ण उपर्युपरि वै पुनः।
गृहाणक इति प्रोक्ता गृहा वै वेदसङ्ख्यया$_4$॥ 16॥

जिन गृहों के नीचे की भूमि या मंजिल काफी विस्तीर्ण हो और एक दूसरे के ऊपर की मंजिल भी पुनः वैसी ही हो तो उन्हें 'गृहाणक' नाम से कहा गया है। इस तरह चार प्रकार के गृह कहे गए हैं।

खण्डपाण्डुवाजिपूर्णतृणच्छन्दपट्टकेति गृहकर्मषट्छन्दाः —

खण्डपाण्डू वाजिपूर्णौ तृणच्छन्दश्च पट्टकः।
छन्दाश्च षड्विधाः प्रोक्ताः प्रयुक्ता गृहकर्मसु॥ 17॥

1. खण्ड, 2. पाण्डू, 3. वाजि, 4. पूर्ण, 5. तृणछन्द और 6. पट्टक— ये छह प्रकार के छन्द अर्थात् छतें गृहकर्म में प्रयुक्त करनी चाहिए, ऐसा कहा गया है।

माडमौडशुद्धशेखरतुङ्गारसिंहकेति राजवेश्मषट्छन्दाः —

माडमौडौ शुद्धशृङ्गौ तुङ्गारः सिंहकस्तथा।
राजवेश्मसु षट्छन्दाः कथितास्त्वपराजित॥ 18॥

हे अराजित! राजभवनों के सन्दर्भ में 1. माड, 2. मौड, 3. शुद्ध, 4. शृङ्ग, 5. तुङ्गार, और 6. सिंह—ये छह अङ्ग राजभवनों के कह गए हैं।

सिंहकर्णः कपोताली घण्टा पद्मं च कुम्भकम्।
ध्वजा छत्रं कुमाराश्च गृहेषु परिवर्जिताः॥ 19॥

सिंहकर्ण, कपोताली, घण्टा, पद्म और कुम्भक अर्थात् कँगूरे (केवाल, घूमट), की रचना तथा ध्वजा, छत्र आदि की रचना राजकुमारों के भवनों (कुँवरपदा) में परिवर्जित है अर्थात् निषिद्ध है। अतएव उनको वहाँ नहीं बनाना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां शालागृहनिर्णयाधिकारो नाम शततमं सूत्रम्॥ 100॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में शाला गृह निर्णय अधिकार नामक सौवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 100॥

द्वारलक्षणमेकाधिकशततमं सूत्रम्॥ 101॥

अधुना एकाशीतिपदानुसारेण द्वारस्य शुभाशुभफलं। विश्वकर्मोवाच[1]—

एकाशीतिपदे वास्तौ द्वात्रिंशद्देवतापदे$_{32}$।

1. इसी अध्याय के आधार पर सूत्रधार मण्डन के पुत्र गोविन्द ने अपनी 'द्वारदीपिका' ग्रन्थ की रचना की है। वास्तुरत्नावली में बृहत्संहिता (53, 69-73) के मत से कहा गया है कि किसी भूखण्ड पर इक्यासी पद वास्तु में नवगुणित सूत्र (9 × 9) से और चौसठ पद वास्तु में अष्टगुणित सूत्र (8 × 8) से विभाजित होकर अनिल, पर्जन्यादि देवों के 32 द्वार बनते हैं। पूर्व के द्वार ईशान कोण से, दक्षिण के द्वार आग्नेय कोण से, पश्चिम के द्वार नैर्ऋत्य कोण से और उत्तर दिशा के द्वार वायव्य कोण जाने जाएँगे। पूर्व दिशा के द्वार का फल इस प्रकार है— शिखी के पद पर द्वार हो तो अग्निभय, पर्जन्य-द्वार से कन्याओं का जन्म, जयन्त के पद पर द्वार हो तो अत्यधिक धन, इन्द्र-द्वार से राजा का प्रियपात्र, सूर्य-द्वार से क्रोधभाव, सत्य-द्वार से असत्यभाषण, भृश-द्वार से क्रूरता एवं अन्तरिक्ष-द्वार से चोरी का भय। दक्षिण दिशा के द्वार के फल इस प्रकार होंगे— याम्य दिशा के प्रथम भाग अनिल में द्वार से अल्पपुत्र, पूषा-द्वार से दासता, वितथ-द्वार से नीचता, बृहत्क्षत्-द्वार से सुभोजन-सुपान एवं सत्पुत्र, यम-द्वार से रौद्रभाव, गन्धर्व-द्वार से कृतघ्नता, भृङ्गराज-द्वार से निर्धनता तथा मृग-द्वार से पुत्र बल की हानि होती है। पश्चिम दिशा के द्वार के निम्न फल होंगे— परा दिशा में पितृ पद पर द्वार हो तो पुत्रव्यथा, दौवारिक-द्वार से शत्रुवृद्धि, सुग्रीव-द्वार से पुत्र एवं धनागम, पुष्पदन्त-द्वार से पुत्र-धनागम, वरुण-द्वार से धन-सम्पदा, असुर-द्वार से राजभय, शोषद्वार से धन-नाश। उत्तर दिशागत द्वार के फल रोगादि स्थानों से इस प्रकार होंगे— प्रथम रोग के पद पर द्वार से वध एवं बन्धन, सर्प-द्वार में शत्रुओं की वृद्धि, मुख्य-द्वार में धन-पुत्रलाभ, भल्लाट-द्वार में सभी शौर्यादि गुण व सम्पदा प्राप्ति, सोम-द्वार में पुत्र-वित्त की सुलभता, भुजङ्ग-द्वार में पुत्र-विरोध, अदिति-द्वार में स्त्री दोष की उत्पत्ति एवं दिति-द्वार में निर्धनता होती है— नवगुणसूत्रविभक्ताम्यष्टगुणेनाऽथवा चतुःषष्टेः। द्वाराणि यानि तेषामनलादीनां फलोपनयः॥ अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्। क्रोधपरताऽनृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण॥ अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भैक्ष्यपानसुतवृद्धिः। रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन॥ सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न सुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत्। धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे॥ वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत्। पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैस्व्यम्॥ (वास्तुरत्नावली 7, 2-6)

पूर्वापरयाम्योत्तरे वच्मि द्वाराणि वै क्रमात्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं क्रमशः एकाशीतिपद अर्थात् इक्यासी पद के वास्तु में 32 देवपदों में क्रमशः पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशोन्मुखी द्वारों के बारे में कहता हूँ।

ईशे रौद्रं भवेद् द्वारं पर्जन्ये स्त्रीवियोगकृत्।
जये विजयदं ख्यातं माहेन्द्रे प्रभुतैधकृत्॥ 2॥

ईश के पद पर बनने वाला 'रौद्र' नामक द्वार भयानक होता है और पर्जन्य के पद पर बनने वाले द्वार से स्त्री से वियोग होता है। जय के पद पर बनने वाला द्वार जयकारक होता है और महेन्द्र के पद पर बनने वाला द्वार अधिक प्रभुता बढ़ाता है।

तेजोवृद्धिः सदादित्ये धर्मे वै शीलतः सुखम्।
सुखदं भृत्यदेवे तु चान्तरिक्षे सदा सुखम्॥ 3॥

आदित्य के पद पर द्वार से सदा तेज की वृद्धि होती रहती है। धर्म के पद पर शील और सुख बढ़ता है। भृत्यदेव के पद पर द्वार सुखदायी और अन्तरिक्ष के पद स्थान पर भी द्वार सदा सुखद होता है।

अग्निस्थाने वह्निभयं पूष्णि चैव भयावहम्।
अनारोग्यं तु वितथे बलदं च गृहक्षते॥ 4॥

अग्नि के पद स्थान पर बने द्वार से सदा अग्निभय बना रहता है। पूषा के पद स्थान पर भय की चिन्ता बनी रहती है। वितथ पर द्वार होने से बीमारी बनी रहती है परन्तु गृहक्षत के पद पर बनने वाला द्वार बल प्रदान करता है।

मृत्युश्च यमसंस्थाने गन्धर्वे च धनञ्जयः।
भृङ्गराजे नैव सुखं शौर्यं विक्रमदं मृगे॥ 5॥

यम के पद स्थान पर द्वार बनाने से मृत्युदायक, गन्धर्व के पद स्थान पर द्वार धनवान बनाता है। भृङ्गराज के पद पर द्वार से आखों की ज्योति बनी रहती है और मृग पद स्थान पर द्वार शौर्य और विक्रम बढ़ाता है।

आयुःप्रदं पितृपदे श्रीदं दौवारिके तथा।
सुग्रीवे कपिबाहुल्यं पुष्पदन्ते तथार्थदम्॥ 6॥

पितृ पद स्थान पर आयु वर्धन, दौवारिक पदस्थान पर श्रीवृद्धि करता है, सुग्रीव पद स्थान पर बन्दरों की बहुलता से उपद्रव और पुष्पदन्त पद स्थान पर बना द्वार धन देता है।

आरोग्यशान्ती वरुणे चासुरेऽर्थक्षयप्रदम्।
हीनवृद्धिकरं शोषे पक्षघ्नं पापयक्ष्मके॥ 7॥

वरुण के पद पर द्वार आरोग्य व शान्तिप्रद, असुर के पद पर धन का नाशक होता है। शोष के पद पर हानि-लाभ का बना रहना और पापयक्ष्मा के पद स्थान पर अपने पक्ष की हानि होती है।

सद्य उच्चाटनं **रोगे नागे** चोन्मादतो **भयम्।**
मुख्येऽभीष्टप्रदं चैव भल्लाटे चार्थवृद्धिकृत्॥ 8॥

रोग के पद पर द्वार से तत्काल उच्चाटन होता है। नाग के पद पर द्वार से उन्माद रोग होने का भय, मुख्य के पद पर मनैच्छित कार्य होता है और भल्लाट के पद स्थान पर द्वार से धन की वृद्धि होती है।

वृद्धिश्च क्षीणता सोमे सदोद्वेगस्तु **पर्वते।**
वृद्धिर्वृद्धिश्चादितौ **च दितौ** चैवाभिमानकृत्॥ 9॥

सोम के पद स्थान पर द्वार से घटा-बढ़ी होती रहती है। पर्वत के पद पर सदा उद्वेग बना रहता है। अदिति के पद पर हानि-लाभ बराबर और दिति के पद पर द्वार से व्यक्ति अभिमानी हो जाता है।

वास्तोश्च परिधावुक्ता द्वात्रिंशदमराः$_{32}$ **क्रमात्।**
शुभद्वारं तु गृह्णीयादशुभं **नैव गृह्यते**॥ 10॥

इस प्रकार वास्तु भवन की परिधि पर स्थिर बत्तीस देवता अपने-अपने क्रम से द्वार का शुभ-अशुभ फल देते हैं, ऐसे में शुभ के पद ही लें, अशुभ पदों को नहीं लें।[1]

तथा च शोभनमण्डितद्वारमाह —

दिशाभागेषु **च तथा द्वारं** शोभनमण्डितम्।
इन्द्रगृहक्षतपुष्पदन्तभल्लाटचिह्नतः॥ 11॥

इन्द्र, गृहक्षत, पुष्पदन्त और भल्लाट नामक वास्तु पदचिह्नों पर अपनी-अपनी दिशाओं के भाग के अनुसार सुन्दर और शोभनीय, सजे-धजे द्वार बनाने चाहिए।

राश्यानुसारेण दिशाद्वारमाह —

मीने सिंहे वृश्चिके च गृहं स्यात्पूर्वतोमुखम्।
याम्यं कन्यानक्रकर्के धनुस्तुलायुग्मे**ऽपरम्**॥ 12॥

---

1. 'मत्स्यपुराण' में फलाफल सहित शालाओं का वर्णन मिलता है— याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम्॥ क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्। यमसूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्॥ राजाग्निभयदं परचक्रभयावहम्। धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद् शालकम्॥ तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम्। चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्यु-सूचनी॥ वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेक भयकारकम्। कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम्॥ सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि द्विशालानि सदा बुधैः॥ (मत्स्यपुराण 256, 8-14)

(व्यक्ति को राशि के अनुसार द्वार का न्यास करना चाहिए, ऐसे में कहा गया है कि) मीन, सिंह और वृश्चिक राशि वालों के अपने भवन पूर्वाभिमुख अर्थात पूर्व दिशा की ओर मुख वाले होने चाहिए। कन्या, मकर और कर्क राशि वालों के भवन दक्षिण दिशोन्मुखी बनाएँ। धनु, तुला और मिथुन राशि वालों को अपने भवनों का मुख पश्चिम दिशा की ओर करना चाहिए।

वृषे मेषे तथा कुम्भे तत्कुर्यादुत्तरामुखम्।
द्वारं दिग्भागतो न्यसेद् गृहपादश्चानुजन्मनि ?॥ 13॥

मेष, वृष और कुम्भ राशि वालों के मकान उत्तर दिशा की ओर मुख वाले होने चाहिए। ये सभी द्वार अपनी अपनी दिशा के भागों के अनुसार वास्तु पद विन्यास के देवस्थानों के अनुसार ही रखने चाहिए।

दिशानुसारेण आय विचारमाह —

पूर्वतोऽभिमुखं वेश्म ध्वजे चाये तु शान्तिदम्।
याम्यतोऽभिमुखं गेहं सदाकल्याणकारकम्॥ 14॥

अब द्वारार्थ आयादि विचार करते हैं। जो भवन पूर्व दिशा की ओर मुख वाले हों उनके लिए ध्वज आय शान्तिदायक होती है। दक्षिण दिशा की ओर मुख वाले भवनों को भी यह सदा कल्याण कारक होती है।

गृहं च वारुणे शस्तं धनधान्यादिकं भवेत्।
कौबेरीमुखगेहं च शान्तिपुष्टि सुखावहम्॥ 15॥

पश्चिम दिशा की ओर मुख वाले भवनों को भी यह आय प्रशस्त मानी गई है और धन धान्यादि दिलाने वाली होती है। यह आय उत्तर दिशा की ओर मुख वाले भवनों को भी शान्ति, पुष्टि और सुख प्रदान करने वाली होती है।

कुर्युरायविरुद्धं न द्वारं वै शिल्पिनस्तथा।
सर्वेषामथवा चायं वृषं कुर्युर्विचक्षणाः॥ 16॥

शिल्पियों को चाहिए कि वे कोई भी द्वार आय के विरुद्ध नहीं लगाएँ। वे चाहे तो सभी द्वारों में वृष आय रखे। जो विचक्षण शिल्पी होते हैं, वे वृष आय का ही विचार रखते हैं।

अन्यदप्याह —

ध्वजे हरौ वा विशोध्यर्क्षं ताराश्चन्द्रमशंकम्।
मैत्रे वृद्धिप्रदं द्वारं नित्यं कल्याणकारकम्॥ 17॥
वेश्मनां वामकर्णे च मूलद्वारं तु कारयेत्।

हर वास्तुपद पर बनने वाला द्वार नक्षत्र, तारा, नन्द, अंशकों को विशोधित करके यानी ज्ञात करके ही ध्वज आय में बनाए। मैत्र वास्तु पद पर भी जो द्वार बने, उसे भी इसी तरह ध्वजाय में बनाने पर वह नित्य कल्याणकारक और वृद्धिप्रद होता है। इस बात का सदा ध्यान रहे कि भवनों के बायें कोने पर कोई भी मूल द्वार न बनाएँ।

हयशाला च गजशाला द्वारं —

दक्षिणे चाश्वशालानां मध्ये द्वारं तु दन्तिनाम् ॥ 18 ॥

अश्वशालाओं का मुख्य द्वार दक्षिण और गजशालाओं का मुख्य द्वार मध्य में बनाना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां द्वारलक्षणाधिकारो नामैकाधिकशततमं सूत्रम् ॥ 101 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में द्वार लक्षण अधिकार नामक एक सौ एकवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 101 ॥

महाराजप्रासादायतननिवेशो नाम द्वयुत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 102 ॥

अधुना नृपस्यायतननिवेशं। विश्वकर्मोवाच —

आदौ पुन उच्चुश्च[1] प्रासादानृपपन्नोतमाः।
तनु पूर्वापरस्था याम्योत्तरे विपुलान्मही ? ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं आदि से ही पुनः नृपों के लिए विहित उत्तम प्रासादों के बारे में कहता हूँ जो इस विपुला पृथ्वी पर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर— चारों ही दिशाओं में प्रसार्यमान हैं।

दशाष्टौषट्शतान्येवं$_{618}$ धनुषां स्मृतमुत्तमम्।
मानमायतनस्योक्तं त्रिधा ज्येष्ठादिभेदतः ॥ 2 ॥
क्षेत्रमायामतश्चैव चतुरस्त्रं समं कृतम्।
तस्यानुजीवनं कुर्यात् प्रासादानां विधा यदि ॥ 3 ॥

इन प्रासादों की भूमि का क्षेत्र-आयाम दस शत, अष्ट शत एवं षट् शत धनुष पैमाने का होता है। यह जो आयतमान कहा है वह क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम और

---

1. 'पुनरुध्युश्च' इति प्रकाशित पाठः। (यह सूत्र समराङ्गणसूत्रधार के आयतननिवेश नामक अध्याय पर आधारित है)।

कनिष्ठ भेद से तीन प्रकार का है। क्षेत्र आयाम को चौरस करके समतल करें। उसके बाद ही प्रासाद की विधि करनी चाहिए।

दन्तस्य$_{32}$ दिग्भागवशात्$_{10}$ स्थानमानादितः **क्रमात्।**
तेषां तत्र विधीयन्ते **सर्वेषां** वृद्धिहेतवे॥ 4॥

महाराज के लिए प्रासादों का मानक्रम दन्त (अर्थात 32) के दिक् (अर्थात 10) के भागानुसार यानी 1032 प्रकार के क्रम से विधिपूर्वक करना चाहिए ताकि सबकी वृद्धि का हेतु बना रह सके।

बन्ध्वादीनां निवेशमाह —

सूत्रभक्तानुकुर्वीत **निवेश्य** [1]स्वामीवास्तु सु।
प्रजावृद्धिकरा **नित्यं सुखदाः स्युः** पुरःपतेः॥ 5॥
सन्मान्यन्ते ये च राजा तुल्यजाता **हितैषिणः।**
तद्वेश्मार्कांशहीनं **स्याद् बन्ध्वाद्याः पूर्वतः स्थिताः**॥ 6॥
तस्यैव चाग्रतः कुर्यादुत्सेधद्विगुणान्तरे।
एवं विधा च कर्तव्या सभा देवोचितोत्तमा॥ 7॥

फिर, उस निवेश के स्वामी के भवन के सूत छाँटकर विधि के अनुसार कार्य का प्रारूप बनाए। जो प्रजा को सुखप्रद और पुरपति को भी सुखप्रद हों और वृद्धिकर हो सके। जो राजा के तुल्य कुल के हों, हितैषी हो और राजा का सम्मान करते हों, ऐसे बन्धु आदि को पूर्व दिशा में स्थित भवनों में बसाना चाहिए। उनके भवन राजभवन से बाहरवाँ भाग (1/12) कम रखने चाहिए। उनका अग्रभाग भी दुगुने अन्तर की ऊँचाई वाला हो। इसी विधा से देवों के लायक उत्तम सभा का निर्माण करना चाहिए।

ईशाने पूर्वदिशि वा देवधिष्ण्यानि **कारयेत्।**
नृपस्य श्वशुरादीनां विहीनान्यष्टमांशतः॥ 8॥
एतेषां पूर्वभागस्थं राजमातुर्निवेशनम्।
मातुर्मातुर्भगिन्यादेर्हीनमेकादशांशतः॥ 9॥
आग्नेय्यीं दिशमाश्रित्य **पुत्राणां** विनिवेशनम्।
हीनमेकादशांशेन **तत्कार्यं** पुरमध्यतः॥ 10॥

महल के ईशान कोण में या पूर्व दिशा में देवता का स्थान बनाना चाहिए। राजा

1. 'स्वामिवत्सल ?।' इति प्रकाशित पाठः।

के श्वसुरादिकों के भवन राजप्रासाद से अष्टांश (1/8) हीन बनाएँ। इनके पूर्व भाग में राजमाता के भवन का निर्माण करें। नानी, बहिन आदि के भवन राजभवन से एकादशांश (1/11) हीन बनाएँ। पुत्रों के भवन आग्नेय दिशा में बनाने चाहिए और वे पुर के मध्य मे हो और राजभवन से ग्यारहवें अंश (1/11) हीन बनाएँ।

पत्न्यादीनां प्रासादप्रमाणमाह —

तत्प्रासादास्तु तत्तुल्या न न्यूना न ततोऽधिकाः।
याम्यायां च प्रकुर्वीत पत्न्या मात्रादिकस्य **च॥ 11॥**
कुर्याद् दशांशहीनांश्च **नैर्ऋत्यां दिशि भूपतेः।**
प्रासादान् नृपपत्नीनां **सर्वासां** रतिकोत्तमान्॥ 12॥
राज्ञीप्रासादतुल्यांश्चाश्रितदेवीनां **पश्चिमे।**
स्वसॄणां मातुलानां **च** कुमाराणां **तु वारुणे॥ 13॥**

राजभवन के समान ही, न तो कम न अधिक राजा की पत्नियों, रानियों के भवन दक्षिणी भाग में बनाएँ जिनकी मात्रा मान-सम्मान को ध्यान में रखकर ही भवन बनेंगे। नैर्ऋत्य दिशा में राजा की अन्य सभी पत्नियों के भवन बने जो कि राजा के रतिकर्म में उत्तम मानी जाती है। वे भवन राजभवन से दशांश कम (1/10) कम रखने चाहिए। इसी तरह की रानियों के भवनों के समान ही आश्रित देवियों के भवन भी पश्चिमी भाग में बनावें और श्वसुरों, सासों, माताओं एवं कुमारों के भवन पश्चिमी भाग में बनाएँ।

मन्त्रीप्रतिहारपुरोहितावासं —

सौम्यायां मारुतं यावद् भगिन्या याम्यतस्तथा।
प्रासादा मन्त्रिणां गेहाः प्रतिहारपुरोधसाम्॥ 14॥

उत्तर दिशा से वायु कोण तक के भाग में राजा की बहनों के भवन बनाएँ और दक्षिणी भाग में मन्त्रियों, प्रतिहारों, पुरोहितों के भवन बनाने चाहिए।

सामन्त कुञ्ज संरोह वपुषौ रजनानि च ?।
ईशान्ये देवकुलानामष्टमांशहीना **मताः॥ 15॥**[1]

---

1. यह श्लोक समराङ्गणसूत्रधार में इस प्रकार आया है— सामन्तकुञ्जरारोहभटपौरजनाः क्रमात्। एतान्यायतनान्येषां यथाभागं प्रकल्पयेत्॥ (समराङ्गण. 51) अर्थात् राजा के सामन्तों, हाथियों पर सवारी करने के अधिकार प्राप्त भट-सैनिकों और नागरिकों आदि जनों के आवासों को क्रमानुसार (उत्तरोत्तर प्रमाण में कम करते हुए) यथाभाग परिकल्पित करना चाहिए।

सामन्तों के समूहों, रजनानि आदिकों के भवन (?) और देवकुलों[1] को ईशान कोण के भाग में अष्टांश हीन (1/8) बनाएँ।

---

1. प्राचीन अभिलेखों में 'देवकुल' शब्द का प्रयोग हुआ है। कुषाण नरेश अपने पूर्वजों की प्रतिमाओं से अन्तर्विष्ट देवकुल कहे जाने वाले देवायतनों की स्थापना करते थे। (आ. स. इ. ऐ. रि. 1911-12 पृष्ठ 124, अभिलेख की तृतीय पङ्क्ति)
सुवीरा जायसवाल का मत है कि इन देवकुलों की स्थापना सम्भवतः वृष्टि देवताओं से अधिष्ठित मन्दिरों के नमूने पर की गई थी जिनकी पूजा विदेशियों में काफी प्रचलित प्रतीत होती है। देवकुल शब्द, जिसका अर्थ मन्दिर या देवगृह होता है, देवता के कुल या परिवार का वाचक भी हो सकता है; और यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ में इसका प्रयोग उन्हीं देवायतनों के लिए हुआ हो, जिनमें एक परिवार के ही कई देवताओं की प्रतिमाएँ अधिष्ठित रहीं हों जैसे कि वृष्णिवीरों के मन्दिरों में होती थीं। कुषाण राजाओं ने इस नीति को अपने पूर्वजों के निमित्त समर्पित देवायतनों में अपनाया। भास के 'प्रतिमा' नाटक में भरत अपने चार मृत पूर्वजों की प्रतिमा वाले देवकुल को देवताओं, प्रत्यक्षतः चार वृष्णि देवताओं वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का देवायतन समझने की भूल कर बैठते हैं। इससे जाना जा सकता है कि राजपरिवारों के पैतृक देवकुल वृष्टि देवकुलों के साधर्म्य पर ही निर्मित किए गए थे जिनके विषय में ऐतिहासिक दृष्टान्त केवल कुषाणों के ही उपलब्ध हैं। (वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली 2004 ई., पृष्ठ 175)
वैसे यह बात उदयपुर के निवेश के प्रसङ्ग में विचारणीय है। वहाँ राजप्रासाद के ईशान कोण में ही पूर्वजों की छतरियाँ, महासतियाँ अथवा देवकुल बने हुए हैं।
मयमतं में देवकुलों में स्थापनीय वैष्णव, शैवादि देवी-देवताओं के परिवार की सूची प्रस्तुत की गई है। मय का कथन है कि देवालयों के साथ ही बनाए जाने वाले अनुचर वर्ग, देव गणादि के निमित्त प्रासादों का निर्माण विशेष युक्ति से करना चाहिए। अनुचरवर्ग में आठ से लेकर बत्तीस गणों की गणना होती है। देवताओं के अनुचरवर्ग के विमानों, प्रासादों का गर्भगृह प्रासाद की चौड़ाई का आधा रखना चाहिए। यह मूल प्रासाद की चौड़ाई का एक तिहाई, आधा या तीन चौथाई प्रमाण से बाहर बनता है। (प्रकारान्तर से) परिवारालय की चौड़ाई तीन, चार, पाँच, छह अथवा सात हाथ रखी जा सकती है। शास्त्रविदों का मत है कि देवताओं के अनुचारों की संख्या आठ, बारह, सोलह अथवा बत्तीस होती है। (इसी संख्या में उनकी स्थिति कही गई है)। देवताओं के अनुचरों की प्रतिमा की ऊँचाई को निर्धारित प्रमाण से रखना चाहिए। प्रतिमा शिल्पियों को चाहिए कि वे बेर (प्रतिमा, रूप, अर्चा) के निमित्त निर्धारित मान को ही लेकर समस्त लक्षणों वाली स्थानक या आसनस्थ प्रतिमा का निर्माण करें। यदि प्रासाद को हीन अथवा लघु मान से निर्मित किया जाता है तो उसमें अष्ट देवगणों के लिए आलय बनवाएँ और उसके लिए एक ही प्राकार को योजित करें। इसमें पीठपद विन्यास (नौ पद) करें और प्रथम स्थान पर आर्यक की स्थापना करें। इसके बाद ऋषभ, गणाधिप, ब्रह्मा, मातृ, गुह, आर्य, अच्युत और चण्डेश की प्रतिष्ठा करें। (बारह देवानुचरों के निमित्त) उपपीठ पद विन्यास (पच्चीस पद) करें और उनमें बारह अनुचरों को स्थापित करें। इसमें प्रथम पद पर वृष, ब्रह्मा, गुह और हरि को पूर्व के पदानुसार आर्यकादि से क्रमशः स्थापित करें। इसके उपरान्त सूर्यादि के पद से वामगत क्रम से रवि, गणेश, यम, मातृ, वरुण, दुर्गा, कुबेर तथा चण्ड को स्थापित करना चाहिए। (ये बारह अनुचर वर्ग अल्प प्रासाद में होते हैं)। सोलह अनुचरों के लिए उग्रपीठ विन्यास (छत्तीस पद) किया जाना अपेक्षित है। इसमें पूर्व कथनानुरूप से ही अन्दर के आर्यकादि पद से वृषादि का निवेश करना चाहिए। (इसके बाद) ईशादि पदों से निवेश करें अर्थात् ईश के पद पर चण्ड, जयन्त के पद पर चन्द्र, भृश के पद पर

अथ मर्मादिवेधमाह —

मर्मवेधं परित्यज्य द्वारवेधादिषु क्रमात्।
खातं कार्यं च स्वस्थाने तेषां च हितकाम्यया॥ 16 ॥[1]

सूर्य, अग्नि के पद पर गणेश, वितथ के पद पर श्री या लक्ष्मी, भृङ्गराज के पद पर सरस्वती, पितृ के पद पर मातृ, सुग्रीव के पद पर शुक्र, शोष के पद पर जीव, वायु के पद पर दुर्गा, मुख्य के पद पर दिति और अदिति के पद पर अदिति का निवेश करना चाहिए। (यह मध्यम प्रासाद में सोलह देवानुचरों का निवेशन हुआ)। बत्तीस देवानुचरों के निवेश के लिए स्थण्डिल पद विन्यास या चण्डित (उनचास पद) की रचनाकर स्थापना करनी चाहिए। इसके अनुसार ब्रह्मपद के नौ बाह्यपदों में साविन्द्र के पद में श्री, इन्द्रजय के पद में ज्येष्ठा, रुद्रजय के पद में उमा, आपवत्स के पद में सरस्वती और पूर्व कथनानुसार ही आर्यादि के पद से वृषभादि का निवेश करना चाहिए। (बत्तीस अनुचरों के उक्त परिवारालय में अन्य के निवेश के लिए पदक्रम इस प्रकार होगा) ईश के पद पर ईश, पर्जन्य के पद पर चन्द्र, माहेन्द्र के पद पर नन्दिकेश्वर, भानु के पद पर इन्द्र, सत्य के पद पर महाकाल, अन्तरिक्ष के पद पर सूर्य, अग्नि के पद में वह्नि, पूषा के पद पर बृहस्पति, गृहक्षत के पद पर गणेश, यम के पद पर आर्कि, गन्धर्व के पद पर भृङ्गिरीट, मृष के पद पर चामुण्डा, पितृ के पद पर निर्ऋति, बोधन के पद पर अगस्त्य, पुष्पदन्त के पद पर विश्वकर्मा, वरुण के पद पर वरुण, असुर के पद पर भृगु, यक्ष के पद पर प्रजापति, समीर के पद पर वायु, नाग के पद पर दुर्गा, भल्लाट के पद पर वीरभद्र, सोम के पद पर कुबेर, मृग के पद पर चण्डेश्वर और अदिति के पद पर शुक्र को निवेशित किया जाना चाहिए। पण्डितों ने इस तरह से स्थण्डिल, चण्डित पद विन्यास में देवानुचरों की स्थिति कही है—

परिवारविमानानां मानं गर्भार्धमिष्यते। मूलवस्तुत्रिभागैकं मध्यं वा पादबाह्यकम्॥ त्रि$_{3}$चतु$_{4}$ष्पञ्च$_{5}$षट्$_{6}$सप्त$_{7}$हस्तैर्वा हर्म्यविस्तृतम्। अष्टौ$_{8}$ वा परिवाराः स्युस्तथा द्वादश$_{12}$ षोडश$_{16}$॥ द्वात्रिंशत्$_{32}$ परिवारश्च हीष्यन्ते शास्त्रकोविदैः। परिवारामरोत्सेधं युक्त्या तत्रैव योजयेत्॥ युदक्तं सकले बेरे तन्मानं गृह्यतां वरैः। सर्वलक्षणसंयुक्तं स्थानकासनमेव वा॥ हीनविमानानामथ परिवाराश्चाष्ट$_{8}$ वै प्रोक्ताः। प्राकारोऽप्येकः स्यात् पीठपदे चार्यकः स्थाप्यः॥ ऋषभगणाधिप कमलजमातृगुहार्याच्युताश्च चण्डेशाः। उपपीठपदे चान्तर्द्वादश$_{12}$ परिवारकाः स्थाप्याः॥ वृषकमलजगुहहरयः पूर्ववदुदितास्तथार्यकादिपदे। रविगजवदनयमास्ते मातृजलेशौ च दुर्गा च॥ धनदश्चण्डः क्रमशः सूर्यपदादिष्ववामगताः। षोडश परिवाराः स्युश्चोग्रे पीठे निधातव्याः॥ अन्तश्चार्यकभागादिषु वृषभाद्यास्तथा प्राग्वत्। ईशपदे च जयन्ते भृशभागेऽग्नौ च वितथे च॥ भृङ्गनृपे पितृसुगले शोषे वायौ च मुख्यकेऽप्युदितौ। चण्डश्चन्द्रः सूर्यो गजवदनः श्रीः सरस्वती चेति॥ ता मातरश्च शुक्रो जीवो दुर्गा दितिस्तथाप्युदितिः। द्वात्रिंशत्$_{32}$ परिवाराः स्थण्डिलकाख्ये तु चण्डिते स्थाप्याः॥ ब्रह्मपदं नवबाह्ये श्रीज्येष्ठोमा सरस्वती चैताः। साविन्द्रेन्द्रजयांशे रुद्रजये चापवत्से च॥ आर्यादिषु च पदेषु वृषभाद्याः पूर्ववत् कथिताः। ईशे पर्जन्यपदे माहेन्द्रे भानुभागे तु॥ सत्यान्तरिक्षकानल पूषग्रहक्षतार्किभागे तु। गन्धर्वे मृषभागे पितृबोधनपुष्पदन्तवरुणेषु॥ असुरे यक्षसमीरणभागे नागे च भल्लाटे। सोमपदे ऋभ(?मृग) भागेऽप्युदितौ देवाः क्रमात् स्थाप्याः॥ ईशशशिनन्दिकेश्वरसुरपतयो वै महाकालः। दिनकरवह्नि बृहस्पतिगजवदनयमाश्च भिङ्गिरिटिः॥ चामुण्डाप्यथ निर्ऋतिश्चागस्त्यो विश्वकर्मा च। जलपतिरथ भृगुनामा दक्षः प्रजापतिर्वायुः॥ दुर्गा च वीरभद्रो धनदश्चण्डेश्वरः शुक्रः। स्थण्डिलचण्डितभागे पण्डितजनमण्डलैरुदिताः॥ (मयमतम् 23, 35-52, विशेष द्रष्टव्य : श्रीकृष्ण 'जुगनू' सम्पादित 'मयमतम्', चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2008 ई., के द्वितीय भाग की भूमिका)

1. यह श्लोक समराङ्गणसूत्रधार से है। किञ्चित पाठान्तर है— मर्मवेधप्रदेशस्थान् द्वारवेधगतानपि। स्वस्थानान्तरितांश्चैतान् न कुर्याद्धितकाम्यया॥ (51,14)

अब वेधों के बारे में कहा जा रहा है। सदैव मर्मवेधों को छोड़कर, क्रम से द्वार वेधों के खातकार्य में स्वस्थान ही उचित है, ऐसा मत हितकामना रखने वालों ने बताया है।

अलिन्दैर्गर्भकोष्ठैश्च सीमास्तम्भगवाक्षकैः।
द्वारद्रव्यतलोच्छ्राये प्राग्ग्रीवे सिंहकर्णिकैः ॥ 17 ॥
न कुर्याद् दूषणैस्तुल्यात् समन्ताच्छन्दरूपतः।
समरूपं भवेन्न्यूनमधिकं नैव निन्दति ॥ 18 ॥

अलिन्दों-पौशालों को, गर्भकोष्ठों को, सीमा स्तम्भों को, गवाक्ष या गोखड़ों को द्वार-द्रव्यों को, उनके तल और ऊँचाई के प्राग्रीव को और सिंहकर्ण को बनाने में कोई भी खामी दूषण नहीं रखना चाहिए। सब के छन्दरूप एक-से हों तथा समरूप होने से न्यूनाधिक नहीं होने से उनकी कभी निन्दा भी नहीं होती है।

राजपीडा भवेन्न्यूनेऽधिपे स्यात्तु धनक्षयः।
प्रासादे भूमिपालस्य निवेशाः परिधौ क्रमात् ॥ 19 ॥

यह ज्ञातव्य है कि इनमें न्यूनता रह जाए तो राजपीड़ा होती है और अधिकता होने पर धन का अपव्यय होता है। अस्तु, भूमिपालों या राजाओं के राजमहलों को परिधि या परकोटे से युक्त बनाएँ।

द्रव्ये न्यूनं न कर्तव्येमुत्कृष्टं चैव कारयेत्।
संस्थानोन्मानन्यूनं न विस्तरे चोच्छ्रयेऽपि च ॥ 20 ॥

इस बात का पूरा ध्यान रखें कि काम को उत्कृष्ट रीति से करने के लिए द्रव्य खर्च करने में कोई कोताही कभी न करें और पूरे संस्थान निर्माण कार्य का मान, उन्मान न तो ज्यादा विस्तार में हो, न ही कम हो, न ऊँचाई में भी कोई कमी-बेशी हो।

पूर्वोक्तस्य विभागस्य किञ्चिद्धीनान्तरं शुभम्।
अन्योन्यद्विगुणोच्छ्रायैरेकैकस्यान्तरं शुभम् ॥ 21 ॥

तथापि, पहले कहे गए विभागों में थोड़ी-बहुत कमी रखना शुभ होता है और एक दूसरे में अन्तर देकर द्विगुणी ऊँचाई भी शुभ होती है।

महानस चोपस्करादीनां —

सुभोग्यं तत्र कुर्वीत बहुभिर्भवनान्तरैः।
कोष्ठागारैर्भाण्डागारैर्भोजनोपस्करादिभिः ॥ 22 ॥
शिलोदूखलशालाभिः पूरयेदन्यदन्तरम्।
प्रशस्तान् कारयेत् सर्वान् सुरूपान् सुमनोरमान् ॥ 23 ॥

अब भोजनशाला के बारे में कहते हैं। बहुत से भवनों के अन्तर या दूरी पर जहाँ मनुष्य सुभोग अर्थात् भोजनादि करते हैं, वहाँ की रचना में कोठार, भण्डार और भोजन बनाने के अन्य उपकरण रखने के स्थान जैसे कि सिलवट्टे-ऊखल से काम करने की शालाएँ एक-दूसरे के अन्तर पर बनानी चाहिए। उन सभी को प्रशस्त नियमानुसार सुरूप और सुमनोरम बनाएँ।

जलस्रोतादीनां —

वापीकूपप्रपाद्याश्च सुराणां च गृहाणि च।
नरेन्द्रायतनं त्वेवं वेश्मानि परिकल्पयेत्॥ 24॥
अन्यथा तु महोदोषस्तथैव च कुलक्षयः।
इति प्रासाददिग्भेदाः सौम्यं सुरगृहादिकम्॥ 25॥
यस्तैतत्तस्य विजयश्चिरं स मुदितो भवेत्।
प्रतापी निर्भयस्तावत्सुचिरं प्राप्यते मही॥ 26॥

इसी प्रकार बावड़ी, कूएँ, प्याऊ और देव मन्दिरों को भी राजभवनों की तरह वैभव सहित परिकल्पित करना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर महादोष होता है और उससे कुलक्षय भी हो सकता है। ये सब प्रासादों, राजभवनों के दिशानुसार भेद और शान्तिदायक देव मन्दिरों के बारे में बताया जिससे राजा की चिर-विजय होती है, राजा प्रसन्न रहता है और निर्भय, प्रतापी रहता हुआ चिरकाल तक भूमि पर राज करता है।

अन्यदप्याह —

यस्य यस्य यदा भूमिः फलं तस्यैव चोत्तमम्।
तस्मै क्रुध्यति देवो यो द्विजदेवमहीं हरे॥ 27॥

जैसी-जैसी जिसकी भूमि होती है, उसका फल भी उसी प्रकार का होता है। जो ब्राह्मणों और देवमन्दिरों की भूमि का हरण करते हैं, उन पर देवता भी क्रुद्ध होते हैं। (अतः अतिक्रमण नहीं करना चाहिए)।

अन्येभ्यश्चापि हर्म्याणि कन्यादिभ्यस्तथैव च।
वितरन्ति महीपाला लभन्ते पुण्यमुत्तमम्॥ 28॥

राजा को चाहिए कि यथावश्यकता अन्य भवन भी बनवाएँ और उन्हें कन्याओं आदि के साथ वितरण करें अर्थात् कन्याओं को दान करें। भवन भेंट करने से तो बड़े उत्तम पुण्य का लाभ अर्जित होता है।[1]

---

1. कूर्मपुराण में गृहदान का महत्व आया है— शक्तितः सर्ववित्तेन पूर्णं गृहमति त्रिधा। सदक्षिणं द्विजे दत्वा

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्त श्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
महाराजप्रासादायतननिवेशाधिकारो नाम द्व्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 102 ॥
इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में महाराज
प्रासादायतन निवेश अधिकार नामक एक सौ दोवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 102 ॥

त्रैलोक्यदीक्षा नाम त्र्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 103 ॥

अत ऊर्ध्वं प्रासादखण्डं भविष्यति।

अधुना प्रासादोत्पत्त्यादि वर्णनं। अपराजित उवाच —

प्रासादानां कथं तात चोत्पत्तिर्दिव्यसूत्रिणः।
किमाकारजातिरूपा नागराश्छन्दकास्तथा॥ 1 ॥

(एक प्रकार से यहाँ से ग्रन्थ का प्रासादखण्ड आरम्भ होता है। इसके बाद नाना प्रकार के प्रासादों की उत्पत्ति, उनके प्रकार, भेदोपभेदादि पर विचार किया जा रहा है। इसी प्रसङ्ग में प्रश्न करते हुए) अपराजित ने पूछा कि हे तात! प्रासादों-मन्दिरों के दिव्य सूत्रों के अनुसार उत्पत्ति कैसे हुई और उनके क्या-क्या आकार, जातियाँ, नागर-छन्दादिकों में है?

द्राविडा मिश्रकाः ख्याता विमाना भूमिजास्तथा।
सान्धाराश्च वराटाश्च लतिनाश्चैवकामदाः ॥ 2 ॥
वलभ्यः फांसनाकाराः सिंहालोकनदारुजाः।
विमानं नागरच्छन्दे कुर्याद् विमानपुष्पकम्॥ 3 ॥
भिन्नभिन्नतयोक्तानि गृहाण्येवाभिधानतः।
कस्यां जातौ कानि चैव ह्युत्पन्नानि ब्रवीहि मे॥ 4 ॥

इस क्रम में द्राविड़, मिश्रक नाम के विमान, भूमिज और सान्धार, वराट,

---

ब्रह्मलोकं व्रजेन्नरः॥ सर्ववित्तेन सर्वोपस्करणेनेत्यर्थः। गृहदाता सुखी प्राज्ञो वितृष्णः सर्ववस्तुषु॥ प्रजासुखविवृद्ध्यर्थं पात्रे देय मतो गृहम्। (विधानपारिजात चतुर्थस्तबक 93, 224)

गरुडपुराण में भी आया है— ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने। क्रीडित्वा सुचिरं स्वर्गे मानुष्यं लोकमास्थितः॥ भवत्यव्याहतैश्वर्यैः सर्वकाम समन्वितः॥ ऐष्टकं दारवं वापि मृन्मयं वापि शक्तितः। सर्वोपस्करणोपेतं यो दद्यात् विपुलं गृहम्॥ (तत्रैवोद्धृत पृष्ठ 225)

गृहादि दानमन्त्रो ब्रह्मवैवर्तपुराणे— इदं गृहं गृहाणत्वं सर्वोपस्कर संयुतम्। तव विप्र! प्रसादेन ममास्त्वभिमतं फलम्॥ एव मेकैकशो दत्त्वा प्रणिपत्य समर्पयेत्। स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यं कोऽदादिति च पूजितैः। यद् यस्य विहितं पूर्वं तत्तस्मै प्रतिपादयेदिति। (तत्रैव पृष्ठ 232)

लतिन और कामद, वल्लभी, फांसनाकार, सिंहालोकन आदि काष्ठ से बनने वाले, नागरच्छन्द में बनने वाले विमान, पुष्पकविमान आदि भिन्न-भिन्न नामों से कहे जाने वाले गृह कैसे बने? किससे वे उत्पन्न हुए— यह सब आप कृपा करके मुझे कहिए।[1]

विश्वकर्मोवाच —

भारते च महापुण्ये हिमवान् वै महागिरिः।
तस्मिन्नेव महापुण्यं दण्डी दारुवनं महत्॥ 5॥

विश्वकर्मा बोले कि हे पुत्र! महापुण्यवान इस भारत देश में हिमवान् नामक एक महान् पर्वत है। उस महापर्वत में ही महापुण्यवान दण्डी नामक महान दारुवन है।

दारुवने द्रुमजात्यादीनां वर्णनं —

देवदारुवनं दिव्यं विविधा वृक्षजातयः।
कङ्कोलकलवङ्गाश्च तथा कर्पूरपादपाः॥ 6॥
चन्दनागरुसौभाग्यरक्तचन्दनकास्तथा।
अगस्त्योदुम्बराशोका बिल्ववृक्षश्च चम्पकाः॥ 7॥
पनसाश्च कपित्थाश्च द्राक्षाखर्जूरदाडिमाः।
सालतालतमालाश्च तथैव मधुपादपाः॥ 8॥
कर्णिकारद्रुमा रम्या नानापुष्पफलन्विताः।
अतीवफलसम्युक्ता लताः स्त्र्याकृतयस्तथा॥ 9॥
नागकेसरपुन्नागा विविधा वृक्षजातयः।
जातीचम्पकमन्दारा नीलरक्तोपत्पलानि च॥ 10॥

---

1. सूत्रधार मण्डन ने चौदह प्रकार के प्रसादों में आठ प्रकार के प्रासादों की श्रेष्ठता स्वीकार की है। ये हैं— 1. नागर, 2. द्राविड, 3. भूमिज, 4. लतिन, 5. सान्धार, 6. विमान-नागर, 7. पुष्पकाङ्कित अथवा और 8. मिश्र जाति प्रासाद। ये आठों जातियों के प्रासाद सब देवों के लिए निर्मित किए जा सकते हैं तथापि भगवान शिव के लिए विशेष रूप से इन सभी प्रासाद स्वरूपों का प्रयोग किया जाना श्रेयस्कर माना जाता है— उत्तमजात्यष्टकम्-नागरा-द्राविडाश्चैव भूमिजा-लतिनास्तथा। सावन्धारा-विमानादि-नागराः पुष्पकाङ्किताः॥ प्रासादमिश्रकाश्चैवमष्टौ जातिषु चोत्तमाः। सर्वदेवेषु कर्त्तव्याः शिवस्यापि विशेपतः॥ (प्रासादमण्डनम् 1, 7-8)
इसी प्रकार विश्वकर्माप्रकाश में शिखरानुसार प्रासादों के विभिन्न भेद कहे गए हैं— मेरुमन्दरकैलाशकुम्भसिंहमृगास्तथा॥ विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुस्तथैव च। अष्टास्रपोडशास्रश्च वर्त्तुलः सर्वभद्रकः॥ सिंहश्च नन्दनश्चैव नन्दिवर्धन एव च। सिंहोवृषः सुवर्णश्च पद्मकोऽथ समुद्रकः॥ (विश्वकर्मा. 6, 82-84; विशिष्ट सन्दर्भ - हरिवंश. विष्णु पर्व, 88.59)

इस दिव्य देवदारु वन में विविध प्रकार की वृक्ष जातियाँ हैं। अब उनके नाम सुनो! कङ्कोल, कलवङ्ग, कर्पूर के पेड़, चन्दन, अगरू, सौभाग्य, रक्तचन्दन, अगस्ती, उदुम्बर, अशोक, बिल्ववृक्ष, चम्पक, पनस, कपित्थ, दाख, खर्जूर, दाड़िम, साल, ताल, तमाल, महुआ, कर्णिकार के सुन्दर वृक्ष और नाना प्रकार के पुष्पों और फलों से लक-दक द्रुम और अतीव फलों से युक्त लताएँ स्त्री जाति की आकृति वाली भी नागकेसर, पुन्नाग जैसी विविध वृक्ष जातियाँ, जाती, चम्पक, मन्दार, नीले और लाल कमल आदि पाए जाते हैं।

पताकाध्वजसम्युक्तं तत्र वै यज्ञमण्डपम्।
पद्मपुष्पसुशोभाढ्यं वितानैर्नैककैर्युतम्॥ 11॥
श्वेतरक्तहरित्पीतैः कणधूमैस्तथैव च।
कर्पूरकुङ्कुमादित्यपुष्पप्रकरसङ्कुला॥ 12॥

वहाँ फहराती पताकाएँ और बड़े-बड़े ध्वजों के समूहों से यज्ञ मण्डप सजे हैं जिनमें पद्मपुष्पों की शोभा की भरमार है। उनमें तरह-तरह के वितान लगे हुए हैं जिनका वर्ण कहीं श्वेत, कहीं पीत, कहीं हरा है और उन पर धूम के कणों की शोभा है और भी कर्पूर, कुङ्कुम, आदित्यपुष्प (अर्क-मन्दार पुष्प) आदि का पर्याप्त है।

तत्रोत्सव वर्णनं —

सधूपामोदबहुला कुङ्कुमद्रवसिञ्चिता।
तत्र जाता महापूजाः देवेशस्य जगत्प्रभोः॥ 13॥
प्रवेशनिर्गमोपेतं नरनारीसमाकुलम्।
महामुरजशब्दैश्च गीतैश्च विविधैस्तथा॥ 14॥

वहाँ धूप की सुगन्ध के साथ आनन्द-प्रमोद हो रहा है। कुङ्कुम के द्रव से वह मोद समारोह सिञ्चित-सा हो रहा है क्योंकि वहाँ अभी जगत्प्रभो देवेश की महापूजा चल रही है। इस जैसे समारोह में नर-नारियों की भीड़ प्रवेश कर रही है और बाहर भी निकल रही है। वहाँ महामुरज (बृहत्मृदङ्ग) के वाद्ययन्त्रों की धुन के साथ ही विविध प्रकार के गीत भी गाए जा रहे हैं।

मनोहरं सद्म दिव्यं देवानामपि दुर्लभम्।
तत्र हास्यविदग्धाश्च क्रीडन्ति रुद्रकन्यकाः॥ 15॥

ऐसे मनोहर सद्म-भवन दिव्य देवताओं को भी प्राप्त होने में दुर्लभ है। ऐसे ही परिवेश में रुद्र कन्याएँ भी हँसी में बेसुध हुई-सी क्रीड़ा कर रही हैं।

देवकन्याश्च **विविधा** ऋषिनारीसमन्विताः।
सहिता नृत्यमानाश्च मङ्गलैः कौतुकैस्तथा॥ 16॥
त्रिसङ्गीतश्च **विविधैः** प्रेक्षणीयैर्गणेश्वरैः।
गणाश्च किलकिलायन्ते प्रवल्गन्ति **मुहुर्मुहुः**॥ 17॥

देव कन्याएँ भी यहाँ ऋषि नारियों के साथ इस समारोह में मिल-जुल कर नृत्य कर रही हैं। मङ्गल गीताचार हो रहा है और विचित्र-विचित्र कौतुक कर रही हैं। यहाँ तीनों प्रकार के सङ्गीत[1] के साथ-साथ विविध प्रकार से गणेश्वर भी देखने योग्य है जहाँ उनके गण तो बारम्बार बौराये-से किलकिला रहे हैं।

गृह्णन्ति तत्र वै दीक्षां सुरासुरनरोरगाः।
यक्षगन्धर्वदेवाश्च **तथा** विद्याधरोत्तमाः॥ 18॥
इदं च दीक्षितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
दण्डीदारुवने **तत्र ज्ञानध्यानैश्च किं पुनः**॥ 19॥
तथैव च महाजाप्यैर्नियमैश्चाप्यनेकशः।
[2]योगीवर्ध्यानं आराधितं **परमेश्वरं प्रभो**॥ 20॥

इस समारोह में सुर-असुर, नर और नाग, सभी दीक्षा ले रहे हैं। उनके साथ यक्ष, गन्धर्व, देव तथा विद्याधरों में जो उत्तम हैं, वे भी दीक्षा ले रहे हैं। इस तरह यह यज्ञ तो समस्त स्थावर और जङ्गमों को भी दीक्षित बनाकर दण्डी-संन्यासी बना रहा है जो इस दारुवन में पुनः ज्ञान ध्यान में लगने को उतावले है और महाजप से, नियम से, और अनेक प्रकार से इसमें लगे हैं। कई योगी ध्यान में लगे होकर परमेश्वर प्रभु को आराधित कर रहे हैं।

शिवदर्शन माहात्म्यमाह —

यदि यागेश्वरो दृष्टो दण्डीदारुवने **शिवः**।
धर्मार्थकाममोक्षान् **स** सम्प्राप्नोति यथेप्सितान्॥ 21॥

यदि इस दण्डी दारुवन में यागेश्वर शिव के दर्शन हो जाए, तो ऐसा व्यक्ति अपने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष— इन चारों पदार्थों को पा लेता है। उसकी सभी इच्छित कामनाओं की भी पूर्ति हो जाती है।

कृतघ्नश्चैव गोघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।

---

1. ब्रह्मपुराण के 227वें अध्याय में विष्णुपूजा के प्रसङ्ग में त्रिविध सङ्गीत के अन्तर्गत गान, वाद्य एवं नृत्य का उल्लेख है।
2. 'योगीवर्ध्यानं.' प्रकाशित पाठे नोपलभ्यते।

दुष्टकर्मा दुराचारी मातृहा पितृहा तथा ॥ 22 ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दृष्ट्वा यागेश्वरं शिवम्।
संसारभयभीतानां पापक्षयकरः शिवः ॥ 23 ॥

ऐसा व्यक्ति चाहे कृतघ्न है, गोघाती हो, ब्राह्मण का घातक, गुरुतल्पग (गुरुपत्नीगामी) हो, दुष्टकर्मा हो, दुराचारी हो, मातृघाती और पितृघाती ही क्यों न हो, वह तो यागेश्वर शिव के दर्शन करते ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है क्योंकि संसार में जितने भी भयभीत लोग हैं, उनके पापों का क्षयकर्ता शिव ही हैं।

कल्पकोटिसहस्त्रैश्च यत्पापं समुपार्जितम्।
दृष्ट्वा यागेश्वरं देवं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ 24 ॥

हजारों करोड़ कल्पों तक भी किसी ने पाप क्यों न कमाये हों, वह तो यागेश्वर देव शिव का दर्शन करते ही, उस दर्शन के प्रभाव से उसी समय मुक्त हो जाता है।

पुंसां मृतानां चाकालेऽसंस्कृतानां जलाग्नितः।
तत्र भूमावदग्धानां मोक्षः स्यात् पञ्चभूततः ॥ 25 ॥

इसी तरह जो मनुष्य अकाल मृत्यु पाया हुआ हो अथवा जल और अग्नि से मरने के कारण जिसका संस्कार नहीं हुआ हो अथवा भूमिदग्ध हुआ हो, उसका भी पञ्चभूतों से मोक्ष हो जाता है।

दीक्षिताः सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णिवेन्द्रकादयः।
त्रयस्त्रिंशत्कोटयश्च 33 देवताश्चैव दीक्षिताः ॥ 26 ॥
शुकाद्याश्चासुराः सर्वे दीक्षिताः परमेश्वरैः।
वासुक्याद्याः पन्नगाश्च दीक्षितास्तलवासिनः ॥ 27 ॥

ब्रह्मा, विष्णु इन्द्रादिक समस्त तैंतीस कोटि देवता शिव के दीक्षित थे। शुक्राचार्य से लेकर समस्त असुरगण भी परमेश्वर शिव से दीक्षित थे। इसी प्रकार वासुकादि समस्त तलवासी नाग भी दीक्षित थे।

यक्षाः सर्वे कुबेराद्या गन्धर्वास्तुम्बरादयः।
विद्याधरा मन्मथाद्या देवा वै वासवादिकाः ॥ 28 ॥
क्षत्रियाः सूर्यवंशाद्याः सोमवंशप्रसूतयः।
समस्ताश्चैव देवयस्तु हरसिद्ध्यादिकास्तथा ॥ 29 ॥

इसी तरह सभी यक्ष, कुबेर, गन्धर्व, तुम्बरगण, विद्याधर, मन्मथगण और वासवादिक देवगण, सूर्यवंश से जन्म लेने वाले और चन्द्रवंश में जन्मे सभी क्षत्रिय भी दीक्षित थे। समस्त देवता और हरिसिद्धि आदि माताएँ भी दीक्षित थीं।

पिशाचाश्च ततः प्रेता निशायां ये चरन्ति च।
क्षमादिकं समस्तं च जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ 30 ॥
दशपञ्चोत्सवेष्वेवं 15 स्तोत्रैर्मन्त्रैस्तथार्चनैः।
प्रमथाद्याः पूजयन्ति ब्रह्मविष्ण्वादयस्तथा ॥ 31 ॥

इसी भाँति पिशाचगण, प्रेतगण, निशाचरगण, पृथ्व्यादि और समस्त स्थावर, जङ्गम जगत दीक्षित थे। पन्द्रह उत्सवों से, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा-अर्चना से प्रमथादि समस्त देवता और ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी शिव की पूजा करते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
त्रैलोक्यदीक्षाधिकारो नाम त्र्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 103 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में त्रैलोक्य दीक्षा अधिकार नामक एक सौ तीनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 103 ॥

नागरप्रासादलक्षणं चतुरुत्तर शततमं सूत्रम् ॥ 104 ॥

अधुना वैराज्यपुष्पककैलासमणिकत्रिविष्टपेति पञ्चनागरप्रसादभेदास्तेषामुत्पत्ति-र्लक्षणं च। विश्वकर्मोवाच —

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा कुर्वन्त्याद्यं महोत्सवम्।
नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा स्यात् पञ्चमी तथा ॥ 1 ॥

(इस सूत्र में नागरादि प्रासादों के लक्षणों का वर्णन है। इसमें तिथ्यानुसार प्रासादों का योग किया गया है। यह निश्चय ही पञ्चतिथियों के अनुसार प्रासादों का वर्गीकरण है, यह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते प्रासादों के आकार, मानादि का द्योतक भी है) विश्वकर्मा बोले कि (हिमवान महागिरि के देवदारुवन में) ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने आरम्भिक महोत्सव किया। इसमें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा तिथियाँ थीं। इनमें उत्सव पञ्चमी तिथि तक की अवधि पर्यन्त रहा।[1]

कृता महोत्सवाश्चैते ब्रह्माद्यैश्च सुरैरपि।
अभिधानुक्रमं तेषां शृणु पूजां समाहितः ॥ 2 ॥

---

1. कृष्ण एवं शुक्ल दोनों ही पक्षों में पन्द्रह तिथियों में, प्रतिपंत्, षष्ठ व एकादशी (1, 6, 11) इन तिथियों की संज्ञा नन्दा होती है। इसी प्रकार द्वितीया, सप्तमी व द्वादशी (2, 7, 12) की संज्ञा भद्रा, तृतीया, अष्टमी व त्रयोदशी (3, 8, 13) की संज्ञा जया, चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी (4, 9, 14) का नाम रिक्ता एवं पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा या अमावस्या (5, 10, 15 अथवा 5, 10, 30) की संज्ञा पूर्णा होती है। प्रथम कोटि के शिवप्रिय नागर प्रासाद प्रतिपदा से पञ्चमी तक की उद्भावना लिए माने जाते हैं।

उक्त महोत्सव ब्रह्मादि सभी सुरों द्वारा किए गए, जिनके नाम क्रम से सुनो और एतद् सम्बन्धी पूजाविधि को भी समाहित चित से सुनो!

अथ प्रासादनामानि —

वैराज्यं पुष्पकं चैव कैलासं मणिपुष्पकम्।
त्रिविष्टपं पञ्चमं च नन्दाद्याः क्रमयोगतः ॥ 3 ॥

1. वैराज्य, 2. पुष्पक, 3. कैलास, 3. मणिपुष्पक, 5. त्रिविष्टप— ये पाँच नाम क्रमशः नन्दादि तिथि में पूजने जाने वाले प्रासादों के है।

तस्याकारमाह —

वैराज्यं चतुरश्रं स्यादायतं पुष्पकं तथा।
वृत्तं वृत्तायतं चैव कैलासं मणिपुष्पकम् ॥ 4 ॥
त्रिविष्टपं तथाष्टाश्रं पञ्चपूजा महोत्सवाः।

(अब इनके आकार बताए जा रहे हैं) वैराज्य प्रासाद का आकार चतुरश्र या चौकोर होता है। पुष्पक प्रासाद का आकार आयत जैसी लम्बाई-चौड़ाई युक्त, कैलास प्रासाद का आकार वृत्त या गोल होता है। मणिपुष्पक प्रासाद का आकार वृत्तायत यानी लम्बगोल होता है। त्रिविष्टप प्रासाद का आकार आठ भुजाओं वाला अष्टाश्र या अष्टभुज का होता है। ये ही पञ्चपूजा महोत्सव के कहे गए हैं।

हेमरत्नमयैः **स्तम्भैः** शुष्कपादपच्छाद्यकैः ॥ 5 ॥
मुक्तालङ्कारखचितैर्वितानैर्दिव्यभूषणैः।
स्फटिकैर्विविधैर्लक्षै रत्नैश्च मणिवेदिभिः ॥ 6 ॥

इनके प्रासादों के स्तम्भ सोने व रत्नों से जटित और सूखे पादपपत्रों के छाद्यों से, मोतियों के अलङ्करणों से जड़े हुए वितानों के दिव्य भूषणों से सजे हुए थे। इनमें विविध प्रकार के स्फटिक पत्थरों से बनी मणिवेदियाँ, लाखों रत्नों से सजी हुई थी।

सिंहकर्णैः सुसंयुक्तैनिर्यूहाच्छाद्यकर्णिकैः।
शिखरैर्हेमरत्नाढ्यैः सिंहायकलशान्वितैः ॥ 7 ॥

उनके सिंहकर्ण से युक्त निर्यूहों-नरजुओं पर आश्रित छाद्यों के कर्णि और प्रासादों के शिखर सोने और रत्नों की भरमार से और सिंह तक के कलशों से युक्त थे।

गणाश्चादित्यसङ्काशं[1] मणिरत्नविभूषितम्।
चतुर्द्वारसुशोभाढ्यमिलिकावलणैर्युतम् ॥ 8 ॥

---

1. 'गणा ?श्चादित्यसङ्काशं' इति प्रकाशित पाठः।

उन प्रासादों के गण-रक्षक सेवक अपने तेज को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए, मणिरत्नों को धारण किए हुए विभूषित हो रहे थे। इस तरह से चारों ही द्वारों की अनुपम शोभा इलिका और बलणों से युक्त प्रतीति देने वाली थी।

जङ्घायां रूपसङ्घाट्यं दिक्पालैश्च समन्वितम्।
त्रिसन्धिभद्रकाकारं पताकाध्वजशोभितम्॥ 9॥

महोत्सव के उन प्रासादों की जङ्घाएँ रूप-सङ्घाटों अर्थात् मूर्तियों के रूपकों से सजी धजी थीं जिनमें दिक्पाल मूर्तियाँ भी बनी हुई थीं। उन प्रासादों के भद्र-दिवालें तीन प्रकार की संधियों से युक्त थीं जो त्रिसन्धि भद्रकाकार नाम से जानी जाती है और उन पर पताकाएँ और ध्वजों की शोभा भी बनी हुई थी।

तस्यवर्णां —

वैराज्यं श्वेतवर्णं च हेमरत्नविभूषितम्।
पुष्पकं रक्तवर्णं[1] च रक्तालङ्कारशोभितम्॥ 10॥
कैलासं हेमवर्णं च सर्वरत्नविभूषितम्।
हरितं मणिपुष्पं च सर्वरत्नं त्रिविष्टपम्॥ 11॥

अब इनके वर्णों के बारे में कहते हैं— 1. वैराज्य प्रासाद श्वेत वर्ण का होता है, और सोने व रत्नों से विभूषित भी होता है, 2. पुष्पक प्रासाद लाल वर्ण का होता है और लाल ही अलङ्करणों से शोभित होता है, 3. कैलास सोने के वर्ण का प्रासाद होता है जो सब प्रकार के रत्नों से विभूषित होता है, 4. मणिपुष्प प्रासाद हरित वर्ण का होता है और 5. त्रिविष्टप प्रासाद भी सभी रत्नों से विभूषित होता है।

पीठोपीठतङ्घाश्च मेखलाकूटछाद्यकम्।
शिखरं सिंहकर्णाढ्यं भूमिका रत्नभूषिता॥ 12॥
जालव्यालकपोतालीसिंहकर्णसुच्छाद्यकम्।
स्फटिकैर्हेमरत्नाढ्यैः सर्वलक्षणसंयुतैः॥ 13॥

इन प्रासादों में पीठ, उपपीठ, जङ्घा, मेखला, कूट, छाद्यक, शिखर, सिंहकर्णों की भरमार युक्त मंजिलें रत्नों से सजी-संवरी थी। वे प्रासाद जालियाँ, व्यालों की मूर्तियाँ एवं कपोताली-केवाल और सिंहकर्णों के अलङ्करणों से युक्त सुन्दर छाद्य-छत युक्त थे जो स्फटिक-पाषाणों और सोने व रत्नों से सजे सर्वलक्षण युक्त थे।

एष पञ्चोत्सवे योगो ध्यात्वा यागेश्वरं शिवम्।
भक्तिपूजास्तवस्तोत्रैर्गीतैश्च विविधैस्तथा॥ 14॥

1. 'रत्नवर्णं' इति प्रकाशित पाठः।

मङ्गलैर्दिव्यवादित्रैः प्रेक्षणीयैरनेकधा।
लास्यताण्डवनृत्यैश्च नाट्येशं च महोपमैः ॥ 15 ॥

इन सभी पञ्चोत्सवों[1] के योगों में योगेश्वर शिव का ध्यान करते हुए, पूजित-पूजक पूजा-स्तवन, स्तोत्र, गीत आदि विविध प्रकार से मङ्गलगान करते हुए और अनेक प्रकार के दर्शनीय, दिव्य वाद्य यन्त्रों के साथ लास्य नृत्य और ताण्डव नृत्य करके, नाट्येश-शिव की महान उपमा, कीर्ति हुई।

नाट्यरसोत्तमानन्दैः **कौतुकैश्च** त्वनेकशः।
इत्यादिबहुभावैश्च अङ्गैरङ्गैर्महारसैः ॥ 16 ॥
नुतस्तुष्टो महादेवो भक्तिपूजास्तवादिकैः।
ब्रह्माद्यांश्च सुरान् सर्वान् भक्तियुक्तानुवाच ह ॥ 17 ॥
वरं ब्रूहि च दास्यामि **यच्च ते मनसि स्थितम्।**
ददामि तुभ्यं भो ब्रह्मन् सुरार्थं वक्तुमर्हसि ॥ 18 ॥

इससे नाट्यरस का सर्वोतम आनन्द प्राप्त करते हुए अनेक प्रकार के कौतुक चमत्कारी क्रीड़ाएँ इत्यादि से बहुत प्रकार के भावों और अङ्गों की अङ्ग-भङ्गिमाओं से महारस अत्यन्त आनन्द की वृद्धि की और महादेव को सन्तुष्ट किया। अपने भक्ति से प्रसन्न हो कर सभी को महादेव ने प्रेमभक्ति से कहा है— भक्तों कहो जिससे मैं तुम्हें वरदान देता हूँ, जो भी आप सबके मन में स्थित हो उसे कहो, हे ब्रह्मन्! मैं तुमको तुम्हारी इष्टकामना देता हूँ। अस्तु, देवताओं के लिए जो योग्य है, उसको कहो!

ब्रह्मोवाच—

यदि तुष्टोसि देवेश मुक्तिदं त्रिदशाधिप।
यस्मिंश्च तव पूजा स्यात् प्रकुर्या तं शिवालयम् ॥ 19 ॥
भवत्प्रसादतुष्टी **च पूज्याः प्रासादसञ्ज्ञकाः।**
वैराज्यादिसमुत्पन्नाः **सर्वे प्रासादसञ्ज्ञकाः** ॥ 20 ॥

ब्रह्मा ने कहा कि हे देवेश! यदि आप हमारी भक्ति भावना से पूर्णतः, तुष्ट हुए हैं, प्रसन्न हुए हैं तो है त्रिदशाधिप! देवदेव हमें मुक्ति प्रदान करने वाले देव! हमें

---

1. पञ्चोत्सव की परम्परा मेवाड़ के पञ्चमुख एकलिङ्ग मन्दिर में बहुत पुरानी है। यहाँ शिव-पूजा में पाँच-पाँच के अङ्कों का प्रयोग वैशिष्ट्य लिए है। यथा—इत्युदवास्य च मूलेन हरिण्या च मुदया। पञ्चपञ्चक्रमेणैव स्नापयित्वा मृदम्भसा॥ (एकलिङ्गमाहात्म्य 24, 29) सपुष्प सकुशं पाणिं न्यस्य देवस्य मस्तके। पञ्चवारं जपेन्मूलं चाष्टोत्तर शतावधि॥ (तत्रैव 24, 31) यहाँ प्रतिपक्ष से पूर्णिमा तक के देवताओं ने भी शिवार्चना की। (तत्रैव अ.३२)

ऐसे शिवालय के निर्माण करने के उपाय बताएँ जिनमें हम आपकी पूजा कर सकें जिससे आपके कृपा प्रसाद की तुष्टि हो, ऐसे पूज्य प्रासादों के नाम बताएँ।

इषुभेदात्मकं चैव सर्व प्रासादनायकम्।
सोमेश्वर उवाचाथ तथाऽस्तु ब्रह्मणोदितम्॥ 21॥

सभी प्रासादों के ये नायक प्रासाद ईषु भेदा-पाँच प्रकार के भेद युक्त होंगे, ऐसा ब्रह्मा के मांगने पर सोमेश्वर शिव ने 'तथास्तु' कहकर वरदान दिया।

ब्रह्मोवाच भवाल्लब्धाः प्रासादा विविधा मया।
वैराज्यः पुष्पकैलासौ मणिकश्च त्रिविष्टपः॥ 22॥

तब ब्रह्मा ने कहा हे प्रभु आपके द्वारा विविध प्रकार के प्रासाद मुझे उपलब्ध हुए वे हैं— 1. वैराज्य, 2. पुष्पक, 3. कैलास, 4. मणिक तथा 5. त्रिविष्टप।

वैराज्यसम्भव-चतुरश्रायतवृत्तवृत्तायताष्टाश्र नागरप्रासादसङ्ख्यावर्णनम् —

इषुभेदसमुत्पन्नाः प्रासादाः सर्वकामदाः।
अष्टाशीतिरन्यभेदा अष्टादशशतानि च॥ 23॥
शतानि पञ्च प्रासादा अष्टाशीत्युत्तराणि वै।
सर्वेषां मूलयोनिश्च वैराज्यो नाम नामतः॥ 24॥

ये सब पाँच प्रकार के प्रासाद उत्पन्न हुए हैं जो सब कामनाओं पूर्ति करने वाले हैं। इनके 1888 भेद हैं। इनमें 588 प्रासाद की मूल योनि वैराज्य नामक है। इससे ये वैराज्य प्रासाद कहे जाते हैं।

प्रोक्तं चायतछन्देषु पुष्पकाणां शतत्रयम्।
शतानि पञ्च भेदाश्च वृत्तकैलाससम्भवाः॥ 25॥
वृत्तायते च मणिके भेदाः सार्धशतानि च।
सार्धानि त्रिशतान्येवमष्टाश्रे च त्रिविष्टपे॥ 26॥

अब आयत लम्बाई चौड़ाई वाले छन्द में बने पुष्पक जाति के प्रासादों के बारे में कहता हूँ जिनके 300 भेद हैं। वृत्ताकार कैलास से उत्पन्न होने वाले 500 भेद हैं। वृत्तायत या लम्बगोल आकृति वाले मणिक प्रासाद के 150 भेद हैं। त्रिविष्टप प्रासाद के भी अष्टाश्र आकार वाले 350 भेद होते हैं।

अष्टाशीत्युत्तराण्येव शतान्यष्टादशव च।
ब्रह्मसृष्टास्तथा चैते आद्यवैराज्सम्भवाः॥ 27॥

इस तरह 1888 प्रासाद ब्रह्मा द्वारा सृष्ट हुए। ये सब वैराज्य से उत्पन्न हुए हैं

(इस प्रकार वैराज्य 588 + पुष्पक 300 + कैलास 500 + मणिक 150 + त्रिविष्टप 350 जो कुल मिलाकर 1888 हुए।)[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवचार्योक्तापराजितपृच्छायां नागरप्रासादलक्षणधिकारो नाम चतुरुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 104॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में नागर प्रासाद लक्षण अधिकार नामक एक सौ चारवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 104॥

चतुर्दशप्रासादोत्पत्तिमहोत्सवो नाम पञ्चोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 105॥

इत्यमनन्तर स्वस्तिकसर्वतोभद्रवर्धमानसूत्रपद्ममहापद्मेतिद्राविडप्रासादभेदास्तेषां उत्पत्तिलक्षणसङ्ख्यावर्णनं च। विश्वकर्मोवाच —

पुनस्तु दानवेन्द्रेण कृताः पूजा महोत्सवाः।
षष्ठ्याश्च दशम्यन्ताः पञ्चपूजा महत्तमाः॥ 1॥

(इस सूत्र में द्राविड़ प्रासादोत्पत्ति और उनके नामानुसार संख्यादि पर विचार किया जा रहा है। मन्दिर की द्राविड़ शैली के विकास और ग्रन्थ के रचनाकाल तक उनकी संख्यादि की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। इस सूत्र से यह सङ्केत भी मिलता है कि द्राविड़ प्रासादों की उत्पत्ति दानवेन्द्र, सम्भवतः मय[2] से हुई है) विश्वकर्मा ने आगे कहा कि पूर्वोक्त महोत्सव के अनन्तर पुनः दानवेन्द्र ने एक पूजा महोत्सव को किया जो कि षष्ठि तिथि से दशमी तक महत्तम पञ्चपूजा के रूप में स्वीकृत है।

---

1. नागर कोटि प्रासाद चौरस तलदर्शन वाले, ऊपर वक्रीय रेखा वाले, अनेकानेक अण्डकों, शिखर, आमलसारक और कलश, पीठ, जङ्घा, मेखला, कूटच्छाद्य रूपयुक्त, मण्डप, वितान, कला, संवरणा, अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाले होते हैं। ये प्रासाद पश्चिम भारत, उत्तर भारत, पूर्वी भारत के कतिपय क्षेत्रों, हिमालय प्रदेश में बने मिलते हैं।
2. मयमतं में आया है कि अष्टकोणाकार और षट्कोणाकार प्रासाद जो कि लम्बवत्, आयताकार होते हैं, 'द्राविड' कोटि के प्रसाद होते हैं—अष्टाश्रं च षडश्रं च तत्तदायाममेव च। सौधं द्राविडमित्युक्तं....(मय. 19, 36) ये पीठ के ऊपर कर्णरेखाओं वाले और ऊर्ध्वाध्वर भूमिकाओं से युक्त, वेदी, घण्टा आदि से युक्त बनते हैं।

   शिल्पियों की ऐसी मान्यता है कि शिव की पूजा के दौरान पुष्पादि से शिवलिङ्ग पर जो सजावट की गई, वह जितने प्रकार की थी, उतने ही आकार-प्रकार के देवायतनों का पल्लवन हुआ।

   मय का यह भी कथन है कि नागर, द्राविड और वेसर संज्ञक प्रासादों को क्रमशः सत्व, रज और तम (गुणाश्रित) जानना चाहिए। इन्हीं के (प्रतीकात्मक रूप) महीसुर (ब्राह्मण), क्षत्रिय और वैश्य होते हैं जिनके अधिदेवता क्रमशः हरि (विष्णु), विधाता (ब्रह्मा) और हर (शिव) कहे गए हैं— स्यान्नागरं द्राविडवेसरं च क्रमेण वै सत्त्वरजस्तमांसि। महीसुरोर्वीपतिवैश्यकास्ते हरिर्विधाता हर आधिदैवाः॥ (तत्रैव 21, 99; प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चय, पूर्वार्द्ध)

स्वस्तिका सर्वतोभद्रा **वर्धमाना** तृतीयका।
सूत्र पद्मा महापद्मा द्राविडैः कर्मचर्चिताः ॥ 2 ॥

इसके अनुसार 1. स्वस्तिक, 2. सर्वतोभद्र, 3. वर्धमान, 4. सूत्रपद्म और 5. महापद्म— ये द्राविड़ शैली के कर्म में चर्चित हुए हैं।

द्राविडाख्ये **च प्रासादे इषुभेदाः$_5$ समीरिताः।**
एकद्वित्रिचतुः**पञ्च** शतान्येकैकशः **क्रमात्** ॥ 3 ॥

इन द्राविड़ संज्ञक प्रासादों के भी पाँच भेद हैं और इन एक-एक के भी क्रमशः 100, 200, 300, 400 और 500 भेद होते हैं।

एवं द्राविडनमानः **प्रासादा विविधा मताः।**
सङ्ख्या सार्द्धसहस्त्रं$_{1500}$ **तु पूर्वदेवैः कृता पुरा** ॥ 4 ॥

इस प्रकार द्राविड़ नाम वाले प्रासाद भी विविध प्रकार के होते हैं जिन सबकी संख्या 1500 होती है, ऐसा पूर्व से ही देवकृत है।

शान्तिदाः सर्वकालेषु **गोब्राह्मणहितावहाः।**
वल्लभाः सर्वदेवानां शिवस्यापि **विशेषतः** ॥ 5 ॥

इति द्राविडोत्पत्तिः।

ये सभी प्रासाद सबको शान्ति देने वाले और सर्वकालों में गो-ब्राह्मणों के हितों को पूरा करने वाले कहे गए हैं। ये सभी देवताओं के प्रिय और शिव को विशेष प्रिय होते हैं।

अथ रुचकभवपद्ममलयवज्रकेति लतिनप्रासादभेदास्तेषामुत्पत्तिः सङ्ख्याश्च —

पुनः कृताश्च गन्धर्वैः पूजाः पञ्चमहोत्सवे।
महोत्सवा देवसदृशोपमा [1]**क्षितिपति समुद्भूत** ॥ 6 ॥

(लतिन प्रासादों की उत्पति गन्धर्वों की देन कही गई है) एक बार गन्धर्वों ने पञ्चपूजा महोत्सव किया। ये महोत्सव देवताओं के समान ही उपमेय रहा और राजा महाराजाओं द्वारा उद्भूत है।

रुचकश्च भवः पद्मो मलयो वज्रकस्तथा।
वैराज्योपमकायाश्च हीषुभेदाः$_5$ प्रकीर्तिताः ॥ 7 ॥

इन पाँचों के नामों हैं— 1. रुचक, 2. भव, 3. पद्म, 4. मलय और 5. वज्रक। इनकी रचना और आकृति वैराज्य प्रासादों के समान ही पाँच भेदों में कही गई है।

---

1. 'क्षतपाते तद्भूत ? ॥' इति प्रकाशित पाठः।

रुचकाद्याः षोडश$_{16}$ वै चतुरश्राः प्रकीर्तिताः।
भवश्च विभवश्चैव चतुरश्रायतौ तथा॥ 8॥

रुचकादि सोलह प्रासाद चौकोर या चतुरस्र होते हैं। भवन और विभव प्रासाद चतुरस्र या लम्बाई-चौड़ाई युक्त आयताकार होते हैं।

पद्मो मालाधरश्चैतो वृत्तावेव तु कारयेत्।
वृत्तायतौ तु कर्तव्यौ मलयो मकरध्वजः॥ 9॥

पद्म प्रासाद को मालाधर के जैसा, वृत्त या गोलाकार बनाएँ परन्तु मलय प्रासाद को लम्बगोल या वृत्तायत आकार में बनाएँ जो कि मकरध्वज कहलाता है।

वज्रकः स्वस्तिकः शङ्कुरष्टाश्राः परिकीर्तिताः।
इषु$_5$ भेदसमुत्पन्नाः प्रासादा लतिनास्तथा॥ 10॥

वज्रक प्रासाद स्वस्तिक, शङ्कु आदि आठ भुजा वाले अष्टाश्र आकार के कहे गए हैं। इस प्रकार इन पाँच भेदों में उत्पन्न लतिन प्रासादों के बारे में कहा गया है।

एकद्वाराश्च कर्तव्याः पुरशान्तिकराः सदा।
एते च जातिशुद्धाश्च लतिनाः पञ्चविंशतिः$_{25}$॥ 11॥

इति लतिनोत्पत्तिः।

इन प्रासादों में सदा एक द्वार ही करना चाहिए, यह पुरवासियों को सदा ही शान्ति प्रदान करता है। इतने ये लतिन प्रासाद जाति शुद्धि युक्त पच्चीस प्रकार के हैं।[1]

वराटपुष्पकश्रीपुञ्जपर्वतोभद्रसिंहेति वराटप्रासादभेदास्तेषामुत्पत्तिसङ्ख्याश्च —

वसुभिश्च कृताः पूजास्तथा पञ्च महोत्सवाः।
तेषां नामानि युक्तिं च कथयामि यथाक्रमम्॥ 12॥

इसके उपरान्त, वसुओं ने भी पञ्चपूजा महोत्सव को किया। इस क्रम में उद्भूत प्रासादों के नाम व उनके बनाने की युक्ति यथाक्रम से कहता हूँ।

वराटः पुष्पकश्चैव श्रीपुञ्जश्च तृतीयकः।
सर्वतोभद्रसिंहौ च वराटाः पञ्च कीर्तिताः॥ 13॥

---

1. इस शैली के मन्दिर भारत में हिमालय प्रदेश से दक्षिण में ऐहोल तक देखने में आते हैं। इस शैली में पीठ से ऊपर आमलक तक वक्ररेखा में हस्तगुल से उपाङ्ग किए जाते हैं। शिखर पर छज्जा नहीं होता है परन्तु एकाङ्किक लतिन शैली का विकास पञ्चाङ्किक, नवाङ्किक, त्रयोदशाङ्किक तक बनते रहे, प्रधानतः नवीं सदी तक ऐसा हुआ जबकि दसवीं और ग्यारहवीं सदी तक शिल्पियों ने शिखर की रचना में विकास किया और सैकड़ों-हजारों की संख्या में अण्डकों की योजना के साथ बड़ी संख्या में ऐसे प्रासादों की रचना की।

इनके नाम है— 1. वराट, 2. पुष्पक, 3. श्रीपुञ्ज, 4. सर्वतोभद्र और 5. सिंह। इस तरह वराट जाति के पाँच प्रासाद की कीर्ति है।

रत्नयोन्युद्भवाः सर्वे वास्तुवेदे समीरिताः।
द्विद्वादशशतान्येवं$_{2400}$ प्रासादास्तु वराटकाः॥ 15॥

इति वराटोत्पत्तिः।

ये सभी प्रासाद रत्नयोनि से उत्पन्न हुए हैं और वास्तुवेद के अनुरूप बने हैं। ऐसे वराटक प्रासाद 2400 की संख्या में हैं।[1]

विमानगरुडध्वजविजयगन्धमादनेति विमानभेदास्तेषामुत्पत्तिलक्षणसङ्ख्याश्च —

यक्षैर्महोत्सवं कृत्वा विमानानां समुद्भवाः।
विमानगरुडध्वजविजया गन्धमादनः॥ 15॥

इसी प्रकार यक्षों द्वारा किए गए महोत्सव में जो विमान प्रासाद प्रकट हुए उनके नाम हैं— 1. विमान, 2. गरुड़, 3. ध्वज, 4. विजय और 5. गन्धमादन।

इमे विमानाः पञ्चैव$_{5}$ कर्तव्याः शान्तिमिच्छता।
पुष्पमालाधराकारा लताशृङ्गोत्तमास्तथा॥ 16॥

इन पाँच प्रकार के विमान (मन्दिर) के निर्माण से शान्ति की कामना की पूर्ति होती है। ये सभी पुष्पमालाधर आकार में अर्थात् वृताकार में बनते हैं जिनमें लताएँ शृङ्ग-शिखर आदि भी बनाएँ जाते हैं।

त्रिचतुःपञ्च षट् सप्त शतान्येकैकतः पृथक्।
पञ्चविंशतिः शतानि$_{2500}$ तत्सङ्ख्येत्थमुदाहृता॥ 17॥

इति विमानोत्पत्तिः।

इन प्रासादों के एक-एक के क्रमशः 300, 400, 500, 600, 700 अलग-अलग भेद हैं जो कुल मिलकर 2500 होते हैं।[2]

केसरिनन्दनमन्दरश्रीतर्विन्द्रनीलरत्नकूटगरुडेति सान्धारप्रासादभेदास्तेषामुत्पत्ति-सङ्ख्यावर्णनं च —

उरगेन्द्रैः कृता पूजा तदर्थे तु प्रदक्षिणा।
सान्धारास्तत्र सम्भूताः प्रासादा भ्रमसंयुताः॥ 18॥

---

1. जो भूमिज प्रासाद जङ्घा रहित हो, शृङ्ग स्थान पर शृङ्गवाले, अनेकानेक शृङ्गों से युक्त, कर्ण, प्रतिरथ, भद्र, प्रतिभद्र, मन्दार, पुष्प और घण्टायुक्त होते हैं, वे वराट शैली के प्रासाद होते हैं। अन्य शास्त्रीय गणना से इनके 1202 भेद कहे गए हैं।
2. चतुरस्र तलदर्शन वाले रथ, उपरथ और भद्र वाले भूमिज प्रासाद विमान शैल्यान्तर्गत परिगणित हैं।

इसी प्रकार नागराजों ने भी पूजा की और उसके लिए उन्होंने प्रदक्षिणा की। इससे सान्धार प्रासाद उत्पन्न हुए, जो भ्रम-परिक्रमा (प्रदक्षिणा मार्ग) युक्त बनते हैं।

केसरी नन्दनश्चैव मन्दरः श्रीतरुस्तथा।
इन्द्रनीलो रत्नकूटो गरुडश्चेति नामतः ॥ 19 ॥
द्वौ त्रयश्चैकः षट् त्रयः सप्त त्रितयमेव च।
पञ्चविंशतिराख्याताः$_{25}$ प्रासादाः पर्वतोपमाः ॥ 20 ॥

इन प्रासादों के सात प्रकार हैं—1. केसरी, 2. नन्दन, 3. मन्दर, 4. श्रीतरु, 5. इन्द्रनील, 6. रत्नकूट और 7. गरुड़। ये कुल सात भेद हैं। इनके क्रमशः 2, 3, 1, 6, 3, 7 और 3 रूप होते हैं जो कुल मिलकर 25 होते हैं। ये पर्वत के समान समुन्नत प्रासाद होते हैं।

शान्तिदाः सर्वकालेषु पुरे राज्ञां जनस्य च।
देशशारिकथा नित्यं नित्यं कल्याणकारकाः ॥ 21 ॥

ये प्रासाद सभी कालों में राजा और पुर के निवासियों को शान्ति प्रदान करते हैं। वहाँ होने वाली 'देशशारिकथा' से नित्य ही कल्याण बना रहता है।

तद्भेदैश्च समुत्पन्नाः शतार्धं पृथगेकतः।
द्वादशेव शतान्येवं पञ्चाशदधिकानि$_{1250}$ च ॥ 22 ॥

इति सान्धारोत्पत्तिः।

इन सभी प्रासादों के जो भेद उत्पन्न हुए हैं, वे पृथक-पृथक 50 होते हैं। इस तरह 25 प्रासादों के कुल 1250 भेद बनते हैं।[1]

अथ मिश्रकोत्पत्तिः —

विद्याधरैः पुनः पूजा कृता यागेश्वरस्य तु।
मिश्रकाश्च समुत्पन्ना अनेकाकाररूपिणः ॥ 23 ॥

यागेश्वर शिव की पुनः पूजा विद्याधरों ने की जिससे मिश्रक प्रासाद उत्पन्न हुए। उनके अनेक आकार और रूप हैं।

बहुवर्णैस्तथा पुष्पैः पूजां कृत्वा शिवस्य च।
मिश्रका बहुरूपाढ्या नैकरत्नैर्विभूषिताः ॥ 24 ॥

---

1. विविध अङ्गों से परिपूर्ण सान्धार मन्दिर गर्भगृह की परिक्रमा की सुविधा वाले होते हैं। ये मूलतः नागर शैली के प्रासाद हैं। यदि इनमें प्रदक्षिणा मार्ग न हो तो इनको निरन्धार कहा जाता है। सान्धार जाति के प्रासाद गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में बने हैं। मध्यप्रदेश के खजुराहो में भी इस प्रकार के देवालय बने हैं। सोमनाथ का प्रसिद्ध देवालय इसी कोटि का है।

विद्याधरों द्वारा शिव की पूजा बहुत तरह के रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों से की गई जिसमें मिश्रक प्रासाद भी बहुत तरह के रूपों से पूर्ण और अनेक रत्नों से विभूषित हुए।

एकवर्णैर्बहुवर्णैः पूजाः पुष्पैरनेकधा।

बहुपुण्यप्रदाः सर्वे शान्तिदाश्च पुरःपतेः ॥ 25 ॥

एक रङ्ग के अथवा बहुत रङ्गों के पुष्पों से विविध प्रकार से पूजा की गई जो बहुत ही पुण्य देने वाली और सब को अर्थात राजा-प्रजा को शान्ति देने वाली थी।

अष्टादशशतान्यङ्गमिश्रका$_{1800}$ द्विगुणास्ततः$_{3600}$।

भूपालैश्च महाराजैः कृताः पूजामहोत्सवाः ॥ 26 ॥

इति मिश्रकोत्पत्तिः।

इन प्रासादों के 1800 अङ्ग मिश्रक नाम के हैं और उनसे दुगने अर्थात 3600 है। इन प्रासादों में राजाओं, महाराजाओं ने पूजा-महोत्सव किए हैं।[1]

अथ भूमिजप्रासादानामुत्पत्तिः सङ्ख्यावर्णनं च —

प्रासादानां च पतयो भूमिजा भूमिदानतः।

निषधः कुमुदः स्वस्तिस्त्रयः पूज्या माहान्तकाः ॥ 27 ॥

प्रासादों के सिरमौर भूमिज प्रासाद हैं जो ऐश्वर्य को देने वाले है; 1. निषध, 2. कुमुद और 3. स्वस्तिक— ये तीन प्रकार भूमिज प्रासाद के होते हैं।

चतुरश्रा वृत्तसंस्था अष्टशालास्ततः परम्।

दिशः सप्त तथाष्टौ च भूमिजाश्च त्रिधोदिताः ॥ 28 ॥

तदङ्गतः षट् शतानि पञ्चविंशतिभिः$_{625}$ सह।

[2]नानालङ्काराभूषितै तदाराध्यं भुभूजाम् ॥ 29 ॥

इति भूमिजोत्पत्तिः।

ये प्रासाद 1. चतुरश्र, 2. वृत्ताकार और इसके श्रेष्ठ 3. अष्टाश्र या आठ पक्ष वाले होते हैं। भूमिज प्रासादों की ऊँचाई चार, सात या आठ मंजिलों-भूमियों तक होती है। अङ्गतः इनके भेद 625 रूपों वाले होते हैं। इनको नाना अलङ्करणों से विभूषित किया जाकर राजाओं द्वारा पूजा गया।[3]

---

1. मिश्रक नागर शैली के प्रासाद माने गए हैं जिनमें तिलक से युक्त निर्मिति होती है। अपराजितकार ने इनके 1800 भेद बताए हैं।
2. प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते।
3. भूमिज मन्दिरों की शैली का दर्शन मालवा, महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटक में होता है। इनमें मन्दिर की पीठ पर देवरूप वाला मण्डोवर बनाकर छज्जा रहित बरण्डिका से शिखर का प्रारम्भ होता है। इनमें

अथ विमाननागरप्रासादोत्पत्तिः —

यस्माद् वेदाङ्गसम्भूतिर्देवदेव**श्चतुर्थकः।**
अतिजेजः पुञ्जकाढ्यग्रहयुक्तो दिवाकरः॥ 30॥
कृता महोत्सवास्तेन **पूजाश्चैव माहान्तकाः।**
विमाननागराच्छन्दाः **प्रासादेषु** समीरिताः॥ 31॥

इति विमाननागरप्रासादोत्पत्तिः।

जिससे वेदाङ्ग उत्पन्न हुए और जो देवों में भी परमदेव चतुर्थ गिना गया है, जो अति तेजवान् प्रकाशपुञ्ज और अपने चतुर्दिक समस्त ग्रहों से युक्त दिवाकर-सूर्यदेव है, उन्होंने भी महोत्सव मनाया और महान् पूजा की। इससे विमान नागर-छन्द के प्रसाद बनने लगे।[1]

अथ विमानपुष्पकप्रासादोत्पत्तिः —

नक्षत्राधी**श्वरश्चैवं** नक्षत्रैर्बहुभिर्वृतः।
विधुस्तेजो**ऽमृतमयः** संसाराधारकारणम्॥ 32॥

नक्षत्राधीश्वर अपने समस्त नक्षत्रों से घिरे हुए रहते हैं। ऐसे विधु-चन्द्रमा का प्रकाश अमृतमय है, जो संसार के आधार का कारण है क्योंकि इसी से समस्त पेड़ पौधे वनस्पति आदि उत्पन्न होते हैं।

द्विजराजस्तेन **कृता पूजा यागेश्वरस्य च।**
विमानपुष्पकाख्याताः **प्रासादाः सर्वकामदाः॥ 33॥**

इति विमानपुष्पकप्रासादोत्पत्तिः।

अस्तु, चन्द्रमा द्विजराज ने भी यागेश्वर शिव की पूजा की। इससे विमान पुष्पक नामक प्रासाद उत्पन्न हुए जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं।[2]

तलदर्शन हस्ताङ्गुल होता है और उपाङ्ग नीचे से ऊपर आमलक तक वक्ररेखाओं को लम्बवत् किया जाता है। इसमें शिखर के उपाङ्ग को बालञ्जर कहा जाता है। शिखर के भद्र को लता-माला कहा जाता है। शिखर में भूमिका या माल की रचना होती है। इसमें स्तम्भ कुम्भी की भाँति ऊपर प्रहार बनाकर ऊपर शृङ्ग उत्तरोत्तर सात या नौ स्तर, भूमिक शिखर स्कन्ध तक चढ़ाया जाता है। सुन्दर आकृति वाली शुकनासिका को सूरसेन कहा जाता है। चतुरस्र तलदर्शन के ऊपर वर्तुलाकार शिखर लतिन जैसा होता है, जिसकी आकृति पृथक् होती है।

1. विमाननागर शैली केप प्रासादों में ऊर्ध्व भाग में लता और शृङ्गों का निरूपण मिलता है। विमान शैली का मिश्रण भी परिलक्षित होता है। ये प्रासाद तेजस्वी प्रतीत होते हैं।
2. ऐसे विमान नागर प्रासाद जिनमें उरुशृङ्ग के ऊपर पुष्पक तैयार होते हैं, वे विमानपुष्पक प्रासाद कहे जाते हैं।

वलभीप्रासादोत्पत्तिः —

गौर्याद्याभिश्च देवीभिः कृताः पूजा महोत्सवाः।
पुष्टप्राकारसङ्कीर्णा रत्नज्योतिर्महार्चिषः॥ 34॥
कृता वलभिकाकाराः प्रासादाः स्त्र्यभिधानकाः।
आयताश्चतुरश्राश्च वृत्ता वृत्तायतास्तथा॥ 35॥

इसी तरह से गौरी आदि अन्य देवियों ने भी पूजा महोत्सव किया। इससे पुष्ट परकोटों से युक्त, विविध रत्न ज्योतियों से, अर्चा-पूजा से वलभी के आकार के प्रासाद बनें जिनके रूपाभिधान अर्थात् आकृति 1. आयताकार, 2. चतुरश्र, 3. वृत्त और 4. वृत्तायत होती है।[1]

महापुण्योदयस्तेभ्यस्तेजः सौभाग्यवर्द्धनम्।
जन्मजन्मनि भूपालाः पुष्पबाणपरायणः॥ 36॥

इति वलभ्युत्पत्तिः।

ये सभी महान् पुण्य के उदय के कारण होते हैं और तेज व सौभाग्य को बढ़ाने वाले हैं। इनसे अनेक जन्मों तक भूपाल या राजागण पुष्पबाण परायण अर्थात् कामदेव के समान सुरूप, सुन्दर और स्वस्थ होते हैं।[2]

सिंहावलोकनप्रासादानां दारुजप्रसादानां चोत्पत्तिः —

हरसिद्ध्यादयो देव्यः समस्ताः समयेषु च।
ताभिर्महोत्सवाः पूजाः कृताश्चैव माहान्तकाः॥ 37॥
सिंहावलोकना सर्वे प्रासादा भुवनोत्तमाः।

इति सिंहालोकनोत्पत्तिः।

इसी प्रकार आगे हरसिद्धि आदि देवियों ने भी एकत्र होकर इस महान् पूजा-महोत्सव को किया जिससे सिंहावलोकन प्रासाद सभी प्रकार से इस भुवन में उत्तम

---

1. ग्रन्थकार भुवनदेवाचार्य का मत है कि इसका छन्द नागर कुल का है। इसके आकार भेद से चार प्रकार है। लम्ब चौरस हो तो पुष्टप्राकार या पुष्पक, चौरस हो तो सङ्कीर्ण, गोलाकार हो तो रत्नज्योति और लम्बगोल हो तो महार्चिष कहलाता है।
2. लम्ब चौरस तलदर्शन वाला घण्टा तथा भूमिकाओं से रहित और गज पृष्ठाकार शिखर वाला प्रासाद वलभी शैली का होता है। ऐसी मान्यता है कि ये प्रासाद लतिन और नागर शैली की अपेक्षा प्राचीन है। सौराष्ट्र में उत्तर गुप्तकाल के प्रभास के निकट कद्वार में ऐसे नमूने प्राप्त हैं। पोरबन्दर और द्वारका के बीच हर्षदमाता स्थान पर भी वलभी कोटि का प्रासाद मिला है। वलभीप्रासादों के उदाहरण दक्षिण में महाबलिपुरम्, हिमालय प्रदेश, कलिङ्गादि में देखने में आते हैं। भुवनेश्वर में वैताल का अलंकृत मन्दिर वलभी जाति का है।

माने जाने वाले उद्भूत हुए।

अथ दारुजप्रासादोत्पत्तिः —

दारुकर्मोद्भवाः सिंहालोकना दारुजाः समे ॥ 38 ॥

इति दारुजोत्पत्तिः।

इसी के अनुरूप दारुकर्मोद्भवा यानी लकड़ी का काम करने वाले शिल्पियों से दारू अर्थात लकड़ी से सिंहावलोकन प्रासाद बनें।

इत्यमनन्तर फांसनाकारप्रासादानामुत्पत्तिः —

पिशाचैश्चैव सर्वैश्च रक्षःप्रेतात्मकैस्तथा।
कृत्वा महोत्सवं पूजाः यागेश्वरस्य तु ॥ 39 ॥

यहाँ तक कि पिशाचों ने भी और सभी राक्षस व प्रेतात्माओं ने भी महोत्सव करके पूजा की जिससे योगेश्वर शिव प्रसन्न हुए।

ने ते स्त्रीलिङ्गतः कार्याः पुंलिङ्गास्तु विवर्जिताः।
नपुंसकाः फांसनाख्याः प्रासादाश्च भवन्ति च ॥ 40 ॥

इति फांसनाकारोत्पत्तिः।

उनके वरदान से न तो स्त्री लिङ्ग और न पुलिङ्ग प्रासाद उत्पन्न हुए। ये नपुंसक कोटि के 'फांसना' नाम प्रासाद हुए।

तथा च महोत्सव वर्णनं —

इमे चतुर्दश$_{14}$ प्रासाः समस्तैश्च गणेश्वरैः।
स्वर्गपातालाधिदेवैः सुरासुरनरोरगैः ॥ 41 ॥
दिक्पालैर्लोकपालैश्च देवीभिर्वसुभिस्तथा।
ऋषिवृद्धैस्तथा **चैव** भूपालाद्यैः **समस्तकैः** ॥ 42 ॥
इन्दलोकात् **समायातः सुरराजः स्वयम्भुवा।**
कृता तत्र महापूजा पुरुषत्रितयस्य **च** ॥ 43 ॥

समस्त गणेश्वरों से उक्त चौदह प्रासाद प्राप्त हुए हैं। सुर, असुर, उरग और नर, जो स्वर्ग-पाताल के अधिदेव है तथा समस्त दिक्पाल, लोकपाल, सभी देवियाँ, सभी वसुगण, सभी ऋषियों में वृद्धऋषि और समस्त भूपालों-राजाओं ने, इन्द्रलोक से आए सुरराज ने, स्वयम्भुव ने वहाँ त्रिपुरुषदेव की पूजा का महोत्सव किया।[1]

---

1. ग्रन्थकार ने यहाँ त्रिपुरुषदेव की ओर सङ्केत किया है। दक्षिण की गुफाओं में इस प्रकार की मूर्तियाँ मिली हैं। ग्रन्थकार के समय चित्तौड़गढ़ पर धाराधिप भोज के बनवाए त्रिभुवननारायण का मन्दिर

वामे विष्णुं देवदेवं ब्रह्माणं दक्षिणे तथा।
मध्ये यागेश्वरं देवं त्रैलोक्येशं जगद्गुरुम्॥ 44॥
गीतनृत्यैश्च वादित्रैः प्रेक्षणीयैरनेकधा।
लास्य-हास्यै-वैदग्ध्यैस्ताण्डवाद्यैश्च नर्त्तनैः॥ 45॥

बाएँ भाग में देवाधिदेव भगवान् विष्णु को रखा। दाएँ भाग में भगवान् ब्रह्माजी को रखा और दोनों के मध्य में यागेश्वर, त्रैलोक्य देवेश जगद्गुरु शिव को आसीन किया। सब ने ही मिलकर गीत, नृत्य, वाद्ययन्त्रों के साथ अनेक प्रकार के दर्शनीय लास्य, हास्य और विदग्ध सूझबूझ के ताण्डव आदि नर्तन से उत्सव मनाया।

विविधाभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च तोरणैस्तथा।
कुङ्कुमद्रवसङ्कीर्णैः कुङ्कुमद्रवसिञ्चितैः॥ 46॥

उक्त महोत्सव स्थल को तरह-तरह की पताकाओं, ध्वजादि तोरणों को सजाया गया था। कुङ्कुम के घोल के अत्यधिक प्रयोग से ऐसा लग रहा था मानों कुङ्कुम-द्रव से ही सर्वत्र सिंचाई हो रही हो।

सद्धूपामोदबहुलैः कर्पूरागरुकैस्तथा।
इषुभेदैः$_5$ समुत्पन्नाः सर्वे प्रासादनायकाः॥ 47॥

इसी तरह अच्छे धूप की सुगन्ध की बहुतायत से और कर्पूर और अगरु से व्याप्त सुगन्धिपूर्ण महोत्सव से पाँच प्रकार के प्रासाद उत्पन्न हुए जो सर्वप्रकारेण प्रासादनायक ही थे।

सोमेश्वरस्तदोवाच तथास्तु ब्रह्मणोदितम्।
ब्रह्मोवाच भवाल्लब्धाः प्रासादा विविधा मया॥ 48॥

उस महोत्सव मे सोमेश्वर शिव ने ब्रह्मा के प्रति 'तथास्तु' कहा। इस पर ब्रह्मा ने भी कहा कि प्रभु आप से मेरे द्वारा विविध प्रकार के प्रासाद प्राप्त हुए।

वैराज्य-पुष्य-कैलासाः-मणिकाश्च-त्रिविष्टपाः।
इषुभेदैः$_5$ समुत्पन्नाः प्रासादाः सर्वकामदाः॥ 49॥
अष्टाशीत्युत्तराण्येव शतान्यष्टादशैव$_{1888}$ च।
... ... ॥ 50॥

ये सभी प्रासाद हैं— 1. वैराज्य, 2. पुष्पक, 3. कैलास, 3. मणिक और 5.

विद्यमान था। चीरवा गाँव से प्राप्त 1278 ई. के अभिलेख में इसका सङ्केत मिलता है— भोजराजरचित त्रिभुवननारायणाख्य देवगृहे। वर्तमान में इसे समाधीश्वर मन्दिर कहा जाता है।

त्रिविष्टप। ये पाँच भेदों में उत्पन्न प्रासाद सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं और इन सबके कुल 1888 विविध रूप होते हैं।

नवनाट्यरसोपेतैः धृतारात्रिककैस्तथा।

मृदङ्ग-वंश-तालाद्यै-र्गीत-नृत्यादिभिस्तथा॥ 51॥

नाट्य के नौ ही रसों से परिपूर्ण होकर उन्होंने एक-एक रात्रि भर मृदङ्ग, बाँसुरी, ताल-मञ्जीरों से गीत और नृत्यों द्वारा उत्सव मनाया।

षड्रसाहारगौरैः पक्वान्नैश्च नेकधा।

चतुरशीत्यत्र साकारि [1]फेनाकुलीकनेकसङ्कुला॥ 52॥

इसी प्रकार अनेक प्रकार के पक्वान्नों से उन गौरियों ने षट् रसों से युक्त आहार किया। इस महोत्सव में चौरासी 84 आकारों के अनेक फेनाकुलिकों (फीणियों) के समूह जुटाए गए थे।

महेषु पञ्चदशसु₁₅ सर्वमारात्रिकादिकम्।

प्रथितं त्रिषु लोकेषु सुरासुरनरोरगैः॥ 53॥

स्तोत्रमन्त्रार्चनैर्भक्त्या प्रणिपत्य जगद्गुरुम्।

जपदीक्षा भवेत् सा हि दण्डीदारुवने तथा॥ 54॥

इस अवसर पर महेश द्वारा तीनों लोकों के सुर, असुर, नर और नागों में प्रकाशित-प्रचारित, पन्द्रह रात्रि में सभी प्रकार से की जाने वाली आरती की। उन्होंने स्तोत्र, मन्त्रों से अर्चना भक्तिपूर्वक जगद्गुरु शिव को प्रणिपत्य होकर यानी साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए की। इस प्रकार उक्त दण्डी दारुवन की जपदीक्षा होती है।

तस्य फलवर्णनं —

सोत्साहं यः पठेद् भक्त्या भक्तवत्सलसंस्तुतिम्।

मुक्तश्च सर्वपापेभ्यः शिवलोकं स गच्छति॥ 55॥

अस्तु, भक्तवत्सल भगवान् शिव की यह संस्तुति को उत्साह और युक्तिपूर्वक जो भी पढ़ेगा, वह सब पापों से तुरन्त मुक्त होकर शिवलोक को जाएगा।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शिवस्तोत्रं जितेन्द्रियः।

यः पठेच्च तथा भक्त्या ह्येकचित्तः समाहितः॥ 56॥

यागेश्वरस्य यात्रायाः पुण्यं प्राप्नोति मानवः।

धर्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां सम्प्राप्तिश्च तथेप्सिता॥ 57॥

---

1. 'फेनाकुलीकमेकसङ्कुला ?॥' इति प्रकाशित पाठः।

इसी तरह अष्टमी और चतुर्दशी के दिन जितेन्द्रिय होकर जो शिवस्तोत्र को एकाग्रचित से समाहित होकर भक्तिपूर्वक पढ़ता है वह मानव यागेश्वर भगवान शिव की यात्रा करने का पुण्य प्राप्त करता है और इच्छित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कर सकेगा।

कृतघ्नश्च तथा गोघ्नो ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
दुष्टकर्मा दुराचारः पितृहा मातृहा तथा॥ 58॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दृष्ट्वा यागेश्वरोत्सवम्।

चाहे कोई कृतघ्न हो, गौघाती हो, ब्राह्मण का हत्यारा हो, गुरु-तल्पग (गुरु पत्नीगामी) हो, दुष्टकर्मा व दुराचारी हो, माता-पिता का हत्यारा हो वह भी यागेश्वर शिव के महोत्सव को देखते ही समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

कल्पकोटिसहस्त्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम्॥ 59॥
श्रुत्वा यागेश्वरोत्साहं मुच्यते सर्वपातकैः।
ये चादग्धा मृतास्तेषां मोक्षः स्यात्पञ्चभूततः॥ 60॥

इसी तरह हजारों, करोड़ कल्पों में जो पाप किसी ने उपार्जित किए हो, उनसे भी यागेश्वर शिव के महात्म्य को सुनते ही मुक्ति मिल जाती है। जो भी प्राणी मरने पर दाह संस्कार न पा सका हो, अदग्ध रहा हो उसको भी पञ्चभूतमय कायाचक्र से मुक्ति मिल जाती है।

वाचमानो महोत्साहः श्राद्धं कृत्वा स्वयं गृहे।
एकोत्तरसहस्त्रं च कुल [त्राता भवेन्नरः स्यात्]॥ 61॥

जो महान् उत्साहपूर्वक शिव माहात्म्य का वाचन करता है और अपने स्वयं के गृह पर ही श्राद्ध करता है, वह भी अपने एकोत्तर हजार कुलों को तार देता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां चतुर्दशप्रासादोत्पत्तिमहोत्सवाधिकारो नाम पञ्चोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 105॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में चौदह प्रासाद उत्पत्ति महोत्सव अधिकार नामक एक सौ पाँचवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 105॥

प्रासादचतुर्दशजातिलक्षणाकारो नाम षडुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 106॥

अधुना नागरादि प्रासादलक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

विमानाश्च तथा पञ्च ब्रह्मणा भाषिताः स्वयम्।
मनोह्लादकरा ह्येते कामं स्वच्छन्दचारिणः॥ 1॥

विश्वकर्मा ने आगे कहा कि स्वयं ब्रह्माजी ने पाँच प्रकार के विमानों के बारे में कहा है जो कि मन को आनन्द देने वाले, कामनापूर्ति करने वाले तथा स्वच्छन्दगामी या स्वतन्त्र रूप से चरण करने वाले हैं।

वैराज्यः प्रथमो नाम पुष्पकश्च द्वितीयकः।
कैलासो मणिकश्चाथ तथा चैव त्रिविष्टपः ॥ 2 ॥

इन प्रासादों के नाम हैं— 1. वैराज्य, 2. पुष्पक, 3. कैलास, 4. मणिक और 5. त्रिविष्टप।

प्रयुक्ता विविधाश्छन्दाः सूत्रमार्गैरनेक**धा**।
वैराज्यकुलसम्पन्नाः **सर्वे** प्रसादसञ्ज्ञकाः ॥ 3 ॥
प्रासादास्तु **समस्ता वै सन्ति** वैराज्यसम्भवाः।
वैराज्यजन्यप्रासादा **इषु** भेदोद्भवास्ततः ॥ 4 ॥
इषुभेदसमुत्पन्नाः **प्रासादाः** सर्वकामदाः।

ये सभी प्रासाद वैराज्य कुल से सम्पन्न कहे गए है। इनमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। अनेक सूत्रमार्गों का भी इनमें प्रयोग हुआ है। ये समस्त प्रासाद वैराज्य से सम्भव हुए है। इसलिए ये वैराज्यजन्य प्रासाद पाँच भेदों में बने हैं। ये पाँच भेदों में बने प्रासाद सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं।

धात्वादीनां प्रासादं —

सौवर्णे राजतैश्चैव देवानां सततं प्रियाः ॥ 5 ॥
मणिमुक्ताप्रवालाढ्यैर्भूषणैः सुविभूषिताः।
रीतिकाताम्ररङ्गैश्च पिशाचोरगरक्षसाम् ॥ 6 ॥

सोने और चाँदी के बने प्रासाद तो देवताओं को सतत प्रिय रहे हैं। इन्हें देवताओं ने मणियों, मुक्ताओं, प्रवालों की भरमार युक्त भूषणों से सुविभूषित किया है। पिशाचों, नागों और राक्षसों के लिए ये प्रासाद ताम्बा, पीतल और राङ्गा धातुओं के हैं।

लोकानुसारेण प्रासादलक्षणं —

देवलोके भवन्त्येते **कामं** स्वच्छन्दचारिणः।
पातालेऽपि विनिर्दिष्टाः **पाषाणैः** स्फटिकैस्तथा ॥ 7 ॥

ये देवलोक में अपनी कामना के अनुसार स्वच्छन्द चलित होते हैं। पाताल में भी ये प्रासाद पाषाण और स्फटिक से बनाएँ जाने के योग्य बताए गए हैं।

इष्टकाकाष्ठपाषाणैर्मृत्युलोके त्वनिन्दिताः।
नित्यं भवन्ति सुखदाः कर्तृकावरयोस्तथा ॥ 8 ॥

मृत्युलोक में इन प्रासादों को ईंटों, काष्ठ, पाषाण से बनाया जाना बताया गया है जो भी मान्य है, निन्दित नहीं है। ये नित्य ही उन प्रासादों के कर्ताओं को सुख देने वाले और वरदाता होते हैं।

देवालयमाहात्म्यमाह —

नगराणां भूषाणार्थं देवानामालयाय च।
लोकानां धर्महेतोश्च क्रीडार्थं सुरयोषिताम्॥ 9॥
आलयः सर्वभूतानां विजयाय जितात्मनाम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिहेतुर्मनस्विनाम्॥ 10॥

अतएव ये प्रासाद नगरों के भूषण रूप में, देवताओं के आवास रूप में, लोकों के धर्मवृद्धि हेतु में और देवाङ्गनाओं के क्रीड़ार्थ तथा सभी भूत प्राणियों के आश्रय के रूप में, जितात्माओं के विजय के लिए और मनस्वियों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के हेतु बनते हैं।

यत्र येषां कृता पूजा तत्र तन्नामकास्तु ते।
प्रासादानां समस्तानां कथयिष्याम्यनुक्रमम्॥ 11॥

जहाँ इन प्रासादों की पूजा होती है, वहाँ वे उसी स्थान के नाम से जाने जाते हैं। (जो जिस देवालय की पूजा करता है, वह देवालय उसके अनुसार भी जाना जाता है) इन समस्त प्रासादों को अब अनुक्रम से कहता हूँ।

सुरैस्तु नागराः ख्याता द्राविडा दानवेन्द्रकैः।
लतिनाश्चैव गन्धर्वैर्यक्षैश्चापि विमानजाः॥ 12॥

देवताओं में तो इन प्रासादों को 'नागर' नाम से ख्याति मिली है। दानवेन्द्रों में इन प्रासादों को 'द्राविड़' नाम से जाना जाता है। गन्धर्वों में ये प्रासाद 'लतिन' नाम से और यक्षों में ये प्रासाद 'विमान' नाम से जाने जाते हैं।

विद्याधरैर्मिश्रकाश्च व्यन्तरैश्च वराटकाः।
सान्धाराश्चोरगैः ख्याता नरेन्द्रैर्भूमिजास्तथा॥ 13॥

विद्याधरों में ये प्रासाद 'मिश्रक', व्यन्तरों में ये प्रासाद 'वराटक', नागों में ये प्रासाद 'सान्धार' तथा नरेन्द्रों, राजाओं में ये प्रासाद 'भूमिज' नाम से विख्यात हैं।

लोकानुसारेण उत्पत्तिः —

विमाननागरच्छन्दाः सूर्यलोकसमुद्भवाः।
नक्षत्राधिपलोकोक्ताश्छन्दा विमानपुष्पकाः॥ 14॥

नागरच्छन्द के विमान सूर्यलोक से उत्पन्न हुए है। इसलिए नक्षत्रों के अधिपति ने इनके छन्द को पुष्पकविमान कहा है।

पार्वतीसम्भवाः सेना वलभ्याकारसंस्थिताः।
हरसिद्ध्यादिदेवीभिः कार्याः सिंहावलोकनाः॥ 15॥

इसी तरह पार्वती से सम्भव प्रासाद सेना को वलभी आकार में संस्थित किया गया है। हरसिद्धि आदि देवियों ने भी सिंहावलोकन प्रासाद बनाए हैं।

व्यन्तरस्थितदेवैस्तु फांसनाकारिणो मताः।
इन्द्रलोकसमुद्भूता रथाश्च विविधा मताः॥ 16॥

व्यन्तर में रहने वालों देवताओं ने फांसनाकार प्रासादों को बनाया है। इन्द्रलोक से उत्पन्न प्रासादों को विविध प्रकार के रथों का नाम दिया गया है।

एषां पृथक् पृथक् युक्तिमाह —

क्रमयुक्त्या विधातव्या अनेकाण्डजसङ्कुलाः।
सर्वासामथ जातीनां रूपालङ्कारमुच्यते॥ 17॥

इन प्रासादों को अपने क्रमानुसार अनेक अण्डों के समूहों के साथ बनाने का विधान है। इन सबकी जातियों के अनुरूप ही इनके रूप और अलङ्कार कहे गए हैं।

अथ नागरस्य क्रमयुक्तिविधीस्तथा —

आदौ तु नागरान् वक्ष्ये प्रासादान् सर्वकामदान्।
अनेकाण्डकसम्युक्तान् क्रमयुक्तिविधींस्तथा॥ 18॥

सबसे पहले मैं नागर जाति के प्रासादों के विषय में कहता हूँ जो सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, उनके अनेक अण्डों की संयुक्त क्रम युक्ति, निर्माण विधि को कहता हूँ।

उत्सेधे नागराः शृङ्गैरनेकाकाररूपिणः।
शृङ्गोरःशृङ्गप्रत्यङ्गतवङ्गादिकभूषिताः॥ 19॥

अपने उत्सेध अर्थात् ऊँचाई के रूप में नागर प्रासादों के शृङ्ग अनेक आकार के और अनेक रूपों के होते हैं। इसमें शृङ्ग, ऊरुशृङ्ग, प्रत्यङ्ग, तवङ्ग आदि की शोभा भी होती है।

एक$_1$ द्वि$_2$ त्रि$_3$ क्रमोन्नत्या रेखागर्भसमुद्भवाः।
दोषवहाश्च सङ्कीर्णा विपुला धन्यसौख्यदाः॥ 20॥

इनके गर्भ से उत्पन्न होने वाली रेखाएँ भी एक, दो, तीन आदि क्रम से उन्नति

को प्राप्त होती जाती है। ये समस्त दोषों का हरण करने वाले और विपुल धन व सुख प्रदान करने वाले होते हैं।

त्रिमूर्त्तयस्तु भद्रास्ते रथिकाः सर्वकामदाः।
शुकनासे च सङ्घाटा भद्रेत्वेकैकसंयुताः॥ 21॥

इनमें भद्र या दीवाल के अन्त में त्रिमूर्तियाँ— ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्तियाँ होती हैं और इनकी रथिका सब कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है। इनके एक-एक भद्र अर्थात् बाजू की दीवार पर शुकनास घड़े गए होते हैं।

आमलसारान्तस्थितकलशैः सुविभूषिताः।
पताकाध्वजयुक्ताश्च नागराः सर्वकामदाः॥ 22॥

इसी प्रकार ये आमलसार के अन्त तक कलशों से सुविभूषित होते हैं। पताका और ध्वजों से संयुक्त होकर ये नागर प्रासाद सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले होते हैं।

पीठोपपीठजङ्घाभिर्मेखलाकूटच्छाद्यकैः।
दलभक्त्या च युक्ताश्च कर्तव्याः सर्वकामदाः॥ 23॥

इनके पीठ, उपपीठ, जङ्घाएँ, मेखला, कूट और छाद्य-छतों के विविध दलों के भागों को युक्तिपूर्वक करना चाहिए जिससे सकल कामनाओं की पूर्ति होती है।

मण्डपै रूपशोभाढ्यैर्वितानैर्बहुभिर्युताः।
छाद्यघण्टाकूटयुक्ता नानासंवरणास्तथा॥ 24॥

इनके मण्डपों को बहुप्रकारेण सुरूप, सुन्दर रूपों की बहुलता के साथ बने वितानों, छतों, घूमटों, कूटों और अनेक संवरणों से युक्त बनाने चाहिए।

नागरच्छन्दजा एवं प्रासादाः सर्वकामदाः।
वल्लभाः सर्वदेवानां शिवस्यापि विशेषतः॥ 25॥

इति नागरप्रासादलक्षणाधिकारः।

ऐसा होने पर ये नागरछन्द से उत्पन्न प्रासाद सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा सभी देवताओं के वल्लभ या प्रिय होते है। शिव को तो ये विशेष प्रिय है।

अथ द्राविडप्रासादलक्षणं —

पीठोर्ध्वे कर्णरेखाश्च भूमिकाः क्रमसंस्थिताः।
विभक्तिदलनापूर्णा लताशृङ्गक्रमोद्भवाः॥ 26॥

(द्राविड़ शैली के प्रासाद के लिए) पीठ-जगतीपीठ से ऊँचाई की रेखा में

कर्णरेखा के क्रमानुसार भूमिका या मंजिलें बनती हैं। उसकी प्रत्येक विभक्ति अर्थात् भाग में पौधदलों से पूर्ण लताएँ शृंगों से निकलती हुई बनाएँ।

मेषमकरकूटपैः कण्टकैरावृताः शुभाः।
वेदीघण्टानासिकाद्याः द्राविडाः शुभलक्षणाः॥ 27॥

इति द्राविडाः।

इनको मेष, मकरादि के कूट रूप के कण्टकों से आवृत्त, शुभ रूप में अलंकृत किए जाएँ। उनमें वेदी-घूमट-नासिका आदि द्राविड़ोक्त शुभ लक्षण बनाने चाहिए।

अथ लतिनप्रासादलक्षणं —

या त्वेका नागरा रेखा शृङ्गे शिखरवर्जिताः।
लतिनास्तु समाख्याता रुचकादिसमुद्भवाः॥ 28॥

इति लतिनाः।

जिनकी रेखा तो नागर प्रासाद के अनुरूप हो, परन्तु नागर प्रासाद की भाँति के शिखर और शृङ्ग उन पर नहीं बनाए जाते, ऐसे प्रासादों को लतिन प्रासाद कहा जाता है जो रुचिक प्रासादों से बनते हैं।

अथ भूमिजप्रासादलक्षणं —

यत्र वंशोद्भवाः कूटा ह्रस्ववृद्धिक्रमस्थिताः।
दलविभक्त्या त्वङ्गैश्च भूमिजाः पुरभूषणाः॥ 29॥

इति भूमिजाः।

जहाँ के कूट वंश-बाँस से उत्पन्न हुए बनाए जाते हैं और जो ह्रस्व-वृद्धि के क्रम में स्थित रहते हैं और जिनके अङ्गों में दल-पौध विभक्तियाँ बनाई जाती हैं, उन प्रासादों को भूमिज प्रासाद कहते हैं जो नगरों के भूषण होते हैं।

अथ वराटप्रासादलक्षणं —

भूमिजा भूमिकाक्रमैर्जङ्घाहीननैश्च भूमिकैः।
शृङ्गे शृङ्गयुताः कार्या बहुशृङ्गसमाकुलाः॥ 30॥

जिन भूमिज प्रासादों में मंजिलें जङ्घाहीन होती है और सभी शृङ्ग शृङ्गों से युक्त होते हैं और समाकुल अर्थात् समूह रूप में शृङ्ग होते हैं।

कर्णे प्रतिरथे चैव भद्रे च प्रतिभद्रके।
मन्दारपुष्पिका घण्टा वराटाः शुभलक्षणाः॥ 31॥

इति वराटाः।

इसी प्रकार कर्णों पर प्रतिरथ और भद्रों या दीवारों पर प्रतिभद्र भी बनते जाते हैं। इन पर मन्दार पुष्पिका से अलंकरण सहित घूमट बनाए जाते हैं। ऐसे प्रासाद को वराटक प्रासाद और शुभलक्षणों से युक्त कहा है।

अथ विमानप्रासादलक्षणं —

भूमिजच्छन्दकाख्यातास्तलैश्च **चतुरश्रकाः।**
रथोपरथभद्रा **वै विमानाः** सर्वकामदाः॥ 32॥

इति विमानाः।

जो प्रासाद भूमिज छन्द में होते हुए तल भाग में चतुरश्र या चौकोर होते हैं और जिनमें रथ, उपरथ और भद्र या दीवार होती हैं, उन्हें सब कामनाओं को पूरा करने वाले विमान प्रासाद कहा है।

अथ मिश्रकसान्धारविमाननागरविमानपुष्पकवलभीनपुंसकसिंहावलोकनरथारुह प्रासादाः —

नागरच्छन्दकाख्यातास्तिलकैः **स्युरनेकधा।**
मिश्रका मिश्रजाताश्च कर्तव्यास्तिलकाङ्किताः॥ 33॥

इति मिश्रकाः।

जो प्रासाद नागर छन्द में बनकर अनेक तिलकों से युक्त होते हैं। उन्हें मिश्रक जाति के मिश्रक प्रासाद कहते हैं। वे सदा तिलकों से अङ्कित ही बनाए जाने चाहिए।

तलच्छन्दविभक्ताश्च गर्भभित्तिभ्रमन्तिकाः।
भ्रमणीक्रमयोगेन सान्धाराः शिखरैर्युताः॥ 34॥

इति सान्धाराः।

जिन प्रासादों के तलछन्द विभक्तियुक्त हो और गृर्भगृह की भिति के साथ भ्रमन्तिका हो, उनको इस भ्रमणी क्रम योग से सान्धार प्रासाद कहा जाता है। वे शिखर से युक्त बनाए जाते हैं।

नागरोर्ध्वच्छन्दयुक्ता **लताशृङ्गैः** समन्विताः।
विमाननागरच्छन्दाः प्रोक्तास्तेजस्समुद्भवाः॥ 35॥

इति विमाननागराः।

जो ऊर्ध्वछन्द में नागर प्रासाद जैसा हो और लता-शृङ्गों से युक्त हो, उनको विमाननागर छन्द कहते हैं। वे तेज से ही उत्पन्न हुए हैं।

विमाननागरच्छन्दे **उरःशृङ्गे तु** पुष्पकम्।
विमानपुष्पकच्छन्दाः **कर्तव्याः** सर्वकामदाः ॥ 36 ॥

इति विमानपुष्पकाः।

जिन प्रासादों में विमाननागर छन्द हो और उरु-शृङ्ग पुष्पक प्रासादों के जैसे हो, उनको विमानपुष्पक छन्द के प्रासाद कहते हैं। इनको भी बनाना चाहिए ताकि सब कामनाओं की पूर्ति होती रहे।

आयतच्छन्दकाः कार्या अघण्टो भूमिकाक्रमः।
गजपृष्ठाकृतिकुटी **वलभी** सर्वकामदा ॥ 37 ॥

इति वलभी।

जो प्रासाद आयत छन्द में अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई युक्त चौकोर परिक्षेत्र में बनता है और उसके मंजिलों के क्रम से घूमट नहीं होती तथा हाथी की पीठ के समान आकार वाली कुटी बनती है, उस प्रासाद को वलभी कहते हैं। यह सर्वकामद है।

दलविभक्तिभद्राढ्या उदकान्तरवर्जिताः।
फांसनाकारिणस्तूर्ध्वे कर्तव्यास्तु **नपुंसकाः** ॥ 38 ॥

इति नपुंसकाः।

जिन प्रासादों के भद्र दलविभक्ति अर्थात् पौध-लताओं से भरपूर अलंकृत हो परन्तु उनमें कहीं भी उदकान्तर अर्थात् पनाले नहीं बनाए गए हों और ऊँचाई में फांसनाकार बनाए गए हों, उन्हें नपुंसक प्रासाद कहते हैं, ये भी बनाए जाएँ।

छाद्यछाद्योद्भवा **ऊर्ध्वं** सिंहकर्णैर्विभूषिताः।
घण्टां घण्टाकृतिं कुर्यादित्थं सिंहावलोकनाः ॥ 39 ॥

इति सिंहावलोकनाः।

जिनमें छत से छत निकलती हो और ऊपर जाते हुए जो सिंहकर्णों से विभूषित हो और घूमट, घण्टा की आकृति में बनाए जाते हैं, वे सिंहावलोकन प्रासाद होते हैं।

शकटोपरि कर्तव्याश्छन्दैर्वै नागरोद्भवैः।
त्रिचक्रं चैव शकटं कामदास्ते रथाभिधाः ॥ 40 ॥

इति रथारुहाः।

यदि गाड़ी के आकार पर नागरछन्द का प्रासाद बनाया जाए और गाड़ी के तीन-तीन पहियों को बनाया जाए, तो उनको सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले रथारूह प्रासाद कहे जाते हैं।

... ... ।
... ... ॥ 41 ॥
... ... ।
... ... ॥ 42 ॥
... ... ।
... ... ॥ 43 ॥

अन्यदप्याह —

अभ्यासयोगाच्च गुरुप्रसादाद् **बुद्धि** [1]स्फुटद्दष्ट्याथवा।
... ... ॥ 44 ॥

अभ्यास योग से और गुरु की कृपा अथवा स्फुट बुद्धि के प्रभाव से (ये विविध छन्द के प्रासादों की निर्मितियाँ सम्भव हो सकती है।)

निशाकरे वास्तमिते **उदिते च दिवाकरे।**
सूत्रशास्त्रं समस्तानामुक्तं प्रद्योतकारकम्॥ 45 ॥

जिस तरह चन्द्रमा के अस्त होने पर और सूर्य के उदय होने पर प्रकाश फैलता है वैसे ही समस्त सूत्रशास्त्र अर्थात् शिल्पशास्त्रों से ऐसा ही प्रकाश मिलता है जिससे कि विविध रूपों के प्रासादों की रचना सम्भव होती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादचतुर्दशजातिलक्षणाकारनिर्णयाधिकारोनाम **षडुत्तशततमं सूत्रम्॥ 106 ॥**

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति **प्रकाश या** अपराजितपृच्छा **में प्रासाद चतुर्दश जाति लक्षण अधिकार नामक एक सौ छठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 106 ॥**

पुरप्रासादगृहप्रमाण नाम सप्तोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 107 ॥

अधुना पुरस्य प्रासादहर्म्यादीनां प्रमाणं। विश्वकर्मोवाच —

प्रमाणानि प्रवक्ष्यामि पुरप्रासादसद्मनाम्।
एकैकस्य **पृथग्मानं** यथाविधि **तवाधुना॥ 1 ॥**

विश्वकर्मा अपराजित से बोले कि अब मैं पुरों-नगरों और वहाँ बनने वाले प्रासादों और भवनों के बनाने के प्रमाणों को एक-एक की अलग-अलग विधि और यथा मान जो वर्तमान में मान्य है, उन्हें कहता हूँ।

---

1. 'स्फुट दृष्ट पवा ?।' इति प्रकाशित पाठः।

प्रासादप्रमाणं —

एकहस्तादिप्रासादा यावत्पञ्चाशद्धस्तकम्।
हस्तान्तरे **ततो** भेदस्तदर्धे **च न संशयः ॥ 2 ॥**

एक हाथ अर्थात् एक गज के प्रासाद से लेकर 50 गज तक के प्रासाद तक एक गज के अन्तर पर पड़ने वाले भेद और उससे भी आधे गज पर पड़ने वाले निश्चित भेद के बारे में कहता हूँ।

हस्तपादे त्र्यङ्गुले वा कुर्याच्च द्व्यङ्गुले क्रमात्।
योजयेद् विविधांश्छन्दान् **प्रमाणं तत्र शास्त्रतः ॥ 3 ॥**

गज के पाद या चतुर्थांश, तीन अङ्गुल का नाप और दो अङ्गुल का नाप क्रमपूर्वक करना चाहिए। इन प्रमाणों से ही कार्यार्थ शास्त्र के विविभ छन्दों की आयोजना करनी चाहिए।

गृहप्रमाणं —

गृहं चैव तु हस्ताद्यं यावद् द्वात्रिंशद्धस्तकम्।
अष्टहस्ताद् दशवृद्ध्या यावदष्टोत्तरं **शतम् ॥ 4 ॥**

गृहों के लिए एक गज से लेकर जब तक 32 गज हो तब तक आठ गज से दस-दस की वृद्धि करते हुए 108 गज तक बढ़े।

षड्जातिसम्भवाः कार्याश्छन्दोभेदैरनेकधा।
प्रयुक्ता राजवेश्माद्याः **कर्तव्याः** सर्वकामदाः **॥ 5 ॥**
माड-मौड-शुद्ध-शृङ्ग-तुङ्गार-सिंहकाभिधाः।

इनसे छह जाति के अनेक छन्दों और भेदों के गृह किए जाते हैं। ये सब राजभवनों में भी प्रयुक्त होते हैं और उन्हें सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले बनाना चाहिए। ये छह प्रकार के छन्द हैं— 1. माड, 2. मौड, 3. शुद्ध, 4. शृङ्ग, 5. तुङ्गार और 6. सिंहक।

प्रासादहर्म्यभेदमाह —

प्रासादाश्च नरेन्द्राणामन्येषां हर्म्यमुच्यते **॥ 6 ॥**

राजाओं के लिए बनवाए जाने वाले भवन 'प्रासाद' कहे जाते हैं और अन्य लोगों के भवनों को हर्म्य कहते हैं।

राजपुरब्रह्मपुरशूद्रपुरञ्च प्रमाणं —

कनिष्ठं चतुःसहस्त्रैरष्टसहस्त्रैर्मध्यमम्।

ज्येष्ठं द्व्यष्टसहस्रैश्च त्रिधा राजपुरं मतम् ॥ 7 ॥

(अब पुरों का कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम प्रमाण कहा जा रहा है) राजपुर चार हजार गज के कनिष्ठ, आठ हजार के मध्यम और सोलह हजार के ज्येष्ठ— इस प्रकार से तीन तरह के होते हैं।

साष्टमांशं सपादं वा सार्धं वा व्यासमायतम्।
पृथगेकैकमायामे चतुरश्रीकृतं शुभम् ॥ 8 ॥

इनको व्यास और आयत अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई में क्रमशः अष्टमांश (1/8), चतुर्थांश (1/4) या अर्धांश (1/2) के साथ एक-एक आयाम में अलग-अलग चतुरश्र बनाया जाना शुभ है अर्थात् चौकोर बनाए जाएँ।

कनिष्ठं सहस्रहस्तं मध्यं सार्धसहस्रकम्।
ज्येष्ठं द्विसहस्रहस्तं त्रिधा ब्रह्मपुरं मतम् ॥ 9 ॥

ब्रह्मपुर के नाप प्रमाण तीन प्रकार के हैं— एक हजार गज का कनिष्ठ, डेढ़ हजार गज का मध्यम और दो हजार गज का ज्येष्ठ ब्रह्मपुर माना गया है।

कनिष्ठं सहस्रहस्तैर्द्विसहस्रैस्तु मध्यमम्।
ज्येष्ठं चतुजयेष्ठो मध्याधमा च शतद्वयी ? ॥ 10 ॥

(पाठ अस्पष्ट है शायद क्षत्रियपुर के बारे में कहा है जो कि) कनिष्ठ प्रमाण से एक हजार गज का, मध्यम दो हजार गज का और ज्येष्ठ चार हजार गज का होता है।

ज्येष्ठं चतुःशतकरैर्मध्यमं द्विशतैस्तथा।
कनिष्ठं शतमेकं च त्रिधा शूद्रपुरं मतम् ॥ 11 ॥

... ... ।
... ... ॥ 12 ॥

(यहाँ वैश्यपुर के बारे में पाठ नहीं है) शूद्रपुर का ज्येष्ठ प्रमाण चार सौ गज का, मध्यम दो सौ गज का और कनिष्ठ एक सौ गज का होता है। इस तरह तीन प्रकार का पुर कहा है।

प्रासाद-जगतीसम्बन्धः —

त्रिगुणा चोत्तमाख्याता मध्यमा च चतुर्गुणा।
कनिष्ठा पञ्चगुणोक्ता प्रासादाज्जगती मता ॥ 13 ॥

(अब प्रासाद के लिए कहा जा रहा है कि प्रासाद से) प्रासाद की जगती पीठ यदि तीन गुणी है तो उसे उत्तम, चार गुणी हो तो मध्यम और पाँच गुणी है तो उसे कनिष्ठ माना गया है।

प्रासादोच्छ्यविस्तारा सीमान्ते वाम-दक्षिणे।
यथा भेदं यथा लिङ्गं जगती प्रासाद तद्विधम्॥ 14॥

प्रासाद की ऊँचाई और विस्तार बाएँ और दाएँ, वाम और दक्षिण में भेद और लिंग के अनुसार ही जगती की निर्माण विधि कही गई है।

अथार्चामानमाह —

नवहस्तान्तकं लिङ्गमेकहस्तादितः परम्।
एषां मध्ये तु कर्तव्यं घटितं शास्त्रनिश्चयः॥ 15॥

एक गज से लेकर नौ गज तक के लिङ्ग के बीच के सभी लिङ्गों को शास्त्र निश्चयानुसार घटित या घड़े हुए बनाए जा सकते हैं।

अङ्गुष्ठपर्वादिकार्चा पर्यन्तं नवहस्ततः।
प्रासादो प्रतिमा कार्या द्वारमानविधिक्रमात्॥ 16॥

एक अङ्गुष्ठ पर्व के प्रमाण की अर्चा या लिङ्ग, मूर्ति से लेकर नौ गज पर्यन्त की लिङ्ग मूर्ति को प्रासाद के द्वार मानानुसार विधिक्रम से ही करना चाहिए।

महार्चायास्तु विन्यासः कर्तव्यस्तु यथाविधि।
दशादिहस्ततस्त्वर्चा$_{10}$ प्रासादेन विना शुभा॥ 17॥

महार्चा अर्थात् बड़ी मूर्ति, लिङ्ग का विन्यास भी यथाविधि करना चाहिए। दस गज तक की अर्चा के यदि कोई प्रासाद न हो तो वह प्रतिमा अशुभ होती है।

पञ्चचत्वारिंशद्धस्ता$_{45}$ हस्तान्तरे षट्त्रिंशतिः$_{36}$।
महत्सः प्रतिमाः प्रोक्ताः कर्तव्याः सर्वकामदाः॥ 18॥

इसी प्रकार छत्तीस हाथ से लेकर पैंतालीस हाथ तक की प्रतिमा महत् प्रतिमा कही जाती है। ऐसी प्रतिमा सर्व कामनापूर्ति के प्रयोजन से करनी चाहिए।

प्रतोलीमानं —

एकहस्ताच्छतार्धान्तं... ... षष्ठ्यधिकं शतम्।
द्वारमानमिति प्रोक्तं सर्वकामफलप्रदम्॥ 19॥

प्रतोली सामान्यतया एक हाथ से 50 हाथ तक और 160 गज तक द्वार मान के अनुसार ही बनती है, जो सब कामना पूर्ण करती है।

प्रतोल्या द्वारमुत्सेधे हस्ताः पञ्चदशोत्तमम्$_{15}$।
त्रयोदश$_{13}$ तथा मध्यमेकादश$_{11}$ कनिष्ठकम्॥ 20॥

द्वारों की ऊँचाई के अनुसार ही प्रतोली भी पन्द्रह गज की उत्तम होती है। तेरह गज वाली मध्यम प्रतोली और ग्यारह गज की कनिष्ठ प्रतोली होती है।

पुरग्रामखेटककूटकर्वटमानं —

पुरार्धं भवति ग्रामो ग्रामार्धं चैव खेटकम्।
खेटकार्ध्दं भवेत्कूटः कूटार्धं चैव कर्व्वटम्॥ 21॥

पुर या नगर का आधा ग्राम कहलाता है, ग्राम का आधा खेटक (खेड़ा), खेटक का आधा कूट कहलाता है और कूट के आधे को कर्वट (खर्वट) कहते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां पुरप्रासादगृहप्रमाणाधिकारो नाम सप्तोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 107॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में पुर प्रासाद गृह प्रमाण अधिकार नामक एक सौ सातवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 107॥

प्रासादसंस्थानोन्मानलक्षणमष्टोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 108॥

अधुना प्रासादसंस्थानोन्मानं। विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादानां तु लक्षणम्।
संस्थानोन्मानसूत्रं च वास्तुविन्यासपूर्वकम्॥ 1॥

(इस सूत्र में प्रासादानुसार प्रतिमा के लिए विशेष ज्ञातव्य लिखे गए हैं) विश्वकर्मा ने आगे कहा कि अब मैं प्रासादों के लक्षण, उनके संस्थान के मानसूत्र और उनका वास्तु विन्यासपूर्वक पूरा वर्णन करता हूँ।

एकपदादिकं$_{1}$ वास्तु यावत् पदसहस्रकम्$_{1000}$।
प्रासादे नवे जीर्णे तु वास्तूद्धारस्तथा भवेत्॥ 2॥

एक पद वास्तु से लेकर हजार पद के वास्तु विन्यास होता है। इन प्रमाणों के प्रासाद का जीर्ण हो जाने पर उसका वास्तु-उद्धारकर नवीन किया जाता है।

नाभिवेधवर्जितनिर्देशमाह —

अग्रतः पृष्ठतश्चैव वाम-दक्षिणतोऽपि वा।
प्रासादं कारयेच्चान्यं नाभिवेधविवर्जितम्॥ 3॥

प्रासादों के निर्माण में यह ध्यान रखना चाहिए कि वे आगे-पीछे, दायें-बायें कहीं भी बनाए जाएँ परन्तु उनका कहीं भी नाभिवेध नहीं हो, नाभिवेध को सदा ही वर्जित जानना चाहिए।

अथ देवतादृष्टिस्थानम्। लिङ्गाग्रे न प्रतिमास्थाप्यः —

लिङ्गाग्रे च न कर्तव्या ह्यर्चारूपेण देवता।

प्रभा नष्टा न भोगाय यथा तारा दिवाकरे॥ 4॥[1]

कभी भी शिवलिङ्ग के आगे पूजनार्थ किसी भी प्रतिमारूप देवता को स्थापित नहीं करना चाहिए क्योंकि शिवलिङ्ग से उस देवता का प्रभाव उसी प्रकार से नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्य के उदय होने पर उसके सामने तारागणों की प्रभा नष्ट हो जाती है। अतएव ऐसी प्रतिमा का कोई लाभ भी नहीं भोगा जा सकता है।

शिवस्याग्रे शिवं कुर्याद् [2]ब्रह्माणं ब्रह्मणस्तथा।
विष्णोरग्रे भवेद्विष्णुर्जैने जैनं रवेरविम्॥ 5॥

यह नियम है कि सदा शिव के आगे शिव, ब्रह्मा के आगे ब्रह्मा, विष्णु के आगे विष्णु, जैन के आगे जैन और सूर्य की प्रतिमा के आगे सूर्य की प्रतिमा को ही स्थापित करना चाहिए।

चण्डिकाग्रे भवेन्माता यक्षः क्षेत्रादिभैरवः।
ज्ञेयास्तेषामभिमुखे ये येषां च हितैषिणः॥ 6॥[3]

इसी तरह चण्डिका देवी के आगे अन्य माताएँ, यक्ष, क्षेत्रपालादि भैरव आदि जो जिसके हितैषी जाने जाते हैं, वे उनके अभिमुख अथवा सामने स्थापित किए जा सकते हैं।

ब्रह्मविष्णोरेकनाभिर्जिनैर्दोषो न विद्यते।[4]
शिवाग्रे चान्यदेवानां दृष्टिवेधे महद्भयम्॥ 7॥

ब्रह्मा, विष्णु और जिन— ये तीनों परस्पर एक नाभि हों अर्थात् सम्मुख दृष्टिवेध हो तो उसका दोष नहीं होता है लेकिन शिव के सम्मुख अन्य देवता की स्थापना से दृष्टिवेध होता है जिससे महाभय होता है।

---

1. प्रभानष्टेति। लिङ्गाग्रे अर्चारूपेणदेवताः कृताश्चेत् प्रभानष्टा नष्टप्रभा भवन्ति। अत्र दृष्टान्तमाह— नभोगेति। यथा दिवाकरे उदिते नभोगा नभःस्थास्तारा नष्टप्रभा भवन्ति तद्वदित्यर्थः। (देवतामूर्तिप्रकरणं टीकायां 3, 18)
2. 'ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽग्रतः' इति देवतामूर्तिप्रकरणपाठे। (3, 19)
3. मातरश्चण्डिकाग्रे स्युर्यक्षाः क्षेत्रादि भैरवः। स्वे-स्वे स्थाने सुराः स्थाप्या ये यस्याऽपि हितावहाः॥ (देवता. 3, 20)
4. 'ब्रह्मविष्ण्वोरेकनाभिर्जिने दोषो न विद्यते।' इति पाठः। पूर्वं 'ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽग्रतः' इति 'विष्णौ विष्णुं जिने जैनम्' इत्युक्तम्, इदानीं तदपवादमाह— ये यस्यापीति ब्रह्मविष्ण्वोरिति च। यस्य देवस्य ये हितावहा हितकारका भवन्ति तेऽपि तदग्रतः स्थाप्या इत्यर्थः। ब्रह्मेत्यादि एकनाभिः सनाभिः सपिण्डस्तुल्यो वा, तादृशे जिने सम्मुखवर्तिनीत्यर्थः, दोषो न विद्यते, ब्रह्मणो विष्णोश्चाग्रे स्थापितो जिनो दोषाय न भवतीत्यर्थः। एवञ्च जिनास्याप्यग्रे ब्रह्मणि विष्णौ वा स्थापिते दोषो न भवतीति लभ्यते न्यायसाम्यात्। (देवता. टीका. 3, 20-21)

ब्रह्मा विष्णुः शिवः सूर्यश्चन्द्रः स्कन्दो हुताशनः ।[1]
दिक्पाला लोकपालाश्च ग्रहा मातृगणस्तथा ॥ 8 ॥
एते शिवाश्रये स्थाप्या दृष्टिवेधविवर्जिताः ।
दूरेऽपि नैव कर्तव्या शिवदृष्टिषु सर्वदा ॥ 9 ॥

इसलिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र, स्कन्द, अग्निदेव, दिक्पाल, लोकपाल, ग्रह, मातृगण— ये सभी शिवालय में दृष्टिवेध छोड़कर स्थापित किए जा सकते हैं। यदि शिव की दृष्टि पड़ती हो तो शिव से दूर भी इनको नहीं बनाना चाहिए, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

ग्रामे-राष्ट्रे-पुरे-तीर्थे-नगरे-तापसाश्रये।
दृष्टिघातहतं यच्च न पुनस्तत् प्ररोहति ॥ 10 ॥[2]

यह ध्यान रखा जाए कि जिस किसी ग्राम, राष्ट्र, पुर, तीर्थ, नगर, तपस्वी के आश्रम पर शिव का दृष्टिघात होता है तो फिर वे कभी भी विस्तार, उन्नति को प्राप्त नहीं होते हैं, नष्ट होते ही हैं।

अन्यदप्याह —

जिनेन्द्रस्य तथा यक्षा देवाश्च जिनमातृकाः ।
आश्रयन्ति जिनं सर्वे ये चोक्ता जिनशासने ॥ 11 ॥

जिन शासन में भी स्पष्ट कहा गया है कि सभी जिन प्रासादों में जिनेन्द्र के जो-जो यक्ष, देवता, जिनमातृका आश्रित होती है, उनका बनाया जा सकता हैं।

वर्जयेदर्हतः पृष्ठमग्रं तु शिवसूर्ययोः ।
पार्श्वं तु ब्रह्मा विष्ण्वोश्च चण्ड्याः सर्वत्र वर्जयेत् ॥ 12 ॥

परन्तु, अर्हत या जिनदेव को शिव और सूर्य के आगे या पीछे कभी न बनाए। इसी तरह ब्रह्मा और विष्णु के पास बायें-दायें भी न बनाएँ और चण्डी के तो सभी ओर अर्हत या जिनदेव की स्थापना नहीं करनी चाहिए।

प्रसिद्धराजमार्गाच्च प्राकारान्तरतोऽपि वा ।
स्थापयेच्चान्यदेवांश्च बहिर्वास्तुकवर्जितम् ॥ 13 ॥

---

1. 'ब्रह्मा विष्णुः शशी सूर्य इन्द्रः स्कन्दो हुताशनः ।' इति देवताः पाठ। (3, 22)
2. 'दृष्टिपा(या ?)तहितं यच्च पुराघं न प्ररोहति ॥' इति देवता. पाठ। टीकायां— एत इति। दृष्टिवेधविवर्जिता इति ब्रह्मविष्ण्वादीनां परस्परदृष्टिवेधेन हीनाः, शिवदृष्टिवेधेन वा। 'दृष्टियातहितं यच्च' इत्यत्र 'दृष्टिपातहिता यत्र' इति स्यात्। तथा सति यत्र देवा दृष्टिपातवशाद् हितास्तत्र स्थाने पुराघं नगरस्य पापम् अमङ्गलमित्यर्थः, न प्ररोहति न प्रोद्भवतीत्यर्थः। (तत्रैव 3, 23)

ऐसे वास्तुक-वर्जित देव को तो अन्य देवों की तरह प्रसिद्ध राजमार्गों पर अथवा नगर के परकोटे के बाहर ही स्थापित करें।

दिशां दोषैः परित्यक्तः शिवसूर्याजिनादयः।
उभयोरन्तरे सद्माश्रितं **यत्तन्न** निन्दितम्॥ 14॥

शिव, सूर्य, जिनदेव आदि यदि दिशादोष से मुक्त हों तो उनके एक दूसरे के प्रासाद आपस में अन्तर से बने तो ये निन्दित नहीं कहे जा सकते।[1]

घाट्ये वै शतहस्तं$_{100}$ **स्याद् बाणे चैव** श्यातद्वयम्$_{200}$।
त्रिशतं$_{300}$ स्वयम्भूलिङ्गे **वास्त्वेवं** पुरमध्यगम्॥ 15॥

इनकी दूरी को सदा इस तरह ध्यान में रखें कि घड़ी हुई मूर्तियाँ एक दूसरे से सौ गज की दूरी पर रहे, बाणलिङ्ग से दो सौ गज दूर रहे, स्वयंभूलिङ्ग से तीन सौ गज दूर रहे, इस प्रकार इनको पुर के मध्य में स्थापित करें।

अथ शिवतीर्थोदकलक्षणं —

घटिते[2] शतहस्तेषु$_{100}$ **बाणे पञ्चशतेषु**$_{500}$ **च।**
स्वभुवि सहस्रहस्ते$_{1000}$ शिवतीर्थोदकं **स्मृतम्॥ 16॥**

शिव के तीर्थोदक (शैव तीर्थ के सरोवर का जल) का भी विधान इस तरह है कि घटित शिवलिङ्ग से 100 गज तक, बाणलिङ्ग से 500 गज तक और स्वयंभू शिवलिङ्ग से 1000 गज तक की चतुर्दिक भूमि का जल तीर्थोदक माना जाता है।

प्रदक्षिणा फलमाह —

देवस्य दक्षिणे गत्वा पुण्यं शैवार्चनादिकम्।
गत्वापरे दशगुणं सौम्ये दशगुणं तथा॥ 17॥

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में कहा गया है कि पूर्व और पश्चिम मुख वाले देवों का मुख दक्षिण और उत्तर में नहीं रखें। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इंद्र, कार्तिकेय— ये देव पूर्व और पश्चिम दिशा के मुख वाले हैं। वास्तु के मध्य में या बाहर जो देव स्थापित किए जाए, वे पुर के सम्मुख रखे जाए तो श्रेष्ठ है। शिव, ब्रह्मा, जिन और विष्णु इनके मुख चारों दिशा में रखना भी शुभ माना है। गणेश, भैरव, चण्डी, नकुलीश, नौ ग्रह, भूत और कुबेर का मुख दक्षिण में रखना शुभ है। मातृदेवता का देवालय उत्तर या दक्षिणाभिमुख करना और हनुमान का मुख नैर्ऋत्य कोण में करना चाहिए— पूर्वापरास्यं देवानां मुखं नो दक्षिणोत्तरम्। ब्रह्मा विष्णुः शिवार्केन्द्रा गुहः पूर्वापराङ्मुखः॥ नगराभिमुखाः श्रेष्ठा मध्ये बाह्ये च देवताः। शिवब्रह्माजिना विष्णुः सर्वाशाभिमुखाः शुभाः॥ गणेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशो ग्रहास्तथा। भूताद्या धनदाश्चैव दक्षिणास्या शुभाः स्मृताः॥ मातृणां सदनं कार्यं दक्षिणोत्तरदिङ्मुखम्। हनुमान् वानरश्रेष्ठो नैर्ऋतास्यो विदिङ्मुखः॥ ज्ञात्वा सर्वं स्थापिता येन रीत्या देवा दैत्या मानुषाद्याश्च सर्वे। दृष्टात्मानं व्यापकं सृष्टिकारं स्थायी द्रष्टा विश्वकर्मा स वन्द्यः॥ (देवता. 2, 24-28)
2. 'धातवे शतहस्तेषु' इति देवता. पाठः। (6, 123)

शिवार्चन आदिक में देवता की प्रदक्षिणा में पश्चिम तक जाने से दस गुणा पुण्य होता है और उत्तर व आगे जाने पर दस गुणा पुण्य प्राप्त होता है।

आग्नेय्यां तेजसो वृद्धिर्नैर्ऋत्ये विघ्ननाशनम्।
वायव्ये श्रीश्चपुण्यं च त्वीशाने सर्वकामना॥ 18॥

प्रदक्षिणा करते हुए आग्नेयकोण तक भक्त के तेज की वृद्धि और नैर्ऋत्यकोण तक उसके सभी विघ्नों का नाश होता है। वायव्यकोण तक धन व पुण्य तथा ईशानकोण तक पहुँचने पर सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

धर्मार्थकाममोक्षाणां सर्वविघ्नविनाशकम्।
सर्वतीर्थादिपुण्यं च स्नात्वा देवाग्रतो भवेत्॥ 19॥

इसी प्रकार देवता के आगे स्नान करने से तो सभी तीर्थों का पुण्य मिलता है व धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होकर सभी विघ्नों का नाश हो जाता है।

घटिते जगतीमध्ये बाणे गर्भगृहे भवेत्।
स्वभुवि पीठिकास्थाने चण्डश्चले न विद्यते॥ 20॥

घटित शिवलिङ्ग में जगती के मध्य तक, बाणलिङ्ग में गर्भगृह तक, स्वयंभू शिवलिङ्ग में पीठिका स्थान तक चला जा सकता है परन्तु चण्ड के आगे चलना नहीं होता यानी चण्ड के स्थल का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए।[1]

अथ देवताप्रदक्षिणनियमः —

एकां चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके।
चतस्रो विष्णुदेवस्य शिवस्यार्धा प्रदक्षिणा॥ 21॥

प्रदक्षिणा करने का नियम यह है कि चण्डी (देवी) की केवल एक, सूर्य की सात, विनायक की तीन परिक्रमा करें। विष्णु की चार परिक्रमा करें किन्तु महादेव की आधी प्रदक्षिणा करने का ही विधान है।[2]

---

1. यह स्पष्टीकरण आगे श्लोक 23 में आया है। प्रासादमण्डनं में आया है कि शिवलिङ्ग के स्नानाभिषेक के उपरान्त जल गूढमार्ग से बहता हुआ चण्ड के मुख पर गिरना चाहिए। देवाभिषेक से गिरकर बहते हुए जल को कभी लाँघना नहीं चाहिए। ऐसा करने पर पूर्ववत पुण्यों का नाश होता हैं—शिवस्नानोदकं गूढमार्गं चण्डमुखे क्षिपेत्। दृष्टं न लङ्घयेत्तत्र हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥ (2, 32) देवतामूर्तिप्रकरणं में मण्डन ने यह भी कहा है कि शिवलिङ्ग की सम्मुख दिशा में, शिवतीर्थोदक में स्नान से महत्पुण्य की प्राप्ति होती है। प्रणालादि से निस्रत जल का उलङ्घन करने से महापाप लगता है- स्नानकृते महत्पुण्यं लिङ्गादिषु दिशं प्रति। लङ्घिते च महत्पापं शिवस्नानानोदके नृणाम्॥ (देवता. 6, 125)
2. नारदपुराण में भी आया है— देव्याः प्रदक्षिणामेकां सप्त सूर्यस्य भूमिप॥ तिस्रो विनायकस्यापि चतस्रो विष्णुमन्दिरे। (नारद. पूर्व. 13, 136-137) और— विष्णुसोमार्कविघ्नानां वेदार्धेन्द्वद्रिवह्नयः॥ (तत्रैव पूर्व. 67, 105)

जैनदेवालये विशेष: —

जैने च ह्यग्रसंस्थाने स्तोत्रमन्त्रादिनार्चनम्।
न देयं वर्तने पृष्ठं सन्मुखे द्वारलङ्घनम्॥ 22॥[1]

जिनदेव के आगे स्तोत्र-स्तवन, मन्त्रादि से अर्चना करें किन्तु निकलते समय अपनी पीठ पीछे नहीं होने दे अपितु देव के सम्मुख ही रहते हुए द्वार का उल्लङ्घन करना चाहिए।

स्नानोदकं **गूढमार्गे तदा** कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
दृष्टं न लङ्घयेत्स्नानं **हन्ति पुण्यं** पुराकृतम्॥ 23॥

जब प्रदक्षिणा कर रहे हों तब गूढ़मार्ग से आने वाले स्नानोदक देख लेने पर उसे उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर पूर्वार्जित पुण्यों का हनन होता है।

लिङ्गादीनां प्रणालनियम: —

पूर्वा-परे यदा द्वारं प्रणालं चोत्तरे शुभम्।
[2]**प्रशस्तं** शिवलिङ्गानमिति **शास्त्रार्थनिश्चय:**॥ 24॥

जो मन्दिर पूर्व अथवा पश्चिम दिशा के द्वार वाले हों, उनमें पानी निकालने की प्रणाली या प्रणाल-परनाला उत्तर दिशा में रखना शुभ है। शिवलिङ्ग के लिए तो यह विशेष प्रशस्त है, ऐसा शास्त्रों का निश्चय है।

अर्चानां मुखपूर्वाणां **प्रणालं वामत: शुभम्।**
उत्तरास्य न विज्ञेया अर्चारूपेण **देवता:**॥ 25॥

जिस प्रतिमा का मुख पूर्व दिशा की ओर हो, उसका प्रणाल बाईं ओर शुभ होता है तथा अर्चा रूपी देवता कभी उत्तराभिमुख नहीं जाना गया है।

जैनमुक्ता: **समस्ताश्च** याम्योत्तरक्रमै: **स्थिता:**।
वाम-दक्षिणयोगेन **कर्तव्यं** सर्वकामदम्॥ 26॥

जैन प्रतिमाएँ समस्त उत्तर-दक्षिण क्रम में स्थित होने से मुक्त है। अत: उन्हें बायें-दायें योग से सर्वकामद बनाया जा सकता है।

---

1. 'जैनदेवाग्रसंस्थाने स्तोत्रमन्त्रार्चनादिकम्। नैव दृष्टि: प्रदातव्या (सन्मुखं ?) द्वारलङ्घनम्॥' इति देवतामूर्ति. पाठ:। (6, 126; तुलनीय— अग्रतो जिनदेवस्य स्तोत्रमन्त्रार्चनादिकम्। कुर्यान्न दर्शयेत्पृष्ठं सन्मुख द्वारलङ्घनम्॥ प्रासादमण्डनं 2, 34)
2. 'प्रशस्तं सर्वदेवानामिति शास्त्रार्थनिश्चय:॥' इति देवता. पाठ:। (6, 128)

मण्डपादीनां विधानं —

वामे वामं प्रकुर्वीत दक्षिणे दक्षिणं शुभम्।
मण्डपादिषु प्रतिमा येषु युक्त्या विधीयते॥ 27॥

वाम मुखी प्रतिमा का मण्डप वाम दिशा में और दक्षिण मुखी प्रतिमा का मण्डप दक्षिण दिशा में शुभ होता है। प्रतिमा और मण्डपों की यही युक्ति बताई गई है।

जगतीकर्णे ये देवास्तान् कुर्याज्जगतीस्थितान्।
पृष्ठादग्रोभयोः पार्श्वे शास्त्रार्थैर्युक्तमुत्तमम्॥ 28॥

जगती के कर्ण के जो देव हैं, उन्हें जगती में स्थित करें और पीछे, आगे व दोनों पार्श्वों में भी बनाया जाना शास्त्र सम्मत और उत्तम माना गया है।

कोणदिशाश्रितलिङ्गस्थापनफलमाह —

ईशानमाश्रयेत् किञ्चिच्छिवलिङ्गेषु कामदम्।
ईशाने मुक्तिदं प्रोक्तं भुक्तिदं चोत्तराश्रितम्॥ 29॥

इस बात का विशेष ध्यान रखें कि शिवलिङ्ग को सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला बनाने के लिए थोड़ा ईशान कोणाश्रित स्थापित करना चाहिए। ईशानकोण की ओर शिव मुक्तिदाता कहे गए हैं और वही यदि उत्तर दिशा की ओर आश्रित हो तो भोगों को देने वाले होते हैं अर्थात् संसार में भटकाते हैं, मुक्तिदाता नहीं होते।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादसंस्थानोन्मानलक्षणाधिकारो नामाष्टोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 108॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद संस्थान उन्मान लक्षण अधिकार नामक एक सौ आठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 108॥

प्रासादजीर्णवास्तुनिर्णयो नाम नवोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 109॥

अधुना जीर्णवास्तुचालने शुभाशुभं। विश्वकर्मोवाच —

अल्पलेपं बहुलेपं समसन्धि शिरोगुरुः।
अप्रतिष्ठं पादहीनं तच्च वास्तु विनश्यति॥ 1॥

(इस सूत्र से प्राचीन वास्तुओं के जीर्णोद्धार के नियम दिए जा रहे हैं। सूत्रधार गोविन्द ने इन्हीं सूत्रों के आधार पर 'वास्तूद्धारधोरणी' ग्रन्थ की रचना की है) विश्वकर्मा बोले कि जो गृह या प्रासाद अधिक लेपयुक्त हो, न्यून लेपयुक्त हो,

समसन्ध वाला हो, जो ऊपरी सिरे पर भारी होने के कारण ठीक से स्थिर नहीं हो, नीचे का भाग कमजोर हो— अप्रतिष्ठ हो यानी जिसकी नींव कमजोर हो या पूरी भरी गई नहीं हो तो वह वास्तु निर्माण शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सशल्यं पादहीनं च ह्येकद्रव्येण पूरितम्।
अचिरात्तच्चालयेद्वा तूर्ध्वगं तद्विनश्यति॥ 2॥

अस्तु, जो वास्तु शल्य सहित हो, पादहीन या बिना सुदृढ़ नींव का हो, एक ही द्रव्य से बनाया गया हो, उसमें कहीं भी आवश्यक चूना आदि का समुचित प्रयोग न किया गया हो तो ऐसे वास्तु को शीघ्र हटा लें क्योंकि उसके ऊपर की मंजिल बनाने पर अवश्य ही नष्ट-भ्रष्ट होगा।

पुराद्रव्यफलं —

एकवास्तुचितं द्रव्यमन्यवास्तुनि वेशयेत्।
प्रासादे न भवेत्पूजा गृहे च न वसेत्पतिः॥ 3॥

यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि एक ही वास्तुचित द्रव्य अर्थात् चुनाई में काम लिया गया पुराना द्रव्य दूसरे वास्तु के नवनिर्माण में काम नहीं लें, क्योंकि ऐसे बने प्रासाद में पूजा नहीं होगी और ऐसे बने किसी गृह में गृहस्वामी का निवास कभी सम्भव नहीं होगा।

वास्तुचालनफलं —

अचाल्यं चालयेद्वास्तु प्रासादे शिवब्रह्मणोः।
वंशच्छेदो भवेत्तस्य ह्यचिरेणैव शाश्वतः॥ 4॥

इसी प्रकार इस बात को भी पूरी तरह ध्यान में लें कि शिव व ब्रह्मा के प्रासाद सदा ही अचाल्य है, उन्हें कभी नहीं हटाया जाता है परन्तु किसी ने उन्हें चलाने, हटाने का दुस्साहस किया तो समझ लें कि उसका शाश्वत रूप से चले आ रहे वंश का शीघ्र ही उच्छेद हो जाएगा।

पूर्वस्थितं परित्यज्य चान्यद् वास्तु तथोपरि।
पूर्वत्यागानुदोषैश्च कर्ता तु नरकं व्रजेत्॥ 5॥

इसी भाँति पहले जिस स्थिति में वास्तु की विद्यमानता हो, उसे यदि छोड़ दिया जाए और उस पर अन्य नया वास्तु बना दिया जाए तो ऐसा करने वाला व्यक्ति पूर्व की स्थिति को त्यागने के दोष के कारण सीधा नरक में जाता है।

स्वस्थानसंस्थितं यच्च विप्रवास्तुशिवालयम्।
न चालयेत् सर्वदेशे चलिते राष्ट्रविभ्रमः॥ 6॥

इसलिए जो विप्रों का बनाया वास्तु, शिवालय अपने स्थान में बना हो, उसे कभी भी विचलित नहीं करें, अन्यथा उसे चलित करने पर सारे देश के निवासियों में मतिभ्रम हो जाएगा।

बाणलिङ्गस्य प्रासाद निर्देशमाह —

मरकतं बाणलिङ्गं मुक्ताजं रत्नजं तथा।
अव्यक्तं व्यक्तकं प्रोक्तं प्रासादे कारयेद् बुधः ॥ 7 ॥

बुद्धिमानों को चाहिए कि मरकत के बाणलिङ्ग और मुक्ता व रत्न से बनने वाले बाणलिङ्ग या अव्यक्त, व्यक्त और प्रोक्त बाणलिङ्ग को प्रासाद में ही स्थापित करें।

वृषभस्य प्रकारदृष्टिस्थाने —

बाणलिङ्गे वृषं कुर्यात् स्वयम्भूमुखमृण्मये।
सहस्रलिङ्गे च शतलिङ्गे न्यूनाधिकं विदुः ॥ 8 ॥

स्वयम्भू शिव के बाणलिङ्ग के सामने मुख किए हुए नन्दीकेश्वर की स्थापना करनी चाहिए। इसी प्रकार मिट्टी के सहस्रलिङ्ग अथवा शतलिङ्ग के पूजा निर्माण में न्यूनाधिक समझें अर्थात् चाहे तो वृष बनाएँ या नहीं बनाएँ।

परिधिश्च समो दीर्घ उच्छ्रये पीठसन्निभः।
पञ्च$_5$ भागोन्नतश्चैवं सप्त$_7$ भागायतो वृषः ॥ 9 ॥

वृष की पीठ परिधि की दीर्घता-मोटाई जितनी ऊँची बनाएँ और उस पर वृष को ऊँचाई में पाँच भाग व आयत लम्बाई में सात भाग के अनुपात में बनाएँ।

पादौ जानु कटिर्यावदर्चादृष्टिश्च वाहने।
वृषदृष्टिर्विष्णुभागे घटितेषु च शास्त्रतः ॥ 10 ॥

शिव की अर्चा यानी मूर्ति हो तो वृष की ऊँचाई मूर्ति के पाँव तक, जङ्घा तक, कटि तक अथवा दृष्टि तक ही बनाएँ और शास्त्रतः घटित हुए शिवलिङ्ग के सामने वृष की दृष्टि शिवलिङ्ग के विष्णुभाग से ऊपर कदापि नहीं रखें।

अर्चा श्रेष्ठा तथा लिङ्गं निलयांशेषु सर्वतः।
वृषं न्यूनाधिकं बाणे रत्नजे च स्वयम्भुवि ॥ 11 ॥

शिव-प्रासाद के अंशों के नियमानुसार बनी अर्चा या लिङ्ग सब तरह से श्रेष्ठ होता है परन्तु बाणलिङ्ग, रत्नलिङ्ग अथवा स्वयम्भूलिङ्ग के प्रसङ्ग में वृषाकार में न्यूनाधिक्यता हो सकती है।[1]

---

1. दीपार्णवं में कहा है कि प्रासाद रेखाएँ कर्ण से चौड़ी हो, उसके दस भाग करके आधे भाग की शिवलिङ्ग की मोटाई करें। उस शिवलिङ्ग की लम्बाई के मान का नन्दी लम्बा करें। ये मान सान्धार

जीर्णवास्तुगुणदोषाः —

विषमपदस्तुलास्तम्भं पादभित्तिनष्टकम्?।
क्रमं पदवलितं यच्च न शुभं कर्तृकारके॥ 12॥

विषम पद वाले तुला स्तम्भ पादभित्ति को नष्ट करने वाले सिद्ध होते हैं अतएव उनके पद को वलित करने वाले क्रम को कार्यकर्ता शुभ नहीं मानते हैं।

खण्डितं स्फुटितं भग्नं चलितं चालितं तथा।
पतितं पातितं जीर्णमग्निर्लीढं समुद्धरेत्॥ 13॥

वास्तुशास्त्र का यह विधान है कि खण्डित, स्फुटित, फटा हुआ, भग्न या टूटा हुआ, चलित या अपने स्थान से हटा हुआ, चालित या अपने स्थान से किसी के द्वारा हटाया गया, पति या गिरा हुआ, पातित या गिराया गया, जीर्ण या बहुत काल से क्षरित हो गया हो, अग्नि से झुलसाया गया हो— ऐसे वास्तु का जीर्णोद्धार समुचित विधान से करना चाहिए।

प्रासादे चाग्रहीने तु भोग्यस्थानं न विद्यते।
अप्रशस्तं विना न्यासैः स्त्रीपुंसां च सुखं तथा॥ 14॥

जो प्रासाद अपने अग्र भाग से हीन या रहित हो, उसमें कोई भोग स्थान होता। वह बिना न्यास के अप्रशस्त माना गया है जैसे स्त्री-पुरुषों को भी बिना न्यास के सुख मिलना अप्रशस्त है।

अथ प्रतिमार्थ विचारमाह —

देवो भ्रष्टस्तथा भग्नो विषमे च तटे स्थितः।
यथाप्रतिष्ठितश्चार्यैस्तत्रदोषो न विद्यते॥ 15॥

जो देवमूर्ति स्थानभ्रष्ट हो, भग्न हो, विषम तट पर स्थित हो गई हो, उसको आचार्य पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर दे तो इसमें कोई दोष नहीं माना जाता है।

तत्तत्स्थानेषु **ये देवाः स्थापिताश्च महत्तरैः।**
तत्सान्निध्यं सर्वकाले व्यङ्गितानपि **न त्यजेत्॥ 16॥**

जिन-जिन स्थानों पर महापुरुषों ने जो देवमूर्तियाँ स्थापित की है, उनके सान्निध्य के आसपास की व्यङ्गित या खण्डित प्रतिमाओं को भी हमेशा के लिए नहीं त्यागना चाहिए।

प्रासाद के योग्य है— प्रासादे हि दशांशेन भागार्धं लिङ्गमेव च। लिङ्गमानं प्रमाणं तु तन्मानो वृषभो भवेत्॥ (दीपार्णव 14, 12)

यद्यस्य स्थापतिं वास्तु तत्तथैव हि कारयेत्।
अव्यङ्गं चालितं वास्तु दारुणं कुरुते भयम्॥ 17॥

जिस-जिस देवमूर्ति का वास्तु स्थापित किया गया था, उसे उसी रूप में पुनः करना चाहिए क्योंकि जो देवमूर्ति अव्यङ्ग या पूरी तरह शुद्ध हो, कहीं से खण्डित नहीं हो, उसे उसके वास्तु से चालित करना, हटाना दारुणभय को उत्पन्न करने का कारण होता है।

अथ चेत् चाल्यते तत्तु जीर्णं व्यङ्गं च दूषितम्।
आचार्यैः शिल्पिभिः प्राज्ञैः शास्त्रदृष्ट्या समुद्धरेत्॥ 18॥

इसलिए, यदि किसी देवता की मूर्ति को जीर्ण हो जाने पर, खण्डित हो जाने पर अथवा दूषित हो जाने पर चालित करना पड़े या हटाना पड़े तो सभी आचार्य, शिल्पी व बुद्धिमान् लोग मिलकर शास्त्रदृष्टि को ध्यान में रखकर उसका पुनः समुद्धार करें और उसे पुनः यथावत् स्थापित करें।

स्वस्थाने संस्थितं वास्तु व्यङ्गदोषैश्च वर्जितम्।
तत्रैव चालयेत्प्राज्ञो बाह्यवास्तुनि कारयेत्॥ 19॥

अपने स्थान पर स्थित वास्तु जो किसी भी प्रकार के खण्डित दोष से रहित हो, उसे समझदार व्यक्ति को चाहिए कि कभी भी नहीं चालित करें और उसे वास्तु के बाहर भी नहीं करें।

पूर्ववास्तुस्थितिं त्यक्त्वा चान्यवास्तु तथोपरि।
विनश्यत्येव तद्वास्तु मृत्युः कारावरादिषु॥ 20॥

ध्यान रहे कि जो व्यक्ति पूर्व वास्तु की स्थिति को त्याग करके उस पर अन्य वास्तु का निर्माण करता है, वह वास्तु तो अवश्य विनष्ट होगा ही और उस पर उसके बनाने वाले कारीगर की भी मृत्यु का कारण बनता है, अतः पुनर्निर्माण पूर्व की स्थिति के अनुसार ही होगा।

द्रव्योपयोगनियमाः —

वास्तुद्रव्ये यदाहीनं दारुकर्मणि वा तथा।
समुद्धरेच्च तत्प्राज्ञो वास्तु द्रव्यविशेषतः॥ 21॥

वास्तु द्रव्यों में कोई कमी रह गई हो अथवा लकड़ी के काम में कोई न्यूनता हो तो उसे समझदार शिल्पी तद्वत् द्रव्य विशेष से उक्त वास्तु का समुद्धार कर दे।

उद्धरेच्च तथा दिव्यं वास्तुस्थानं न चालयेत्।
स्वस्थाने तूद्धते वास्तौ स्वर्लोकं लभते सुखात्॥ 22॥

उद्धार किए हुए दिव्य या देवतामूर्ति को तथा वास्तु स्थान को कभी चालित नहीं करें क्योंकि जो वास्तु अपने स्थान पर ही उद्धरित होता है, वह कर्ता को बड़ी आसानी से स्वर्गलोक का लाभ दिलाने में सक्षम होता है।

यानि खण्डितदग्धानि विशीर्णस्फुटितानि च।
तेषां न मन्त्रसंस्कारो गतासुस्तत्र देवता॥ 23॥

इसी प्रकार इस बात का भी पूरा ध्यान रखें कि जो भी खण्डित, दग्ध, टूटी-फूटी, तड़की हुई देवमूर्तियों हों, उनमें से उनकी देवात्मा चली गई होती है अत: उनका किसी मन्त्र से संस्कार नहीं होता।[1]

वास्तुवेधे स्थिता देवी पद्मिनी नाम राक्षसी।
पीडा पुत्रकलत्राणां वास्तुविद्भिरुदाहृता॥ 24॥

वास्तुविदों ने यह बात बड़ी स्पष्ट कही है कि वास्तु का वेध करती हुई स्थिति में यदि पद्मिनी देवी नाम की राक्षसी हो तो वह पुत्रों, पत्नियों व परिवार वालों के लिए पीड़ाकारी होती है।

मण्डलजालककीलकसुषिरछिद्रसन्धिकारेति महादोषा: —

मण्डलं जालकं चैव कीलकं सुषिरं तथा।
छिद्रं सन्धिश्च काराश्च महादोषा इति स्मृता:॥ 25॥

किसी प्रासाद में ये लक्षण यदि कहीं दिखाई दे तो उनको महादोष समझना चाहिए— चूना या अराइश पर धब्बे या मण्डल पड़ जाना, जाले या छज्जे बन जाना, कीलें निकल जाना, पोला या सुषिर हो जाना, दीवारों में छिद्र हो जाना, सन्धियों का उघड़ जाना या दीवार फट जाना और निरन्तर बन्द ही पड़े रहना।

मृत्काष्ठे शैलजं कुर्याच्छैलजे धातुजं तथा।
धातुजे रत्नजं कुर्यादुत्तमोत्तमतो न्यसेत्॥ 26॥

(जीर्णोद्धार प्रसङ्ग में विचारणीय है कि यदि पूर्व निर्मित वास्तु अल्पद्रव्य का हो तो उसे विशेष द्रव्ययुक्त अथवा अधिक द्रव्य वाला बनाया जा सकता है) इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि यदि पूर्व वास्तु मृण से निर्मित हो तो उसे काष्ठ

---

1. पाञ्चरात्र विष्णुसंहिता में आया है कि जिस प्रकार जीर्ण देह को त्यागकर आत्मा अन्य देह में चली जाती है वैसे ही जीर्ण, क्षरित बिम्ब से देवात्मा अन्यत्र चली जाती है, यह वस्त्र के त्याग की भाँति ही होता है, इसमें यदि विलम्ब हो जाए तो यातुधान उस पर दृष्टि रखने लगते हैं— देहं देही यथा जीर्ण त्यक्त्वा देहान्तरं व्रजेत्। तयक्त्वा जीर्ण तथा बिम्बं देवोऽपि भजते नवम्॥ अर्चा त्यजति देवेशो जीर्णो जीर्णामिवस्त्रजम्। मा विक्षन् यातुधाना इत्युद्धरेदविलम्बितम्॥ (विष्णुसंहिता 24, 3-4)

का, काष्ठ का बना हो तो पाषाण का, पाषाण का हो तो धातु का तथा धातु निर्मित हो तो उसे रत्नादि से बनाना चाहिए।[1] यह क्रम उत्तरोत्तर होगा।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
जीर्णवास्तुनिर्णयाधिकारो नाम नवोत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 109 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में जीर्ण
वास्तु निर्णय अधिकार नामक एक सौ नौवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 109 ॥

प्रासादनवजीर्णवास्तुकं दशोत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 110 ॥

इत्यमनन्तर नवजीर्णप्रासादवास्तुलक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

अभेद्यपतितं **भेद्यं नार्चागेहं** सुरालयम्।
शस्ताकारमिदं **प्रोक्तं** मूर्तास्तास्तत्र **देवताः** ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा आगे बोले कि जो प्राचीन प्रासाद अभेद्य होते हुए भी गिर जाए, पतित हो जाए, उसे भेद्य या भिन्न प्रासाद कहते हैं। ऐसे सुरालय में मूर्ति में सत्व नहीं रहता। इनको शस्ताकार प्रासाद कहते हैं क्योंकि वहाँ की मूर्तियों में देवता अस्त हो चुके होते हैं।[2]

---

1. यह श्लोक सूत्रधार मण्डन के मत से तुलनीय है — वास्तु द्रव्याधिकं कुर्यान्मृत्काष्ठे शैलजं हि वा। शैलजे धातुजं चैव धातुजे रत्नजेऽथवा॥ (प्रासादमण्डनं 8, 8) मयमतं का अनुकर्मविधानं संज्ञक अध्याय जीर्णोद्धार कार्य पर आधारित है। इसके कुछ निर्देश विचारणीय है— भवनं भिन्नं पतितं वक्रं प्राचीनतत्त्वं च जीर्णं च॥ जातिश्छन्दविकल्पा भाससंस्थानकेभ्य इतरं च। यान्यप्यलक्षणानि हि तानि च तत्तल्लिङ्ग भेदवशात्॥ तत्र द्रव्यैरन्यैरुत्कृष्टैर्वा नवैस्तु घटैः। आयाद्यथोचितं तद्विस्तारोच्चादिभिस्त्व-लङ्कार्यैः॥ यानि सलक्षणकानि प्रत्यङ्गोपाङ्गदेशेषु। तानि च (तत्) तदद्रव्यैर्हीनादीन्येव येन केन (चित्)॥ यावद्धनतां यान्ति यावत्सौम्यप्रयोज्यानि। यावत्तदेव धीमान्नवतां प्रकर्तुमिच्छति चेत्॥ तत्तद्विपुलोत्सेधे सौष्टिककोष्ठाद्यलङ्कारैः। नात्येकमुदितं तत्स्वाकृत्या सर्वथा तज्ज्ञैः॥ नागरभवने नागरमुदितं स्याद् द्राविडभवने द्राविडमुदितम्। वेसरभवने स्याद् वेसरं शुभदमर्पितभवनेऽप्यर्पितभवनम्॥ अर्पितादितरभवनेऽप्यर्पितादितर (भवनम्)। योज्यं क्रमेण विदुषा वस्तु सदा सर्वयत्नेन॥ सप्राकार (विमाने) सालाद्बहिर्वाबहिस्तूकाः। प्रासादे या गतयः कुरुते तद्विधिं सम्यग्गाढमथ वक्ष्ये॥ मूलविमानसमं वा तदधिकमन्यतरं निरुतेष्टम्। दिक्षु समोन्नतत्त्वं विदिषु शेषेषु वा कुर्यात्॥ विमान निष्क्रमं मूलाष्टमूलाब्धिहीनं तु युक्तिवशात्। उत्तरतो वा पुरतः परितः सालं तु वर्धयेद् विधिना॥ भवने जीर्णमथ तत्कर्तव्यं चेत्तदन्यस्मिन्। दिक्षु चतुर्ष्वपि नेष्टं तस्य बाह्ये वस्तुविदा॥ विपरीते तु विपत्त्यै तस्माद्युक्तक्रमेण कर्तव्यम्। सन्त्यज्य नष्टवस्तुगर्भविधानात् पुनः स्थाप्यम्॥ (मय. 35, 2-14)
2. 'शिल्परत्नाकर' नामक ग्रन्थ में नर्मदाशङ्कर मूलजीभाई सोमपुरा ने कहा है कि जीर्ण वास्तु में भिन्नदोष जीर्णता से उसके बिखराव टूटने के दोष सात बताए गए हैं— 1. मण्डल या स्थान-स्थान पर खड्डे पड़े हों, 2. जालक या स्थान-स्थान पर मकड़ी के जाले बने हों, 3. कलिक स्थान-स्थान पर भँवरी के बिल होना, 4. सुषिर या दरारें होना, 5. छिद्र या चूने की छत में दरारें पड़ना, छन्दी या दीवारों का झुकने

ब्रह्मविष्णुरवीनां च शम्भोः कार्या यदृच्छया।
गिरिजाया जिनादीनां मन्वन्तरभुवां तथा॥ 2॥
एतेषां च सुराणां च प्रासादा भिन्नवर्जिताः।
प्रासादमठवेश्मान्यभिनिनि शुभदानि हि॥ 3॥

ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शम्भु—इनके प्रासाद भिन्नदोष युक्त हो या न हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता परन्तु इनके अतिरिक्त गिरिजा, अम्बा, दुर्गा, जिनदेव, मन्वन्तर आदि देवताओं के प्रासाद सब भिन्न दोषों से रहित बनाने चाहिए। इसी तरह प्रासाद, मठों के गृह आदि भी अभिन्न अर्थात् भिन्नदोष से रहित होने पर शुभ माने जाते हैं।

मूषाभिर्जालकैर्द्वारैर्गर्भो यत्र न विद्यते।
अभिन्नं कथ्यते तच्च प्रासादो वेश्म वा मठः॥ 4॥

जहाँ मूषा या खड्डे, मकड़ी के जाले, द्वार या गर्भ खण्डित न हो, ऐसे प्रासाद या मठ को अभिन्न गृह, वेश्म या अभिन्न मठ कहा जाता है।

कुक्षिद्वारैस्तथा जालैर्मूषा रश्मिप्रभेदिता।
भिन्नस्तत्र स विज्ञेय आलयः सिद्धिकामदः॥ 5॥

जिस प्रासाद, मठ या वेश्म में कुक्षि अपने पार्श्व की भित्ति से, द्वार से, मकड़ी के जालों और स्थान-स्थान पर पड़े मूषा या खड्डों से सूर्य की रश्मियाँ भीतर झाँकती हों, उन्हें भिन्न अर्थात् जीर्ण, खण्डहर कहा जाता है।

पुरतः पृष्ठतो द्वारावुभौ कुक्ष्योः प्रभेदितम्।
मारुतैः स्पृश्यते यत्र भिन्नं नाम तदुच्यते॥ 6॥

जो प्रासाद, मठ या वेश्म आगे से, पीछे से, द्वारों से, उभय पार्श्व कुक्षियों से प्रभेदित या खण्डित-जर्जरित हो, जिसमें से होकर बाहर की हवा भीतर आती हो, उन्हें भिन्न अर्थात् खण्डहर के नाम से जाना जाता है।

व्यक्ताव्यक्तं लयं कुर्यादभिन्ना भिन्नमूर्तयोः।
मूर्तिलक्षणजं स्वामी प्रासादं तस्य तादृशम्॥ 7॥

अतः अभिन्न या अखण्डित और भिन्न या खण्डित मूर्तियों के अनुरूप ही व्यक्त अखण्डित और व्यक्त खण्डित के गुण-दोष देखकर ही उनके रहने के लय अर्थात् स्थान व्यक्त और अव्यक्त बनाएँ क्योंकि प्रासाद का स्वामी जिस तरह इष्ट वस्तु से अपना रक्षण करता है और अनिष्ट वस्तु से अपना बचाव, त्याग करता है उसी

लगना और कारा या दीवारों का फट जाना। ऐसे दोष वाले प्राचीन प्रासाद भिन्न प्रासाद कहे जाते हैं और इन दोषों से रहित प्रासादों को अभिन्न प्रासाद कहा जाता है। (शिल्परत्नाकर, ध्रांगध्रा 1939, पृष्ठ 202)

प्रकार प्रासाद, भवनादि भी व्यक्त इष्ट से तथा अव्यक्त अनिष्ट से अपना व्यवहार रखते हैं।

चतुर्दोषमाह —

दिग्मूढो नष्टछन्दश्च ह्यायहीनः शिरोगुरुः।
ज्ञेया दोषास्तु चत्वारः प्रासादाः कर्मदारुणाः॥ 8॥

कर्मकार शिल्पियों को चाहिए कि प्रासादों के निम्न चार दोषों को ठीक ठीक जान लें— 1. दिग्मूढ़ (दिशा ज्ञान से हीन), 2. नष्टछन्द (जिसके निर्माण में कोई शास्त्रीय छन्द का प्रयोग नहीं हुआ हो), 3. आयहीन (जो आय के प्रमाण से हीन हो) और 4. शिरोगुरु (जो सभी प्रकार से ठीक होने पर ऊपरी भाग से भारी बना हुआ हो और नीचे का भाग हल्का हो)।

कुत्र दोषो न विद्यते —

पूर्वोत्तरं तु दिग्मूढं मूढं पश्चिमदक्षिणम्।
मूढामूढं च तेषां स्याद्यत्र तीर्थं समाहितम्॥ 9॥

मूढ़ के लक्षण स्पष्ट है कि जो देवालय पूर्वोत्तर या ईशान अथवा पश्चिम-दक्षिण या नैर्ऋत्य की ओर बना हुआ मुख का हो, उसे दिग्मूढ़ कहते हैं। ऐसे मूढ़ प्रासाद भी अमूढ़ माने जा सकते हैं यदि इनके साथ कोई तीर्थ जुड़ा हुआ हो।[1]

सिद्धायतनतीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च।
स्वयम्भूबाणलिङ्गेषु तस्य दोषो न विद्यते॥ 10॥

क्योंकि, सिद्ध लोगों के आवास स्थलों में बने तीर्थों में, नदियों के सङ्गम पर बने देवालयों में, स्वयम्भू और बाणलिङ्ग वाले प्रासाद में इन मूढ़ दोषों को नहीं माना जाता है, मानो ये दोष उनमें है ही नहीं।

व्यक्तं तु मृण्मयं चाल्यं त्रिहस्तान्तं तु शैलजम्।
दारुजं पुरुषार्धं तु तत ऊर्ध्वं न चालयेत्॥ 11॥

जो भी प्रासाद, वेश्म, भवन आदि व्यक्त हों, उनका जीर्णोद्धार करते समय ध्यान रखें कि मृण्मय मिट्टी का प्रासाद हो तो उसे गिरा सकते है और उसके स्थान पर नया बना सकते है, शैल-पाषाण का भी यदि तीन गज तक ही बचा हो तो उसे भी गिरा कर नया बनाया जा सकता है। इसी तरह लकड़ी का बना हुआ भी यदि

---

1. मण्डन ने यही मत प्रासादमण्डनं में भी उद्धृत किया है। ईशान और नैर्ऋत्य कोण में टेढ़ा भी बन गया हो तो वहां दिग्मूढ़ उसी प्रकार नहीं माना जाता जैसे कि तीर्थस्थल में निर्मित प्रसाद में मूढ़ामूढ़ का दोष नहीं होता है।

पुरुष की ऊँचाई के आधे (60 अङ्गुल) तक हो तो उसे भी गिराकर नया बना सकते हैं परन्तु इन प्रमाणों के अतिरिक्त ऊँचे किसी भी प्रासाद, वेश्मादि को नहीं गिराना चाहिए और उन्हीं पर आगे नवनिर्माण होना चाहिए।

पातनाद् व्याधिदातात्मा महादुःखाय जायते।
सप्तोत्सवयात्राश्च तेषां रूपाणि कारयेत्॥ 12॥

क्योंकि, इनके गिराने से व्याधित आत्मा से महान दुःख पैदा हो सकता है। अस्तु, जीर्णोद्धार उपरान्त 'सप्त-उत्सव-यात्रा' के लिए भी उनमें तरह-तरह की सुन्दर रूपाकृतियों का निर्माण करके मनोहर रचना युक्त बनाना चाहिए।[1]

अथ वेधस्य फलमाह —

स्तम्भवेधैर्यथावास्तु वास्तुवेधैस्तथा सुराः।
देववेधे भवेन्मृत्युः शिल्पिकारावरादिषु॥ 13॥

जीर्णोद्धार और नवनिर्माण में भी वास्तु में स्तम्भवेध अर्थात् स्तम्भ आड़े आना, वास्तुवेध देवता से अर्थात् देवता के आड़े किसी वास्तु का सामने पड़ना या देववेध अर्थात् किसी देवता का सामने आड़े आना—इन वेधों के होने पर शिल्पी और उसके अन्य साथी कर्मकारों की भी मृत्यु का कारण हो सकता है।

एको वा बहुरूपश्च ब्रह्मणः शिवसूर्ययोः।
स्वके स्वके वै स्थाप्याः प्रासादे भिन्नवर्जिते॥ 14॥
भिन्नाश्चतुर्विधा ज्ञेया अष्टधा मिश्रका मताः।
मिश्रकाः पूजितास्तत्र भिन्ना वै दोषकारकाः॥ 15॥

ब्रह्मा के, शिव के और सूर्य के प्रासाद एक जैसे हो या अलग-अलग बहुत रूप के हों, परन्तु उनके अपने-अपने प्रासाद सब भिन्न वर्जित अर्थात् अखण्ड बनाने चाहिए। भिन्न अर्थात् खण्डित प्रासाद चार प्रकार के होते हैं और मिश्रक अर्थात् भिन्न-भिन्न खण्डित और अखण्डित प्रासाद आठ प्रकार के होते हैं। उनमें भी मिश्र का प्रासाद तो पूजा के योग्य कहे गए हैं परन्तु भिन्ना, खण्डिता की पूजा तो दोषकारक कही गई है।

छन्दोभेदा न कर्तव्या जातिभेदास्तथा पुनः।
हीनशाखा न कर्तव्या लतिने चन्द्रलोकनम्॥ 16॥

---

1. यहाँ ग्रन्थकार भुवनदेव ने जीर्णोद्धार के उपरान्त पुनः प्रतिष्ठावसर पर होने वाले तत्कालीन सप्तोत्सव (सूत्र 114,10 के अनुसार) एवं यात्रा का वर्णन किया है।

लतिन जाति के प्रासाद में भी छन्दोभेद, जातिभेद, हीनशाखा आदि चन्द्रलोकन में भी नहीं करना चाहिए।

तलच्छन्दानुसारेण हीनाङ्गं शिखरं भवेत्।
ऊर्ध्वं तु फांसनाकारं जातिभेदोऽत्र जायते॥ 17॥

तलछन्द के अनुसार तुलना करने पर यदि शिखर हीनाङ्ग हो अर्थात् उपयुक्त अनुपात में न बना हो और ऊपरी भाग में फांसनाकार स्त्री जाति का बना हो तो उसमें जातिभेद दोष होगा।

हीनशाखा न कर्तव्या लतिने चन्द्रलोकना।
भिन्नदोषाश्च चत्वारः प्रासादे दारुकर्मणि॥ 18॥

लतिन चन्द्रलोकन में हीनशाखा युक्त कार्य न हो तथा काष्ठ के प्रासाद में भी चारों भिन्न दोष नहीं रखने चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादनवजीर्णवास्तुनिर्णयाधिकारो नाम दशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 110॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद नव-जीर्ण वास्तु निर्णय अधिकार नामक एक सौ दसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 110॥

जीर्णप्रासादलक्षणमेकादशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 111॥

विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जीर्णप्रसादलक्षणम्।
पतिते वा प्रनष्टाङ्गे क्रिया त्वेवं विधोत्तमा॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं उन जीर्ण प्रासाद के लक्षणों के बारे में कहता हूँ जिनके गिर जाने से या जिनके अङ्ग नष्ट हो जाने पर उत्तम विधि से पुनः नवीनीकृत किया जा सके यानी उनका जीर्णोद्धार किया जा सके।

पञ्चाङ्गशुद्धिमाह —

सुमुहूर्ते दिने शुद्धे लग्ने चन्द्रबलोत्तमे।
चन्द्रताराबले चैव योगे चामृतसम्भवे॥ 2॥
अष्टवर्गस्ततोभेव्यां स्वगोत्रादिगोत्रसङ्कुलम्।
पूजनीया समस्तेदं [1]देवतार्थ प्रयाणवे॥ 3॥

---

1. मुद्रितपुस्तके 'दयत्याष्टप्रार्णवे ?॥' इति पाठः।

इस जीर्णोद्धार की विधि के लिए शिल्पी और कर्त्ता को सबसे पहले शुभ मुहूर्त के साथ-साथ शुद्ध लग्न और उत्तम चन्द्र बल, चन्द्र-ताराबल तथा अमृत सम्भव योग में अष्टवर्ग देखकर अपने स्वगोत्री भाई-बन्धुओं के समूह के साथ और अन्य भी जो पूजनीय जन हो उनके साथ देवता के लिए प्रणिपात् होना यानी प्रणाम करना चाहिए।

आचार्यादीनां पूजा च बलिमाह —

आचार्यः शिल्पिनां पूज्यो वस्त्रालङ्कारसंयुतैः।
तैश्चापि सर्वयुक्तैश्च स गच्छेद् देवसङ्कुलम्॥ 4॥

इस प्रसङ्ग में आचार्य और शिल्पी की वस्त्रालङ्कार से सिरोपाव-पहिरावनी करके पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वे भी उपर्युक्त कहे गए सभी लोगों के उस देव सङ्कुल में यानी प्रासाद के देवसमूह में जाएँगे।

देवपूजां ततः कृत्वा क्षेत्रपालादिसंयुताम्।
दिक्पालेभ्यो बलिं दद्याद् वास्तुदेवेभ्य एव च॥ 5॥

इसके बाद, वहाँ जाकर क्षेत्रपालादि के साथ देवपूजा करें तथा दिक्पालादि और वास्तुदेवताओं को बलि अर्पण करें।

जलदेवान् स्थलदेवानूर्ध्वस्थांस्तलवासिनः।
पूजां बलिं समाप्यैतान् प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥ 6॥

इसे पूजा कार्य में सभी जल-देवता, स्थल-देवता, ऊर्ध्वलोक और पाताललोक के देवताओं की भी पूजा और बलि समाप्त करके उन सभी को प्रणाम करके क्षमापन की भी प्रार्थना करनी चाहिए।

अथ पातनविधिमाह —

अपतितानि सत्त्वानि पातयेच्च क्रियादिकैः।
स्वर्णमयं गजं कुर्याद् वृषभं वा यथोचितम्॥ 7॥

इसके उपरान्त, जो वास्तु वर्तमान में पूरा नहीं गिरा हुआ हो, उसे नवनिर्माण, जीर्णोद्धार के लिए गिराने की क्रिया को आरम्भ करें।

अथरूप्यमयं वापि गजं वा वृषभं तथा।
पातयेद् गजदन्ताग्रैर्वृषशृङ्गैरथापि वा॥ 8॥

इसके लिए सोने या चाँदी का हाथी या वृषभ बनवा कर उस वास्तु को उक्त गजदन्त अथवा वृषशृङ्ग से गिराने का उपक्रम करना चाहिए।

ततोऽनुक्षाल्यमानेऽपि वास्तुस्थानं न चालयेत्।
ह्रस्ववृद्धी न कर्तव्ये कृते दोषो महाभयम्॥ 9॥

साथ ही इस बात का भी ध्यान रहे कि उस भाग को उखाड़ने अर्थात् गिराते हुए भी वास्तु का जो पूर्व मान, आसार आदि हो उसे नहीं चलाएँ, उसमें कोई अन्तर न लाएँ। कोई कमी-बेशी न करें। यदि करेंगे तो महान भय उपस्थित हो जाएगा।

पूर्ववास्तु स्थितं त्यक्त्वा तदुपर्यन्यवास्तुकम्।
पूर्वं चेद् विध्यते वास्तु मृत्युः कारावरादिषु॥ 10॥

क्योंकि, पूर्व में बने हुए वास्तु वेश्म या प्रासाद की स्थिति को बदल कर, उस पर यदि अन्य वास्तु का निर्माण किया जाएगा तो पूर्व में बने हुए वास्तु का वेध होगा और उससे कर्मकारों, कारीगरों की मृत्यु की आशङ्का रहेगी।

उद्धरेद्वा तथा द्रव्यं वास्तुस्थानं न चालयेत्।
उद्धरेच्चाहरेद् द्रव्यं लभते परमं पदम्॥ 11॥

अस्तु, चाहे जीर्ण वास्तु को उधेड़ें-गिराएँ या नया द्रव्य लगाएँ, किसी भी स्थिति में वास्तु के पूर्वमान को विचलित नहीं करें। इस तरह ध्यानपूर्वक वास्तु के उद्धार में द्रव्य या वस्तु को गिराने और नया बनाने से परमपद की प्राप्ति होती है।

पूर्वमानं प्रमाणं च कारयेद् विधिपूर्वकम्।
तद्रूपं तत्प्रमाणं च पूर्वसूत्रं न चालयेत्॥ 12॥

पूर्वमान को व प्रमाण को विधिपूर्वक यथावत रखना चाहिए। उसका पूर्वरूप, प्रमाण पूर्वसूत्र के अनुरूप ही रखते हुए उसमें किसी प्रकार का विचलन न करें।

बहुविध दोषामाह —

चलिते चालिते वापि दिग्मूढे स्थानवास्तुनि।
हीने तथाधिके चैव पदभुक्तिविनाशने॥ 13॥
निरन्तरा यदि स्तम्भा महामर्मनिपीडिताः।
अशुद्धाः विपरीताश्च शिल्पदोषैश्च दूषिताः॥ 14॥
छन्दालङ्कारहीनाश्च रूपमानविवर्जिताः।
एवमाद्या अनेके च दोषा बहुविधाः स्मृताः॥ 15॥

(वास्तु को पूर्वमानानुसार जीर्णोद्धार करते समय विविध प्रकार के शिल्प दोषों का ध्यान रखना चाहिए) चलित होना, विचलित करना या वास्तु को दिग्मूढ़ बनाना, हीन बनाना, अधिक बना देना, पदभागों को भूल जाना, उसका विनाश कर देना, निरन्तर बने स्तम्भों में कोई महामर्म का निपीड़न, वेध होना, अशुद्ध निर्माण, विपरीत निर्माण आदि शिल्प दोषों से दूषित बनाना तथा उसके छन्द-अलङ्कारों से हीन और पहले रूप और मान रहित बनाना—इस प्रकार बहुविध दोष कहे हैं।

तस्मात् सर्वपयत्नेन पूर्वसूत्रं न चालयेत्।
चलिते चालिते चैव तस्य स्थाने तु विग्रहम्॥ 16॥

इसलिए सभी प्रयत्नों से पूर्व के सूत्र, नाप-तौल प्रमाण को कभी भी विचलित नही करें, क्योंकि इनको चलित कर देने पर विग्रह खड़े होंगे।

न्यूनाधिक्ये फलाफलम् —

हीने हानिं प्रकुरुते ह्यधिके स्वजनक्षयम्।
आयहीने तु प्रासादे स्वामिनस्तु क्षयो भवेत्॥ 17॥

ये दोष-विग्रह ऐसे है कि हीन पर हानि करते है और अधिक बना देने पर अपने परिजनों का क्षय करते हैं। यदि प्रासाद आयहीन बन जाए तो गृहस्वामी का ही क्षय हो जाता है।

स्तम्भवेधे भयं घोरं स्वकुलोच्छेदनं भवेत्।
हन्याद् बन्धून् मर्मवेधे त्रिशूले च महाभयम्॥ 18॥

इसी तरह स्तम्भवेध से भी घोरभय, स्वकुल का नाश होता है। इससे बन्धु वर्ग का हनन होता है और मर्मवेध व त्रिशूलवेध से महाभय उपस्थित होता है।

शल्ये चार्थविनाशस्तु छन्दहीने सुताद् भयम्।
[1]एतदर्थाचार्यो वेध सम्यक् परित्यज्यते॥ 19॥

यदि भूमिस्थ शल्य रह जाए तो अर्थ विनाश होता है। छन्दहीन बन जाने पर पुत्रों को भय उपस्थित हो जाता है अतएव आचार्य को हरसम्भव वेध का चतुराई के साथ त्याग करना चाहिए।

मानहीने प्रजापीडा स्थूले चोरभयं तथा।
प्रविहीने च विद्वेषो दुर्भिक्षं शत्रुविग्रहः॥ 20॥

वास्तु के जीर्णोद्धार पर मान हीन होने पर प्रजा को पीड़ा होती है, स्थूल या विशेष मोटाई हो जाने पर चोरों से भय बढ़ता है और यदि बहुत हीन या कम हो जाए तो विद्वेष, दुर्भिक्ष और शत्रुओं से लड़ाई-झगड़े होते हैं।

आयहीनेऽनपत्यत्वं व्ययहीने च भोगदम्।
पीठहीने तु प्रासादे नश्यन्ति गजवाजिनः॥ 21॥

आयहीन होने पर अपने अपत्य, सन्तति का नाश तथा व्ययहीन होने पर भोगदाता होता है। जो प्रासाद पीठहीन हो जाता है तो हाथी व घोड़ों, वाहनादि का नाश होता है।

1. प्रकाशित पाठे नोलभ्यते।

तस्मात् सर्वपयत्नेन **पूर्वसूत्रं न चालयेत्।**
अधिकाङ्गश्च **कर्तव्यः प्रासादो** भूषणैर्गुणैः ॥ 22 ॥

इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न करके पूर्वसूत्र अर्थात् पहले के बने नाप-जोख में बदलाव नहीं करें। साथ ही प्रासाद कों गुणात्मक रूप से सुन्दर और अलङ्करणों से अधिकाङ्ग भले ही बनाएँ।

न चाधिकं तु कुर्वीत यावत् पादविशोधितम्।
नवं चारोपयेद्वास्तु **पुर-प्रासाद-मन्दिरे** ॥ 23 ॥

परन्तु, वास्तु के पद विन्यास जहाँ तक बने हों उससे अधिक नहीं बनाते हुए प्रसाद के पुर के व भवन के नवनिर्माण में वास्तु का आरोपण करें।

चतुरस्त्रो[1] **द्विधा** भूमियुक्ता पूर्वोत्तरप्लवा।
शङ्कुप्राचीवास्तुपूजां **कुर्याद्** भूमिपरिग्रहम्।
पादप्रतिष्ठादिकृत्यं **यावच्च** भिट्टपूरणम् ॥ 24 ॥

चौकोर भूमि को दो प्रकार से पूर्वोत्तर प्लवा अर्थात् ईशानकोण की ओर ढाल रखे तथा शङ्कु से पूर्व दिशा की ओर मुख वाला, दिशाओं का शोधन रखते हुए वास्तु पूजन करके भूमि का परिग्रह अर्थात् नव निर्माण करें। वास्तु के पाद-प्रतिष्ठादि कृत्य तो जहाँ तक भिट्ट का पूरण हो, वहीं तक करें।

प्राचीशुद्धं समक्षेत्रमायव्ययविशोधितम्।
प्रासादं कारयेत्तत्र **गृहं वै** शुभलक्षणम् ॥ 25 ॥

इस तरह से प्राची शुद्धि, समतल क्षेत्र युक्त और आय-व्यय विशोधित प्रासाद किए जाएँ तो वे गृह शुभ लक्षण वाले होते हैं।

शुकनासं **च तस्याग्रे कारयेद्** विधिपूर्वकम्।
शुकाग्रे मण्डपं कुर्यात् सुरूपं लक्षणान्वितम् ॥ 26 ॥

प्रासाद के आगे शुकनास को विधिपूर्वक करें और शुक के आगे मण्डप को बड़ा ही सुन्दर लक्षणों से युक्त बनाया जाए। (प्रासाद शिखर के आगे मध्य ऊँचाई भी उसी शुकनास के बराबर ही बनती है, उससे ऊँची कभी नहीं बनती है।)

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
जीर्णप्रासादलक्षणाधिकारो नामैकादशोत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 111 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
जीर्णप्रासाद लक्षण अधिकार नामक एक सौ ग्यारहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 111 ॥

---

1. 'चतुरस्तो ?' इति प्रकाशित पाठः।

प्रासाददेशानुक्रमो नाम द्वादशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 112॥

अथ देशनामानि च तत्र प्रासादरूपं। विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादानां तु लक्षणम्।
विविधैः कर्मसूत्रैश्च कथितं यत्समासतः॥ 1॥

(इस सूत्रों में विविध देशों के अनुसार वहाँ प्रचलित प्रासाद शैलियों के विषय में कहा जा रहा है) विश्वकर्मा बोले कि अब मैं प्रासादों के लक्षण और विविध प्रकार काम करने के सूत्रों को संक्षेप में कहता हूँ।

नागरा द्राविडाश्चैव वराटकाश्च मिश्रकाः।
लतिनाश्चैवसान्धारा विमाना भूमिजास्तथा॥ 2॥
एते चाष्टान्वये शस्ताः शुद्धच्छन्दाः प्रकीर्तिताः।
देशजातिकुलस्थानवर्णभेदैस्तथापरे॥ 3॥

(जैसा कि कहा गया है) 1. नागर, 2. द्राविड़, 3. वराटक, 4. मिश्रक, 5. लतिन, 6. सान्धार, 7. विमान और 8. भूमिज। ये आठ नाम वाले प्रासाद प्रशस्त कहे गए है जो शुद्ध छन्द में निर्मित होते हैं। इनके देश जाति कुलस्थान वर्ण भेद से अपर, अन्य होते हैं।

जातयोऽष्टौ प्रवर्तन्ते गङ्गातीरेषु सर्वदा।
अहिराजेषु सान्धारो नागरश्च प्रशस्यते॥ 4॥
गौडबङ्गकामरूपे सान्धारो लतिनस्तथा।

ये आठों जातियों के प्रासाद सदा गङ्गा नदी के तीर पर पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, अहिराज में और अहिछत्रपुर में सान्धार नागर प्रासाद को प्रशस्त माना है। गौड़प्रदेश, बङ्गाल और कामरूप (आसाम) में सान्धार और लतिन प्रासाद मान्य है।

तुङ्कारण्येषु[1] गङ्गोदधौ विमानकः॥ 5॥
चोलदेशे महानीले श्रीनीले पर्वते तथा।
मल्यकलिङ्गकर्णाटे कान्यकुब्जनिवासके॥ 6॥
वैराज्येषु विराटे च कोङ्कणे दक्षिणापथे।

---

1. 'तुरकोडहालेषु ?' इति प्रकाशित पाठः। वेत्रवती या बेतवा और जम्बुल के सङ्गम का परवर्ती प्रदेश। यह प्राचीन काल का तुङ्गारण्य है और गङ्गा के निम्नवर्ती क्षेत्र में परिगणित है। महाभारत के अनुसार इस वन का विस्तार कालिञ्जर तक था— तुङ्गकारण्यमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः, वेदानध्यापयत् तत्र ऋषिः सारस्वतः पुरा। तदरण्यं प्रविष्टस्य तुङ्गकं राजसत्तम्। पापं प्रणश्यत्यखिलं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा॥ (वनपर्व. 85, 46 और 53)

नागरा द्राविडाश्छन्दा वराटा भूमिजास्तथा॥ 7॥
लतिनाश्चैव सान्धारा मिश्रकाश्च विमानका:।
अष्टच्छन्दास्तथा चैते प्रासादा: परिकीर्तिता:॥ 8॥

तुङ्गकारण्य में और गङ्गा नदी के नीचे के भागों में विमान नागर मान्य कहे गए हैं। चोलदेश, महानील प्रदेश, श्रीनील के पर्वतों में, मलय और कलिङ्ग, कर्णाट, कान्यकुब्ज निवास, वैराज्य, विराट, कोङ्कण, दक्षिणापथ में नागर, द्राविड़ छन्द के और वराट तथा भूमिज प्रासाद, लतिन, सान्धार मिश्रक और विमान— ये आठों छन्द प्रासाद मान्य कहे गए हैं।

जयन्त्यां मालवे देशे काञ्च्यां कालञ्जरे तथा।
अन्तर्वेद्यां च मगधे मथुरायां हिमाश्रये॥ 9॥
दण्डकारण्यसह्याद्योश्चत्वारश्छन्दका इमे।
लतिना नागराश्चैव सान्धारा भूमिजास्तथा॥ 10॥

जयन्तीप्रदेश[1], मालव देश, काञ्ची, कालञ्जर तथा अन्तर्वेदी और मगध, मथुरा, हिमालय, दण्डकारण्य, सह्याद्रि में ये चारों छन्द—लतिन, नागर, सान्धार और भूमिज प्रशस्त कहे गए हैं।

सिन्धौ च खुरषाणे च *तेजो गक्षणकादिषु।
श्वभ्रभरुकादियुक्ते[2] पश्चिमे पार्श्वमण्डले॥ 11॥
सौराष्ट्रे गुर्ज्जरे देशे काश्मीरे च स्वयम्भरे।
[3]आनर्तभरुचं सौवीरश्च मज्झमिकास्तथा॥ 12॥
[4]वहिरावन्त्योमवन्दने आभीरे च वागुरिका।
[5]ययातिसृष्टयो चेदिराजजम्बूमार्गं तथापरे॥ 13॥
प्रासादा: स्त्रीपुरुषाणां सूर्ये कुर्यान्नपुंसकान्।
[6]तत्त चर्मण्वतीकूले नागोद्भेदे ये दृश्यते॥ 14॥

सिन्धु प्रदेश, खुरसाण देश और तेजोभिभवन (*मध्यप्रदेश, जबलपुर),

---

1. जयन्ती क्षेत्र हुबली से 70 मील दूरी पर वनोशिला नामक ग्राम को कहा गया है। यह वर्धा नदी के तट पर है। पौराणिक आख्यान है कि मधु-कैटभ ने यहाँ तप किया था। दोनों के नाम से यहाँ मन्दिर भी हैं।
2. सवमोहनमादियुक्ते? इति प्रकाशितपाठ:।
3. प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते।
4. प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते।
5. 'यादि सृष्टयो...' इति प्रकाशितपाठ:।
6. प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते। विशेष— विष्णु, मार्कण्डेय, स्कन्दपुराणादि में भी इन देशों के नाम आए हैं।

श्वभ्रमती या साबरमती नदी के तटवर्ती प्रदेश व उससे लगते पश्चिमी पार्श्वमण्डल, सौराष्ट्र, गुर्जरदेश, कश्मीर तथा साँभर (राजस्थान), आनर्त, भड़ौंच, सौवीर, मेवाड़ तथा अवन्ति के बाहरी प्रदेशों में आभीर और वागुरिका या वागड़ प्रदेश, ययाति निवेशित पुर, चेदीराज, आबू व उनके परवर्ती क्षेत्रों में स्त्री व पुरुषों के लिए सूर्य के नपुंसक प्रासाद बनाएँ। ऐसे ही चम्बल नदी के किनारे, नागोद्रेद (नागदा या जहाजपुर) आदि में भी दिखाई देते हैं।

विमाननागरांश्छन्दान् कुर्याद्विमानपुष्पकान्।
सिंहावलोकवलभीफांसनांश्च रथारुहान्॥ 15॥
प्रवर्तन्ते सर्वदेशे व्योम चैकं न वर्तते।
एतेषु भरतक्षेत्राद्यं देशानुक्रम कथ्यताम् ?॥ 16॥

विमान नागर छन्द में पुष्पक विमान करने चाहिए। इनमें सिंहावलोकन, वलभी, फांसनाकार, रथारूह सभी देशों में प्रचलित है, केवल व्योम आकाश में ही ये नहीं होते। इस तरह मैंने इनके भारत में देशानुक्रमों को कहा है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासाददेशानुक्रमाधिकारो नाम द्वादशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 112॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद देशानुक्रम अधिकार नामक एक सौ बारहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 112॥

प्रासादन्यूनाधिकलक्षणात्मकं त्रयोदशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 113॥

अधुना देवालयादीनां न्यूनाधिकलक्षणफलश्च। विश्वकर्मोवाच —

एते सर्वेऽपि प्रासादा देशानुक्रमसंस्थिताः।
तेषामनुक्रमं वक्ष्ये प्रासादानां तु सर्वतः॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि ये सभी प्रासाद भी देशों के अनुक्रम के अनुसार बनाए जाते हैं अतएव सर्वप्रकारेण उनका भी अनुक्रम कहता हूँ।

विभक्तिं तलच्छन्दे तु शिखरोर्ध्वे हि कारयेत्।
ऊर्ध्वाभिधानकं ख्यातं तलच्छन्दं हि तं तथा॥ 2॥

इनके तलछन्द के विभाग शिखर के ऊपर ही करने चाहिए, इसलिए इनका नाम ऊर्ध्वाभिधान तलछन्द के रूप में विख्यात हुआ है।

छन्दविहीनप्रासादे अर्चा स्थापनिषेधः —

छन्दच्छन्दो यत्र नास्ति तत्रार्चां स्थापयेन्न हि।
तत्प्रासादफलं नैव ततो मोक्षो न लभ्यते॥ 3॥

यह ध्यान रहे कि जहाँ छन्द छन्दानुसार न हो वहाँ प्रासाद में अर्चा या मूर्ति की स्थापना नहीं करें, क्योंकि ऐसा किया जाए तो उसका कोई फल नहीं मिलेगा और उससे मोक्ष का लाभ भी नहीं हो सकता।

हीनमानादीनां फलमाह —

हीनमाने तु ये दोषाः कथये तान् समासतः।
आयुर्हानिं द्वारहीने नालिहीने धनक्षयः॥ 4॥

हीनमान या प्रमाण में कमी रहने के जो दोष हैं, उन्हें मैं संक्षेप में कहता हूँ। यदि वास्तु निर्मिति द्वारहीन हो तो उससे आयु की हानि होती है और नालीहीन होने पर धन का नाश होता है।

अपदस्थापितैः स्तम्भैर्महारोगं विनिर्दिशेत्।
स्तम्भव्यासोदये हीने कान्ता तत्र विनश्यति॥ 5॥

स्तम्भों को बिना पद के स्थापित करने पर महारोग होगा तथा स्तम्भ का व्यास और ऊँचाई में कमी रहने पर कर्ता की पत्नी का विनाश हो जाता है।

प्रासादे पीठहीने तु नश्यन्ति गजवाजिनः।
रथोपरथहीने तु प्रजापीडां विनिर्दिशेत्॥ 6॥

जो प्रासाद पीठ हीन बनते हैं उनसे हाथी-घोड़ों, वाहन का नाश होता है और शिखर के रथ और उपरथ से हीन होने पर प्रजा को पीड़ा पहुँचने की आशङ्का रहती है।

कर्णहीनो यदा वास्तुरयुक्तफलमादिशेत्।
क्रीडन्ति राक्षसास्तत्र फलं क्वापि न विद्यते॥ 7॥

इसी तरह वास्तु, प्रासाद कर्णहीन बनने पर विपरीत फल देता है। ऐसे प्रासाद में राक्षसगण क्रीड़ा करते हैं और ऐसे प्रासाद से कोई भी लाभ नहीं होता।

जङ्घाहीने भवेद् बन्धुकर्तृकावरनाशनम्।
शिखरे हीनमाने तु नश्यन्ति पुत्रपौत्रकाः॥ 8॥

प्रासाद यदि जङ्घा में हीन बन जाए तो उससे कारीगरों के बन्धुगणों का नाश होता है। यदि प्रासाद शिखर से हीन हो तो कर्ता के पुत्र-पौत्रों का नाश होता है।

अतिदीर्घे कुलोच्छेदो ह्रस्वे व्याधिसमुद्भवः।
स्थपुटस्थापने पीडा कर्ता तत्र विनश्यति॥ 9॥

इसी तरह यदि प्रासाद अति दीर्घ बनता है तो कुल का उच्छेद हो जाता है और छोटा हो जाता है तो व्याधियाँ होने लगती है। स्थपुट (संकड़ा) स्थापना करने से पीड़ा होती है और कर्ता उससे विनाश को प्राप्त होता है।

पञ्चदोषाः —

स्कन्धहीनः कबन्धश्च समसन्धिः शिरोगुरुः।
अप्रसारितपादश्च पञ्चैते धननाशनाः॥ 10॥

इसी प्रकार 1. स्कन्ध हीन प्रासाद, 2. कबन्ध (सिरकटे), 3. समसन्धि, 4. शिरोगुरु (सिर पर भारी बनाना) और 5. अप्रसारित पाद (पाया कम फैलाया होना)—ये पाँच दोष धन का नाश करने वाले कहे हैं।

मानाधिको न कर्तव्यो मानहीनं न कारयेत्।
शास्त्रोक्तविधिमानेन शुभदं सर्वकर्मसु॥ 11॥

अतः प्रासाद को न तो मान से अधिक बनाए न ही मान से हीन बनाएँ, केवल शास्त्रोक्त विधिमानुसार बनाने पर ही सब कामों में शुभफल मिल सकता है।

जीर्णोद्धार फलमाह —

वापी-कूप-तडागानि प्रासाद-भुवनानि च।
भग्नानि तूद्धरेद्याऽसौ लभतेऽष्टगुणं फलम्॥ 12॥

जीर्णोद्धार के पुण्य के बारे में कहते हैं कि बावड़ी, कूप, तालाब, प्रासाद, भवनादि यदि भग्न हो गए हो तो उनका पुनः जीर्णोद्धार करने से उनके बनाने से भी आठ गुणा ज्यादा फल कर्ता को मिलता है।

प्रतिमालिङ्गवेदीनां यावद्रेण्वंशकं भवेत्।
तावत्कोटिसहस्राब्दं रुद्रलोके स तिष्ठति॥ 13॥

इसी तरह भग्न प्रतिमा, लिङ्ग, वेदी आदि का भी जीर्णोद्धार किया जाता है तो वे जब तक नष्ट होकर भी रेणु के बराबर अंश भी हो जाए तब तक करोड़ों, हजारों वर्षों तक उसके कर्ता का रुद्रलोक का वास मिलता है।

प्रासाद निर्माण फलं —

कोटिवर्षं तृणच्छन्दे दशकोट्यस्तु मृण्मये।
इष्टिकायां दशगुणं पुण्यं शैले ह्यनन्तरशः॥ 14॥

केवल घास-फूस का प्रासाद बनाने पर भी करोड़ों वर्ष का पुण्य फल मिलता

है और मिट्टी का प्रासाद बनाने पर दस गुना अर्थात् दस करोड़ वर्षों का पुण्य मिलता है। ईंटों से बनाया गया प्रासाद इसका भी दस गुना तथा शैल या पाषाण से बनाया गया प्रासाद तो अनन्त गुना पुण्य प्रदाता होता है।

पांशुना क्रीडमानोऽपि यः करोति शिवालयम्।
अवश्यं लभते लक्ष्मीं पशुपतिं निष्कण्टकम्॥ 15॥

यहाँ तक कि खेल-खेल में कँकड़-पत्थरों से खेलते हुए भी यदि कोई कल्पित शिवालय भी बना दें तो ऐसा व्यक्ति भी धन-धान्य प्राप्त करेगा और पशुपतिनाथ शिव उसे सदा निष्कण्टक बनाए रखेंगे, उसकी रक्षा करते रहेंगे।[1]

पद्मशिलाद्वारे चैव तच्छिलापुरुषे तथा।
कलशध्वजे प्रतिष्ठा सप्तगुणं पुण्यं भवेत्॥ 16॥

पद्मशिला के द्वार की और उसके शिला पुरुष के स्थान की नया कलश, ध्वजा की प्रतिष्ठा कराने पर सात गुना पुण्य होता है।

राजसं तामसं चैव सात्त्विकं च तृतीयकम्।
धर्मस्य त्रिविधं ज्ञानं संसारे सम्प्रवर्तते॥ 17॥
समन्तादन्यद्रव्येषु राजसे दिग्गुणाधिकम्।
तासमे शतधा पुण्यमनन्तं सात्त्विके तथा॥ 18॥

इस संसार में राजस, तामस और सात्विक तीन तरह के धर्म के त्रिविध ज्ञान का प्रवर्तन होता रहता है। अन्य द्रव्यों से पुण्य होता है उससे राजस गुण से दुगुना पुण्य होता है, तामस से सौ गुना पुण्य और सात्विक से अनन्त गुना पुण्य होता है।

यश्च देवालयं कुर्यात् स्वर्लोके लभते ध्रुवम्।
क्रीडां सह सुरस्त्रीभिर्मानवो देवता भवेत्॥ 19॥

जो व्यक्ति देवालय बनाता है, वहाँ निश्चय ही स्वर्गलोक को प्राप्त करता है और वहाँ जाकर स्वर्ग की अप्सराओं के साथ क्रीड़ा में आमोद प्रमोद करता हुआ मनुष्य से देवता पद को प्राप्त कर लेता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादन्यूनाधिकलक्षणाधिकारो **नाम** त्रयोदशोत्तरशतत सूत्रम्॥ 113॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य **कृत** सूत्रसन्तानगुणकीर्ति **प्रकाश** या अपराजितपृच्छा **में प्रासाद** न्यूनाधिक लक्षण अधिकार नामक एक सौ तेरहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 113॥

---

1. मेवाड़ प्रदेश के अधिकांश शिवालयों, देवीमन्दिरों आदि के दर्शन करने बाद लौटते समय श्रद्धालु राह में पड़े पत्थरों को अपने हाथों से जमाकर छोटे-छोटे देवालयों को बनाते हैं। मान्यता है कि इससे गृहनिर्माण की मनोकामना पूरी होती है और गृहदोष का निवारण होता है। यह मान्यता शिवधर्मपुराण में भी आई है।

मिश्रकप्रासादसप्तपुण्याहमाहात्म्यं चतुर्दशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 114॥

अधुना मिश्रक प्रासादलक्षणफलञ्च। विश्वकर्मोवाच —

मिश्रकं तलच्छन्दं च नागरं च मण्डोवरम्।
शिखरं विमानोद्भवं प्रासादं सर्वकामदम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि जिसका तलछन्द और मण्डोवर नागर शैली का तथा शिखर विमान शैली का हो ऐसा मिश्रक प्रासाद सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है।

मिश्रकं तलच्छन्दं च पीठं वै नागरं स्मृतम्।
द्राविडा च भवेज्जङ्घा शिखरं विमानोद्भवम्॥ 2॥
अथ हेमपुरे दिव्ये शतयोजनविस्तृते।
एकच्छत्रधरं राज्यं लभते जन्मजन्मानि॥ 3॥

जिसका तलछन्द और पीठ नागर शैली की और जङ्घा द्राविड़ शैली की हो तथा शिखर विमान शैली का हो— ऐसा मिश्रक प्रासाद बनाने वाला सौ योजन विस्तार वाले दिव्य स्वर्णनगर में एकछत्रधारी राज्य जन्म-जन्मातर तक प्राप्त करता है।

सुखदा सर्ववर्णानां स्वर्गे तत्कृन्महीयते।
ईप्सितं लभते राज्यं स्वर्गे वाथ महीतले॥ 4॥

वह व्यक्ति जो ऐसा मिश्रक प्रासाद बनाता है, सभी वर्णों के लोगों को स्वर्ग का सुख दिलाने की महिमा प्राप्त करता हुआ इस पृथ्वी पर अथवा स्वर्ग में अपना चाहा गया राज्य प्राप्त करता है।

मिश्रकस्तलच्छन्दे च पीठे च द्राविडः स्मृतः।
मण्डोवरे वराटश्च शिखरं चात्मभूमिजम्॥ 5॥
नवखण्डभूवो मध्ये राज्यं जन्मनि जन्मनि।
इच्छास्थाने लभेद्राज्यं क्रीडन्ति च सुराङ्गनाः॥ 6॥

ऐसा मिश्रक प्रासाद जिसका तलछन्द और पीठ द्राविड़ शैली की, मण्डोवर वराट शैली का और शिखर भूमिज शैली का हो, तो उसका निर्माता इस नौखण्ड वाले भुवन में जन्म-जन्मान्तर तक अपने मन चाहे स्थान का राज्य प्राप्त करके सुराङ्गनाओं, अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है।

मिश्रकस्तलच्छन्दे च भूमिजश्च मण्डोवरे।
पुष्पकात्मजसंयुक्तं शिखरं द्राविडोद्भवम्॥ 7॥

अथ हेमपुरे रम्ये शतयोजनविस्तृते।

एकच्छत्रधरं राज्यं लभते जन्मजन्मनि॥ 8॥

ऐसा मिश्रक प्रासाद जिसका तलछन्द भूमिज शैली का और मण्डोवर पुष्पक शैली का तथा शिखर द्राविड़ शैली का हो, उसका निर्माता भी सौ योजन विस्तार वाले स्वर्ण नगर का राज्य अनेक जन्मों तक प्राप्त करके एकछत्र राजा होता है।

मिश्रकस्तलच्छन्दे च मण्डोवरे च भूमिजः।

वराटः शिखरे ख्यातः पूज्यः सुरनरोरगैः॥ 9॥

ऐसा मिश्रक प्रासाद जिसका तलछन्द और मण्डोवर भूमिज शैली का शिखर वराट शैली का हो, वह भी सुर, नर और नागों से पूजित होता है।

अथ पुण्याह सप्तकं सफलं —

कूर्मशिला **तथाद्वारं पद्मकं पुरुषः क्रमात्।**

कलशो ध्वजः प्रतिष्ठा च सप्तपुण्याहकानि **च**॥ 10॥

(देवालय के निर्माणारम्भ से लेकर निर्माणोपरान्त देवप्रतिष्ठा तक सात कर्म होते हैं जिन्हें यथा विधि, निर्देश पूरा करना चाहिए) ये कर्म हैं- 1. कूर्मशिला स्थापना, 2. द्वार स्थापना, 3. पद्मशिला स्थापना, 4. प्रासादपुरुष की स्थापना, 5. कलश, 6. ध्वजारोहण तथा 7. देवप्रतिष्ठा।[1]

कृते कूर्मप्रतिष्ठायाः खाते पूर्णे च संस्थितौ।

भूमिलोके **तथा राज्यं सर्वजन्मसु शाश्वतम्**॥ 11॥

कूर्म प्रतिष्ठा करके खात पूर्ति हो जाने पर कर्ता को भूमि लोक का सब जन्मों के लिए शाश्वत राज्य पाने का पुण्य मिलता है।

प्रतिष्ठायां शिलायास्तु दैवज्ञैस्सत्यमुच्यते।

इच्छास्थाने स्वर्गलोके राज्यं जन्मनि जन्मनि॥ 12॥

इसी तरह शिला की प्रतिष्ठा से ज्योतिषियों ने ठीक ही कहा है कि उस व्यक्ति को जन्म-जन्मान्तरों तक स्वर्गलोक में अपनी मनचाही जगह पर राज्य मिलता है।

द्वारे प्रतिष्ठमाने तु स्तम्भोच्छ्रयसमन्विते।

महापुरं च लभते काञ्चनं शतयोजनम्॥ 13॥

---

1. इसी प्रकार सूत्रधारमण्डन ने भी कहा है कि उक्त सभी अवसरों पर वास्तुपूजन आवश्यक है। इससे कार्य निर्विघ्न, निरापद सम्पन्न होता है—कूर्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यायां तु पौरुषे। घटे ध्वजे प्रतिष्ठायामेव पुण्याहसप्तकम्॥ (प्रासादमण्डनं 1, 36)

द्वार की प्रतिष्ठा कराने पर तथा स्तम्भों की स्थापना से भी सौ योजन विस्तार वाले स्वर्ग के महानगर को कर्ता प्राप्त करता है।

पद्मशिलाप्रतिष्ठायां शिवालये भूमस्तके।
एकच्छत्रं महाराज्यं जनलोके च प्राप्नुयात्॥ 14॥

पद्म शिला की प्रतिष्ठा शिवालय में कराने वाला व्यक्ति भी इस भूमि के मस्तक पर जनलोक में एक छत्र का महाराज्य प्राप्त करता है।

पुरुषे स्थाप्यमानेत्वागमोक्तमन्त्रतस्तथा।
तपोलोके ब्रह्मलोके क्रीडति त्रिदशैः सह॥ 15॥

पुरुष में प्राण प्रतिष्ठा आगमोक्त मन्त्रों[1] के विधान से कराने पर भी वह कर्ता तपलोक और ब्रह्मलोक में सभी देवताओं के साथ आनन्द में क्रीड़ा करता है।

प्रस्थाप्यमाने कलशे क्षीरार्णवसमुद्भवे।
काञ्चने पुष्पविमाने सत्यलोके स गच्छति॥ 16॥

क्षीरार्णव से उत्पन्न होने वाले कलश की स्थापना प्रतिष्ठा कराने वाला व्यक्ति सोने के बने पुष्पक विमान में सवार होकर सत्यलोक को जाता है।

कृते महाध्वजारोपेपताकाध्वजचामरैः।
स गच्छेद् ज्ञानलोके तु यत्र शम्भुश्च देवता॥ 17॥

ध्वजारोपण और पताका ध्वज पर चढ़ाने व चामर करवाने वाला व्यक्ति ज्ञानलोक में जाता है, जहाँ भगवान शम्भू स्वयं व देवता निवास करते हैं।

बलीवर्दाः कर्मकरा अपराश्च शिवालये।
ते यान्ति परमं लोकं यत्र देव उमापतिः॥ 18॥

इसी तरह शिवालय में काम करने वाले सभी कर्मकर, बलीवर्द-बैल आदि सेवा में लगे पशु व अन्य जन भी उस परमलोक को जाते हैं जहाँ देव उमापति भगवान् शिव का निवास है।

मृत्काष्ठलोहशैला वा ये लग्नाश्च शिवालये।
दिव्यमूर्तिधराः सर्वे शिवलोके व्रजन्ति ते॥ 19॥

---

1. इस प्रकार के आगमोक्त मन्त्र शारदातिलक, रुद्रयामलादि में प्राप्त होते हैं। सर्वदेवप्रतिष्ठाविधि के अन्तर्गत भी इस प्रकार के मन्त्रोद्धृत किए गए हैं। शारदातिलक में प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र इस प्रकार आया है—
पाशादित्र्यक्षरात्मान्ते स्यादमुष्यपदन्ततः। क्रमात् प्राणा इह प्राणास्तथा जीव इह स्थितः॥ अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि भूयोऽमुष्यपदं भवेत्। वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणपदान्यथ॥ पश्चादिहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम्। अयं प्राणमनुः प्रोक्तः सर्वजीवप्रदायकः॥ (शारदा. 4, 82-84)

इसी तरह शिवालय में जो भी मिट्टी, काष्ठ, लोह व शैल या पाषाण लगाए गए हैं वे भी दिव्य मूर्ति धारण करके सभी शिवलोक में जाते हैं (तो फिर कर्ता का तो कहना ही क्या है?)

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां मिश्रकप्रासादसप्तपुण्याहमाहात्म्यनिर्णयाधिकारो नाम चतुर्दशोत्तरशततम् सूत्रम्॥ 114॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में मिश्रक प्रासाद सप्त पुण्याह माहात्म्य निर्णय अधिकार नामक एक सौ चौदहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 114॥

जगत्यङ्गसमुदायो नाम पञ्चदशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 115॥

अधुना जगत्यङ्गादीनार्थे प्रश्नं। अपराजित उवाच —

जगती तु किमाकारा कियती दैर्घ्यविस्तरे।
तथोच्छ्रयं कथय मे स्तरमानं विशेषतः॥ 1॥

अपराजित बोले कि हे प्रभु! जगती का आकार कैसा होता है, उसकी लम्बाई व चौड़ाई यानी दैर्घ्य-विस्तार कितना होता है तथा उसकी ऊँचाई और स्तरमान को भी विशेषतः कृपा करके कहिए।

प्रतिहारदेवकुलपङ्क्तिसोपान एव च।
आलयं सर्वदेवानां मालिकाक्रमयोगतः॥ 2॥

इसी तरह सभी देवताओं के प्रासादों के मालिका क्रम योग अर्थात् मंजिलों के क्रम योग के साथ ही प्रतिहारों, देवकुलों की पङ्क्ति तथा सोपानों, सीढ़ियों के बारे में भी बताइएगा।

विश्वकर्मोवाच —

सुरालयविभूत्यर्थं भूषणार्थं पुरस्य तु।
नराणां भुक्तिमुक्त्यर्थं सत्यार्थं चैव सर्वदा॥ 3॥

व्यक्ति अपनी विभूति यानी गौरव के लिए देवालय, प्रासाद बनवाते हैं। साथ ही प्रासाद नगरों के भूषण या सौदर्य-स्थलों के रूप में बनते है जिनसे लोगों को मुक्ति मिलती है और उन्हें जीवन के सत्यार्थ का भी सदा ज्ञान रहता है।

लोकानां धर्महेतुश्च क्रीडाहेतुश्च स्वर्भुवाम्।

कीर्तिरायुर्यशोऽर्थं च राज्ञां कल्याणकारकः ॥ 4 ॥[1]

ये प्रासाद लोगों की धर्म भावना हेतु और स्वर्ग की दिव्य शक्तियों की क्रीड़ा-भूमि हेतु भी बनाए जाते हैं। साथ ही ये राजा लोगों के कीर्ति, आयु, यश और कल्याण के लिए भी साधनभूत होते हैं।

प्रासादलक्षणं —

प्रासादो लिङ्गमित्युक्तो जगती पीठमेव च।
प्रतीहारदेवकुलविभागा नामतः परे ॥ 5 ॥

जो लिङ्ग, जगती, पीठ, प्रतिहार, देवकुल विभागों से युक्त होता है, उसे ही प्रासाद कहा जाता है अर्थात् उसे 'प्रासाद' नाम से जाना जाता है।

अथ जगत्याकारालक्षणं —

जगत्या लक्षणं वत्स शृणु वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
सा चामूढदिशाभागा मनोज्ञा सर्वतः प्लवा ॥ 6 ॥

हे वत्स! अब मैं जगती के लक्षण संक्षेप में कहता हूँ जिसे सुनो। वह जगती सदा दिक्साधन में शुद्ध होती है। अमूढ या दिशायुक्त होती है। मनोप्रिय, सभी ओर प्लव वाली अर्थात् ढलान वाली होती है जिससे वहाँ का जल चारों और बहकर बाहर की ओर जा सके।

चतुरश्रा तथायता वृत्ता वृत्तायता तथा।
अष्टाश्रा च तथा कार्या प्रासादस्यानुरूपतः ॥ 7 ॥

जगती कई प्रकार की होती है— 1. चतुरश्रा या चौकोर, 2. आयताकार, 3. वृताकार, 4. वृत्तायता-लम्बाई युक्त गोलाकार में तथा, 5. अष्टाश्रा या आठ भुजक्षेत्र वाली अथवा प्रसाद की रचना के अनुरूप आकार वाली। जगती की मान संख्या इस तरह से कही गई है।

अथ जगतीप्रकारायामोत्सेधमानानि —

ज्येष्ठ कनिष्ठप्रासादे मध्यमे मध्यमा तथा।
ज्येष्ठे कनिष्ठा व्याख्याता जगती मानसङ्ख्यया ॥ 8 ॥

कनिष्ठ प्रासाद की जगती ज्येष्ठ, मध्यम प्रासाद की जगती मध्य और ज्येष्ठ प्रासाद की जगती कनिष्ठ बनाई जाती है।

---

1. तुलनीय— त्रिदशागारभूत्यर्थं भूषाहेतोः पुरस्य तु। भुक्तये मुक्तये पुंसा सर्वकालं च शान्तये॥ निवासहेतोर्देवानां चतुर्वर्गस्य(हे) सिद्धये। मनस्विनां च कीर्त्यायुर्यशस्सम्प्राप्तये नृणाम्॥ जगतीनामथ ब्रूमो लक्षणं विस्तरादिह। प्रासादं लिङ्गमित्याहु(स्त्रिग ?)ल्लयनाद् यतः॥ (समराङ्गण. 68, 1-3)

कनिष्ठे भ्रमणी चैका मध्यमे भ्रमणीद्वयम्।
ज्येष्ठे तिस्रो भ्रमण्यश्च साङ्गोपाङ्गिकसङ्ख्यया॥ 9॥

कनिष्ठ प्रासाद में एक भ्रमणी होती है, मध्यम प्रासाद में दो भ्रमणियाँ होती हैं और ज्येष्ठ प्रासाद में तीन भ्रमणियाँ साङ्गोपाङ्ग संख्या में होती हैं।

प्रासादपृथुमानेन द्विगुणा चोत्तमा तथा।
मध्यमा चतुर्गुणा याधमा पञ्चगुणोच्यते॥ 10॥

प्रासाद की चौड़ाई से दुगुनी जगती हो तो उसे उत्तम तथा चार गुनी जगती हो तो उसे मध्यम और पाँच गुणी जगती हो तो उसे अधम जगती कहते हैं।

षट्सप्तगुणाख्याता च युक्तिपर्यायसंस्थिता।
यत्र त्रिपुरुषा यद्वा द्वारिकायां निगद्यते॥ 11॥

इसी प्रकार यदि जगती प्रासाद की चौड़ाई से छह अथवा सात गुनी बड़ी हो अथवा युक्ति प्रमाण से बनाई गई हो या जहाँ त्रिपुरुष (ब्रह्मा-विष्णु-शिव[1]) हो, उस जगती को द्वारिका नाम दिया गया है।[1]

समा सपादा सार्द्धोच्चा द्विगुणा वा मुखायते।
अपराजितकर्णाढ्या पूर्वमण्डपानुक्रमैः॥ 12॥

इसी तरह प्रासाद की चौड़ाई की अपेक्षा समान, सवाई, डेढ़ी, दुगुनी या आयताकार होगी। हे अपराजित! जगती को मण्डपों के अनुक्रम में निकलती बनानी।

करद्वादशकेऽर्धांशं शालात्र्यंशं द्वात्रिंशके।
द्वात्रिंशतिश्चतुर्थांशं सा भूतांशं शतार्धके॥ 13॥

यदि 12 गज की शाला हो तो जगती प्रासाद के अर्धांश (12 / 2 = 6) जितनी ऊँचाई की बनाएँ। यदि शाला 22 गज की हो तो जगती उसकी तृतीयांश (22 / 3 = 7.33) ही ऊँची बनाएँ। यदि शाला 32 गज की हो तो जगती उसकी चतुर्थांश (32 /4) यानी 8 गज ही ऊँचाई में रखें और यदि शाला 50 गज की हो तो जगती की ऊँचाई केवल (50 / 10= 5) यानी पाँच गज ही रखें।

भ्रमणीमण्डपद्वारादि निर्णयः —

चतुरश्रा सूर्यकर्णा विंशकर्णाष्टविंशतिः।
तथा षट्त्रिंशत्कर्णा च भ्रमण्यः पञ्च कीर्तिताः॥ 14॥

---

1. इस प्रकार का विधान चित्तौड़गढ़ स्थित समाधीश्वर मन्दिर जिसे भोजराज ने बनवाया था, में किया गया है। इसे महाराणा मोकल के समय जबकि उक्त प्रासाद का जीर्णोद्धार हुआ तब भी यथावत् रखा गया था। मयमतम् के अधिष्ठानविधान और सन्धिकर्मविधान नामक अध्यायों में जगती की रचना का वर्णन हुआ है।

प्रासाद में जगती पाँच प्रकार की कही गई है— 1. चौकोर, 2. बारह कोणी, 3. बीस कोणी, 4. अट्ठाईस कोणी तथा 5. छत्तीस कोणी। इस प्रकार पाँच फालनाओं वाली जगती होती है।

भ्रमणी त्रिभागोत्सेधे यावन्मूलप्रासादकम्।
कर्णो देवकुलाशतायतन तत्स्मृतम् ?॥ 15॥

मूल प्रासाद की ऊँचाई से भ्रमणी की ऊँचाई तीसरा भाग अर्थात् 1 / 3 होती है। उसके कर्ण पर देवकुलियों का शतायतन होता है।

तथैवानुक्रमैर्वृद्धिर्भ्रमण्यो **यावत् षोडश।**
भद्रनिष्काशस्तद्बाह्ये **शेषाः कर्णैव** सङ्ख्यया॥ 16॥

इसी अनुक्रम में भ्रमणियों की ऊँचाई में वृद्धि होती जाती है जब तक कि उनकी संख्या सोलह हो। उनके भद्र दीवार का निकास भी बाहर की ओर कर्णों की संख्या के अनुसार होता है।

चतुर्द्वारसमायुक्तैश्चतुर्भिर्मण्डपैस्तथा।
दिग्दिग्द्वारसमायुक्तं [1]सर्वतोभद्रतोत्तमाः॥ 17॥

चार द्वारों से युक्त और चार मण्डपों से युक्त चारों दिशाओं में द्वार वाला सर्वतोभद्र-आयतन उत्तम कहा गया है।

बहुदेवकुलाने कर्णजाभ्रमजाभद्रजागर्भजामध्यजापार्श्वजेति जगतीनां षड्भेदाः —

प्रासादस्यानुमानेन बहुदेवकुलानि च।
प्राकारं कुर्यात्विदानीं षड्विधं च सलक्षणम्॥ 18॥
कर्णजा भ्रमजाश्चैव भद्रजा गर्भजास्तथा।
मध्यजाः पार्श्वजाश्चैव भेदा वै षड् भवन्ति च॥ 19॥

प्रासाद के मान के अनुसार ही बहु देवकुलियाँ (शालाएँ[2]) भी बनाई जाती हैं और उनके परकोटे बनाए जाते हैं जो छह प्रकार के लक्षणों से युक्त होते हैं। ये हैं— 1. कर्णजा, 2. भ्रमजा, 3. भद्रजा, 4. गर्भजा, 5. मध्यजा और 6. पार्श्वजा।

कर्णेषु कर्णजा ख्याता भ्रमजा च परिभ्रमे।
भद्रजा भद्रसम्भूता **गर्भजा** गर्भमानतः॥ 20॥
परिभ्रमस्य **मध्याङ्गे मध्यजा सा** प्रकीर्तिता।

---

1. 'सहस्रायततोत्तमाः ?' इति प्रकाशित पाठः।
2. यह वर्णन समराङ्गणसूत्रधार के 68वें अध्याय में आया है।

चतुःपार्श्वेषु तस्याश्च पार्श्वजा सामिधीयते॥ 21॥

इनमें कर्ण से कर्णजा बनते हैं, परिभ्रमण से भ्रमजा, भद्र से भद्रजा, गर्भ के मानानुसार गर्भ बनते हैं। परिभ्रम के मध्याङ्ग से मध्यजा बनते है और चारों पार्श्वों से पार्श्वजा का निर्माण होता है।

प्रतोलीलक्षणं —

प्रतोली चाग्रतः कार्या कपाटपुटसंयुता।
दृढार्गला च कर्तव्या कथ्यतेऽथ तथोच्छ्रयः॥ 22॥

प्रासाद के आगे प्रतोली या पोल दो पाट वाले कपाट युक्त (किवाड़ों वाले द्वार) बनानी चाहिए। उसे बन्द करने और सुरक्षा के लिए दृढ़ अर्गला (आगलकिया) भी लगानी चाहिए।

प्रासादेषु जगतीसमुच्छ्रयः —

एकहस्ते तु प्रासादे जगत्या उच्छ्रयः समः।
द्विहस्ते हस्तसार्धस्तु त्रिहस्ते तु द्विहस्तकः॥ 23॥

अब प्रतोली की ऊँचाई के बारे में कहते हैं। एक हाथ या गज की प्रासाद की चौड़ाई के समान ऊँचाई की जगती होनी चाहिए। दो हाथ गज के चौड़े प्रासाद की जगती की ऊँचाई डेढ़ गज की होनी चाहिए। तीन गज के चौड़े प्रासाद में जगती की ऊँचाई दो गज की होनी चाहिए।

सार्धं द्विकरमुत्सेधः प्रासादे वेदहस्तके।
चतुर्हस्तस्योपरिष्टाद् यावद् द्वादशहस्तकम्॥ 24॥

चार गज के चौड़े प्रासाद की जगती ढाई गज की होनी चाहिए और चार गज से ऊपर के बारह गज की चौड़ाई तक के प्रासाद की जगती की ऊँचाई प्रासाद की चौड़ाई के आधे के बराबर होनी चाहिए।

प्रासादस्यार्धमानेन त्रिभागेन ततः परम्।
चतुर्विंशतिहस्तान्तं कारयेत्तद्विचक्षणः॥ 25॥

और, इससे आगे प्रासाद की चौड़ाई के तीसरे भाग के बराबर ही जगती की ऊँचाई रखनी चाहिए जो 20 गज तक की चौड़ाई के प्रासाद की विचक्षण शिल्पी रख सकते हैं।

पादेनैर्वोच्छ्रयं तावद् यावत्पञ्चाशद्धस्तकम्।
एवमन्यश्च कर्तव्यो जगतीनां समुच्छ्रयः॥ 26॥

फिर, जब तक प्रासाद की चौड़ाई 50 गज तक जाए, तब तक जगती की ऊँचाई में भी क्रमशः प्रासाद की चौड़ाई के चतुर्थांश की वृद्धि करते जाना चाहिए। इसी तरह अन्य जगतियों की ऊँचाई रखनी होगी।

जगत्याङ्गानि तेषां मानं च —

तथोच्छ्रयं भजेत्प्राज्ञ अष्टाविंशपदैरधः।
जाड्यकुम्भं च त्रिपदं कर्णकं द्विपदं तथा॥ 27॥
पद्मपत्रसमायुक्ता त्रिपदा शीर्षपत्रिका।
क्षुरकं द्विपदं प्रोक्तं कुम्भकं सप्तभिः पदैः॥ 28॥
त्रिपदः कलशः प्रोक्तः पदं चान्तरपत्रिकम्।
कपोताली च त्रिपदा पुष्पकं युगसङ्ख्यया॥ 29॥

इसके अतिरिक्त जगती की ऊँचाई के अनुसार उसके विविध अङ्ग बनाने के लिए समझदार शिल्पी को चाहिए कि जगती की ऊँचाई के 28 भाग या पद बनाएँ। इनमें जाड्य कुम्भ 3 पद, कर्णक या कणिका 2 पद, पद्मपत्र के साथ ही शीर्षपत्रिका 3 पद, क्षुरक या खुरक 2 पद, कुम्भक 7 पद, कलश 3 पद और अन्तरपत्रिका 1 पद की, कपोताली 3 पद, पुष्पक 4 पद का होगा। इस प्रकार कुल 28 पद होते हैं।

पृथक्-पृथक् निकासमाह —

पुष्पकण्ठसुजालम्भं निर्गतं चाष्टभिः पदैः।
कर्णेषु च दिशापालाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः॥ 30॥
जगत्यां पश्चिमे भद्रे रथकैकत्रिभिस्तथा।
त्रिचतुःपञ्चषडश्वैः कर्तव्या वामदक्षिणम्॥ 31॥

अब उनमें प्रत्येक के निकास को बताते हैं। पुष्पकण्ठ आलम्भ में 8 पद के निकास का होता है। कर्णों पर दिक्पाल मूर्तियाँ[1] पूर्व दिशा से प्रदक्षिणक्रम में बनानी चाहिए। जगती की पश्चिमी भद्र अर्थात् दीवार पर रथिकाओं की संख्या एक-एक करके तीन और इनको 3, 4 5, 6 और 7 के क्रम से बाएँ-दाएँ बनाएँ।

वारिनिष्कास प्रमाणम् —

जलनिष्कासमकरमुखैश्च विकृताननैः।
उत्तानपादोन्नता च हस्ते हस्ते चतुर्यवाः॥ 32॥

---

1. शारदातिलक में दिशापालों के नाम इस प्रकार आए हैं— इन्द्रमग्निं यमं रक्षो वरुणं पवनं विधम्। ईशानं पन्नगाधीशमध ऊर्ध्वं पितामहम्॥ (शारदातिलक : लक्ष्मण देशिकेन्द्र 4, 114) अर्थात्— इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, पवन, चन्द्रमा, ईशान, पन्नगेश्वर तथा पितामह— ये पूर्वादि क्रम से दश दिशापाल हैं।

इसी तरह प्रासाद के जल निकास के लिए बनाए जाने वाले प्रणालों की आकृति भयानक मकराकृति में बनाएँ जो ऊँचाई में 1-1 गज पर 1-1 यव के प्रमाण से ऊँची होती जाए।

यथा सिंहासने राजा शोभते मणिदीप्तिभिः।
तथा जगत्यां प्रासादः पीठकर्मोपशोभितः॥ 33॥

जिस प्रकार किसी राजा की शोभा मणियों के प्रकाश से युक्त सिंहासन से बढ़ती है वैसे ही जगती की सुन्दर पीठकर्म शोभा (कारीगरी) से प्रासाद शोभायमान होता है।

आदिमूर्तिः पदन्यासात् प्रतिहारा वाम-दक्षिणाः।
वामे चैव भवेन्नन्दी महाकालश्च दक्षिणे॥ 34॥
याम्यद्वारे भवेद् भृङ्गी हेरम्बश्चैव दक्षिणे।
पश्चिमे दुर्मुखा वामे पाण्डुरो वाथ दक्षिणे॥ 35॥
सौम्यां चैव सितो वामेऽसितश्चैवं तु दक्षिणे।

प्रासाद की आदि-मूर्ति (मूलनायक लिङ्ग) के पदन्यासानुरूप ही उसके बाएँ-दाएँ प्रतिहार मूर्तियों की रचना करें। वाम भाग का प्रतिहार नन्दी और दक्षिण भाग में महाकाल हो। वाम द्वार में प्रतिहार भृङ्गी और दक्षिण में हेरम्ब होगा। पश्चिमी द्वार के वाम भाग में दुर्मुख प्रतिहार और दक्षिण भाग में पाण्डुर प्रतिहार हो। इसी तरह उत्तर द्वार के वाम भाग में सित नामक प्रतिहार और दक्षिण द्वार भाग में असित नामक प्रतिहार होगा।

मूलगर्भे भित्तिगर्भे सीमान्तं द्वारविस्तरः॥ 36॥
राजसेनश्चतुर्भागे भारपुत्तलिकायुतः।
वेदिकारूपसङ्घाटैः सप्तभागसमुच्छ्रितैः॥ 37॥

द्वार का विस्तार मूलगर्भ में भित्तिगर्भ से सीमान्त तक हो। प्रासाद का राजसेन चार भागों में भार पुतलिका युक्त बनाएँ और उसकी रचना सङ्घाट सात भाग की ऊँचाई की वेदिका युक्त हो।

द्विपदं चासनपट्टं कूटागारैः समन्वितम्।
लीलासनं सुखार्थं च कक्षासनं करोन्नतम्॥ 38॥

उस वेदिका का आसन पट्ट दो भाग का हो और कूटागार से युक्त हो। इसी प्रकार वेदिका पर लीलासन और कक्षासन भी एक गज की ऊँचाई का सुखासन सुखपूर्वक बैठने का हो।

तस्य त्रिविध तोरणमाह —

गण्डाग्रे शुण्डिकाग्रे च प्रतोल्यग्रे तथैव च।

तोरणं त्रिविधं ज्ञेयं ज्येष्ठ-मध्य-कनिष्ठकम्॥ 39॥

जगतीपृथुमानेन तत्रान्तरं निगद्यते।

अब तीन प्रकार के तोरण— गण्डाग्रे ज्येष्ठ, शुण्डिकाग्रे मध्यम और प्रतोल्येग्रे कनिष्ठ मान का बनते हैं और जगती की मोटाई के मान के अनुसार उनके अन्तर को कहा गया है।

अधिकं षोडशं चैव विभक्तं नवधा पुनः॥ 40॥

त्रिधा ज्येष्ठमिति ख्यातं त्रिधा मध्यं कनिष्ठकम्।

इसके लिए अधिक से अधिक सोलह पद को भी पुनः नौ-नौ प्रकार से विभक्त किया जाता है। उनमें तीन प्रकार के ज्येष्ठ, तीन प्रकार के मध्यम और तीन प्रकार के कनिष्ठ कहे गए है।

ब्रह्मस्थानादिगर्भे च स्तम्भगर्भे च तोरणम्॥ 41॥

स्तम्भगर्भे भित्तिगर्भे तन्मध्ये च विचक्षणः।

तोरणास्य च स्तम्भस्य विस्तरः कथितो मया॥ 42॥

ब्रह्मस्थान के आदि गर्भ से स्तम्भगर्भ रखते हुए तोरण बनते हैं और स्तम्भगर्भ तथा भितिगर्भ के मध्य में विचक्षणों के लिए तोरण और स्तम्भ के विस्तार के बारे में मैंने कहा है।

देवस्य वाहनप्रमाणं —

पट्टं पट्टानुसारेण चेलिकावलनैर्युतम्।

वाहनं यस्य देवस्य तदग्रे च प्रदापयेत्॥ 43॥

एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्-सप्तानुक्रमेण तु।

चतुष्किका च कर्तव्या सर्वकामफलप्रदा॥ 44॥

इसी प्रकार प्रासाद के देवता का वाहन भी देवता के आगे चेलिका वलनै युक्त अर्थात सुन्दर कलायुक्त समुचित पट्ट पर स्थापित करें। इस काम के लिए एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात आदि अनुक्रम में चौकियाँ बनाएँ जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाली कही गई हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां जगत्यङ्गसमुदायाधिकारो नाम पञ्चदशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 115॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में जगती आदि अङ्ग समुदाय अधिकार नामक एक सौ पन्द्रहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 115॥

चतु:षष्टिजगतीनामभेदात्मकं षोडशोत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 116 ॥

अधुना सुभद्रादीनां चतु:षष्टिजगतीनामभेदं। विश्वकर्मोवाच —

जगत्या लक्षणं चैव प्रोक्तं वै वास्तुवेदिभिः।
नामानि गुणदोषाणां विभागाश्छन्द एव च॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि (पूर्वकाल में) वास्तुविदों ने जगतियों के लक्षण, नाम और गुण-दोष विभाग और छन्दवार प्रतिपादित किए हैं।[1]

प्रथमाष्टकमाह —

सुभद्रा-सर्वतोभद्रा-ललिता च लीलोदरी।
त्रिकूटा-चित्रकूटाख्या-श्रीमाला-गगनोदरी॥ 2॥
गजानने-चोत्कटाक्षे-सिन्दूररेणुवल्लभे।
जगत्योऽष्टौ प्रकर्तव्याः सर्वकामफलप्रदाः॥ 3॥

इनमें से प्रथम कोटि की 1. सुभद्रा 2. सर्वतोभद्रा, 3. ललिता, 4. लीलोदरी, 5. त्रिकूटा, 6. चित्रकूटा, 7. श्रीमाला और 8. गगनोदरी— इन आठ जगतियों को गजानन उत्कटाक्ष, सिन्दूर-रेणु-वल्लभ (गणेश) के लिए बनानी चाहिए।

द्वितीयाष्टकमाह —

इन्द्रपदा-त्रिभुवना-विजया-रुद्रमेखला।
सुविशाला विराजिता गौरी गङ्गातरङ्गिणी॥ 4॥
महेन्द्रे च प्रकर्तव्याः शान्तिदाः पुरमध्यगाः।
एता अष्टौ जगत्यश्च कामध्वंसिप्रियाः स्मृताः॥ 5॥

द्वितीय प्रकार की 1. इन्द्रपदा, 2. त्रिभुवना, 3. विजया, 4. रुद्रमेखला, 5. सुविशाला, 6. विराजिता, 7. गौरी और 8. गङ्गातरङ्गिणी— इन आठ जगतियों को पुर के मध्य में, शान्ति प्रदान करने हेतु महेन्द्र के लिए बनाना चाहिए। ये आठों जगतियाँ कामध्वंसिप्रिया भी कही जाती है।

तृतीयाष्टकमाह —

हंसध्वजः रत्नगर्भा माला च भ्रमरावली।
नक्रध्वजा महालक्ष्मी ब्राह्मणी चतुरानना॥ 6॥
लोकनाथसमुत्सृष्टा जगत्यः सर्वशान्तिदाः।
कार्याश्च ब्रह्मकेन्द्रेषु पुरमध्ये सुखावहाः॥ 7॥

---

1. यहाँ ग्रन्थकार अपने से पूर्ववर्ती ग्रन्थमतों, वास्तुविदों के मतों-सिद्धान्तों का स्मरण करता है।

तृतीय प्रकार की 1. हंसध्वजा, 2. रत्नगर्भा, 3. (चक्र) माला, 4. भ्रमरावली, 5. नक्रध्वजा, 6. महालक्ष्मी, 7. ब्राह्मणी और 8. चतुरानना— ये आठ जगतियाँ लोकनाथ (ब्रह्मा) के लिए सबको शान्ति प्रदान करने हेतु पुर के मध्य में यानी ब्रह्म केन्द्र में बनाना सुखदाई होता है।

चतुर्थाष्टकमाह —

नारायणी त्रिदशेन्द्री कौमारी हंसमालिका।
पत्रावली प्रभेदा च कनका त्रिदशोद्भवा॥ 8॥
लक्ष्मीप्रिये जगन्नाथे विष्णुदेवे सनातने।
जगत्योऽष्टौ प्रकर्तव्याः सर्वकामफलप्रदाः॥ 9॥

चतुर्थ प्रकार में 1. नारायणी, 2. त्रिदशेन्द्री, 3. कौमारी, 4. हंसमालिका, 5. पत्रावली, 6. प्रभेदा, 7. कनका और 8. त्रिदशोद्भवा— इन आठ जगतियों को सनातन जगन्नाथ लक्ष्मीप्रिय विष्णुदेव के लिए बनानी चाहिए जो सबकामनाओं की पूर्ति करने वाली है।

पञ्चाष्टकमाह —

सूर्याख्या चन्द्रमण्डला चन्द्रभासा मेघोदरी।
माहेन्द्री विजयानन्दा तापतेजा जयप्रभा॥ 10॥
आदित्ये तु समाख्याताः सूर्यलोकसमुद्भवाः।
एतास्त्वष्टौ जगत्यः स्युर्दिवाकरसुखावहाः॥ 11॥

पाँचवें प्रकार में 1. सूर्य नामक, 2. चन्द्रमण्डला, 3. चन्द्रभासा, 4. मेघोदरी, 5. माहेन्द्री 6. विजयानन्दा, 7. तापतेजा और 8. जयप्रभा—इन आठ जगतियों को सूर्यलोक से उत्पन्न होने वाले कहे गए आदित्यदेव के लिए बनानी चाहिए जो दिवाकर भगवान् को सुखदायी हो।

षष्ठष्टकमाह —

वसुन्धरा हरप्रिया राजेश्वरी च पार्थिवी।
सरस्वती कुसुमाख्या चूडामणिर्महोत्कटा॥ 12॥
गौर्यां तथा च चामुण्ड्यां हरसिद्धौ सभासु च।
एतास्त्वष्टौ प्रकर्तव्या इच्छाभुक्तिप्रदायकाः॥ 13॥

षष्ठ प्रकार में 1. वसुन्धरा, 2. हरप्रिया, 3. राजेश्वरी, 4. पार्थिवी, 5. सरस्वती, 6. कुसुम नामक, 7. चूड़ामणि और 8. महोत्कटा— इन आठ जगतियों को गौरी

तथा चामुण्डा, हरसिद्धि की सभा या दरबार के लिए बनानी चाहिए जिससे मनोवाञ्छित भोगों की प्राप्ति होती है।

सप्तमाष्टकमाह —

श्रीकर्णा नायिका चैव रत्नचूडा गोमापतिः।
अर्धनारी भैरवी च प्रधाना सर्वकूटका॥ 14॥
वीतरागे इति ख्याताः कर्तव्याः सर्वकामदाः।
सर्वकामफला नित्यं सुखदाश्च पुरःपतेः॥ 15॥

सातवें प्रकार में 1. श्रीकर्णा, 2. नायिका, 3. रत्नचूड़ा, 4. गोमापति, 5. अर्धनारी, 6. भैरवी, 7. प्रधाना और 8. सर्वकूटका— इन आठ जगतियों को वीतराग भगवान् (जिनदेव) के लिए बनाना चाहिए जिससे सब कामनाओं की पूर्ति होती है और पुरपति राजा के लिए नित्य सुख देने वाली और सभी कामनाओं को फलवती बनाने वाली हैं।

अष्टमाष्टकमाह —

वीरभद्रा सुपताका सुभद्रा पूर्णभद्रिका।
भद्राङ्गी जया विजया चाजिता ह्यष्टमी तथा॥ 16॥
सर्वदेवेषु कर्तव्याः शाश्वताः सुसुखावहाः।
इत्यष्टौ च प्रकर्तव्याश्चतुःषष्टिरुदाहृताः॥ 17॥

आठवें प्रकार में 1. वीरभद्रा, 2. सुपताका, 3. सुभद्रा, 4. पूर्णभद्रिका, 5. भद्राङ्गी, 6. जया, 7. विजया और 8. अजिता— इन आठ जगतियों को सभी देवताओं के लिए बनाया जाना शाश्वत सुख प्रदायक है।

चतुःषष्टिश्च जगतीनामभेदाः क्रमोदिताः।
देवतानुक्रमस्थानं कथितं सर्वकामदम्॥ 18॥

इस तरह इन आठ-आठ प्रकारों की कुल चौंसठ जगतियों के बारे में क्रमशः कहा गया। इन चौंसठ जगतियों के नाम भेद क्रमानुसार अपने-अपने देवता के क्रम में स्थानपरक कहा गया जो सब कामनाओं की पूर्तिकर्ता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां चतुःषष्टिजगतीनामभेदाधिकारो नाम षोडशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 116॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में चौंसठ जगतीभेद अधिकार नामक एक सौ सोलहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 116॥

*गणपतिशिवाष्टाष्टजगतीलक्षणात्मकं सप्तदशोत्तरशततमं **सूत्रम्** ॥ 117 ॥*

अधुना सुभद्रादीनां गणेशजगत्यष्टलक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

चतुरश्रीकृते क्षेत्र विंशत्यंशैस्तुविस्तरः।
द्वात्रिंशदंशैरायामः **कर्तव्यश्च मुखायतः** ॥ 1 ॥

(इस सूत्र में पूर्व सूत्रोक्त जगतियों के लक्षण, प्रमाणादि का विवेचन किया जा रहा है) विश्वकर्मा आगे बोले कि 20 भाग विस्तार वाला और 32 भाग लम्बाई वाला एक आयत समतल चतुष्कोण क्षेत्र मुख की ओर आयत रूपवाला बनाएँ।

अपरस्यर्जुसूत्रेण **प्रासादश्च** कलांशकैः।
षट्त्रिंशद्भिः **पदैश्चैव मण्डपः शुभलक्षणः** ॥ 2 ॥

इसके ऊपरी भाग में प्रासाद के ऋजुसूत्र में अर्थात् सीध में 16 भागों या पदों वाला अथवा 36 पदों वाला शुभ लक्षणों से युक्त मण्डप बनाना चाहिए।

शुकघ्राणं **भवेद्भागं प्रासादश्च** कलांशकैः।
चतुष्की मूलसूत्रेण **त्रिदिशं मण्डपस्य च** ॥ 3 ॥

प्रासाद के 16वें भाग में प्रासाद का शुकनास बनाएँ और मूलसूत्र से मण्डप के तीनों ओर चतुष्की अर्थात् चौकियाँ बनाएँ।

पञ्चभागो **भवेत् कर्णो भद्रस्य** दिक्प्रविस्तरः।
कर्णार्धो निर्गमः कार्यः प्रोक्तो भद्रेष्वयं विधिः ॥ 4 ॥

भद्र या दीवार के दिक्विस्तार (दस भाग) के पाँच भाग में कर्ण बनाएँ और उस कर्ण का आधा निर्गम या निकास— इस विधि से भद्रों में रखें।

द्वात्रिंशत्यायते **भद्रे प्रकुर्याद्** वामदक्षिणे।
पूर्वभद्रार्धभागं **तु गडगण्ड तु तुल्यतम् ?** ॥ 5 ॥

मण्डप के वाम-दक्षिणायत भाग में 22 भाग का आयत वाला भद्र बनाएँ और पूर्व की ओर वाले भद्र के अर्ध भाग में उसके तुल्य ही गडगण्ड बनाएँ।

शुण्डिका भागविस्तारा **द्वारं** पृथुप्रासादके।
निर्गमश्च चतुर्भागैः शुण्डासोपानसञ्चयम् ॥ 6 ॥

प्रासाद की चौड़ाई के विस्तार के अनुसार द्वार में एक भाग के बराबर की शुण्डिका बनाएँ जिसका निर्गम चार भाग का बनाएँ और उसमें शुण्डा पर आने के लिए सोपान, सीढ़ियाँ बनाएँ।

कर्णशाला **द्विभागा स्याद् भ्रमणं** सार्धभागकम्।

सार्धपञ्चविभागैस्तु शाला प्रासादस्योत्तरे॥ 7॥

इसी तरह कर्ण पर दो भाग की कर्णशाला बनाएँ और उसके साथ ही डेढ़ भाग में भ्रमण भी जगती पर बनाएँ। प्रासाद के उत्तर में भी साढ़े पाँच भाग के विस्तार वाली शाला बनानी चाहिए।

पञ्चाण्डकसमायुक्ता सुभद्रा सर्वकामदा।
सर्वविघ्नोपशमना स्वर्गभोगप्रदायिका॥ 8॥

इति सुभद्रा।

उस शाला पर पाँच अण्डक बनाएँ। ऐसी शाला को 'सुभद्रा' कहते हैं जो सब कामनाओं की पूर्ति करती है और सभी विघ्नों का नाश करके स्वर्ग के समस्त भोगों को प्रदान कराने वाली होती है।

प्रसादाद्यग्रशालाश्च[1] कर्णशालादिसूत्रतः।
प्रासादाभिमुखा कार्या सर्वतोभद्रा नाग्रतः॥ 9॥

इति सर्वतोभद्रा।

प्रासाद के आगे शाला भी कर्णशाला की सीध में प्रासाद के अभिमुख अर्थात् सामने बनानी चाहिए जिसे 'सर्वतोभद्र' नाम से जानते हैं।

पृष्ठभागे प्रतिभद्रं षड्भागैः पूर्वनिर्गमः।
शालापूर्वप्रमाणेन त्रिभागैश्च कृतायती॥ 10॥

इति ललिता।

इसी प्रकार की पूर्व प्रमाणानुसार तीन भागों की आयत-शाला बनाकर उसके पृष्ठ भाग में छह भाग का प्रतिभद्र पहले के निर्गम या निकास के अनुसार बनाएँ।

प्रासादाग्रशाला च पृष्ठतुल्या वामदक्षिणके।[2]
लीलोदरीति तन्नाम त्रिदशैरपिदुर्लभा॥ 11॥

इति लीलोदरी।

पृष्ठभाग की शाला के तुल्य ही प्रासाद के आगे अग्रशाला बनाए जो वाम-दक्षिण भाग में पृष्ठभाग के तुल्य ही हो, इसका 'लीलोदरी' नाम कहा गया है जो देवताओं को भी दुर्लभ होती है।

अग्रशालां पुनर्दद्यात् त्रिकूटा नाम शोभना।

---

1. 'प्रदद्यादग्रशालाश्च' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'परित्यक्ताग्रशाला च पृष्ठतुल्या व्यमोहके?' इति प्रकाशित पाठः।

गिरिसुतासुतक्रीडा मनोह्लादनकारिका ॥ 12 ॥

इति त्रिकूटा।

इसी तरह प्रासाद के मण्डप आगे पुनः अग्रशाला बनाएँ जिसका नाम 'त्रिकूटा' होता है। इसमें गिरिसुता पार्वती के पुत्र गणेश की क्रीड़ा मनोह्लादनकारी होती है।

अग्रशाला परित्यक्ता **पार्श्वभद्रकर्णद्वये।**
चित्रकूटेति **तन्नाम** गणगन्धर्वसेविता ॥ 13 ॥

इति चित्रकूटा।

मण्डप के आगे अग्रशाला न बनाकर उभयपार्श्व (आजू-बाजू) के दोनों भद्रकर्णों को बनाएँ जिसका 'चित्रकूट' नाम है। यह गन्धर्वगणों द्वारा सेवित होता है।

पूर्वकर्णे तथाद्वारे शालां दद्यात्तु शोभनाम्।
श्रीमालेति **च तन्नाम कर्तव्या** सर्वकामदा ॥ 14 ॥

इति श्रीमाला।

इसी प्रकार द्वार पर और पूर्वभाग के कर्णों पर शोभायुक्त शाला बनाएँ। इसे 'श्रीमाला' नाम दिया है जो सबकामनाओं की पूर्ति करती है।

अग्रशाला समायुक्ता सर्वकामफलप्रदा।
गणेन्द्रस्य **प्रकर्तव्या नाम्ना तु** गगनोदरी ॥ 15 ॥

इति गगनोदरी।

इति गणेन्द्रस्य जगत्यष्टकम्।

प्रासाद के मण्डप के आगे बनी हुई शाला सबकामनाओं की सिद्धि करने वाली होती है। यह गणेन्द्र के लिए ही की जाती है और उसका नाम 'गगनोदरी' है।

इन्द्रसम्पदात्रिभुवनाख्याश्रीविजयारुद्रमेखलासुविशालाविराजिता गौरीगङ्गातरङ्गिणीति शिवाष्टजगतीलक्षणम् —

तद्रूपे तत्प्रमाणे **च** कर्णशाला **यथा भवेत्।**
पदिकं भ्रमणं चैव जगती स्यात् सुरान्तरे ॥ 16 ॥

इसी रूप में और इसी प्रमाणानुसार जो कर्णशाला होती है और जिसके एक भाग की भ्रमणी जगती पर बनाई जाती है, वह सुरान्तर होती है।

चतुर्भागो **भवेत् कर्णो** भागैकमुदकान्तरम्।
क्षोभण चार्धभागेन सर्वकामफलप्रदा ॥ 17 ॥

इस शाला के चारों भागों के कर्ण होते हैं और एक भाग में उदकान्तर या परनाला होता है जबकि आधे भाग में क्षोभणा होती है जो समस्त कामनाओं को पूरी करती है।

द्विभागं कर्णभद्रं च पादभागेन **निर्गजः।**
शाला द्विभागा कर्तव्या भागैकं भ्रमणं तथा॥ 18॥

उसके दो भाग में कर्णभद्र बनाएँ जिसका निकास एक भाग का हो, दो भाग की शाला बनाएँ जिसके एक भाग की भ्रमण भी कल्पित करें।

अपरभद्रेषु **कर्तव्यं** भद्रत्रिभागनिर्गतम्।
सार्धं कुर्याच्च द्वे पार्श्वे भागर्धं निर्गतं पुनः॥ 19॥

पीछे की ओर बनने वाली भद्रों या दीवारों को तीन भाग के निकास वाली बनाएँ। दोनों बाजुओं की भद्रों को डेढ़ भाग की बनाएँ जो आधे भाग के बराबर निकास वाली होगी।

कुर्यात्पार्श्वं तु तत्तुल्यं निर्गमश्च [1]अंशार्धकम्।
चतुर्भागश्च विस्तारो मुखभद्रं विधीयते॥ 20॥
द्विपदं देवकुलाख्या **पदार्धं** शुकनासकम्।
मण्डपं च त्रिभिर्भागैः पदिकभ्रमणैः **सह॥ 21॥**

पार्श्व (बाजू) में भी इसके बराबर ही निर्गम वाली अर्थात् आधे भाग की हो। इसकी मुखभद्र या आगे की दीवार चार भाग के विस्तार वाली होनी चाहिए। उसके आगे दो भाग की देवकुला या छोटी देवरी हो जिसके आधे भाग से शुकनास और तीन भाग में मण्डप जिसके एक भाग की भ्रमण भी होगी।

शालात्रयं प्रकर्तव्यं मण्डपार्श्वकभूषिताः।
अग्रशाला विधातव्या याम्योत्तरपूर्वक्रमैः **॥ 22॥**
चतुर्दशागारयुता **नाम्ना सा** चेन्द्रसम्पदा।
स प्राप्नुयादिन्द्रपदं **तां कुर्याद्यः** शिवालये**॥ 23॥**

इतीन्द्रसम्पदा।

मण्डप के तीनों ओर सुन्दर तीन शालाओं को बनाएँ जिसमें एक अग्रशाला और एक-एक उत्तर और दक्षिण में बनाएँ। ऐसा चौदह आगार युक्त प्रासाद 'इन्द्र सम्पदा' नाम का होता है और ऐसा शिवालय बनाने वाला इन्द्रपद को प्राप्त करता है।

प्रदद्यादग्रशालाश्च **पूर्वमानं च** कल्पयेत्।
तदा नाम्ना त्रिभुवना त्रिदशैरपि **दुर्लभा॥ 24॥**

इति त्रिभुवनाख्या।

1. 'विंशार्धकः ?।' इति प्रकाशित पाठः।

प्रासाद के आगे अग्रशाला पहले बताए गए मान के अनुसार कल्पित करें तो 'त्रिभुवना' नाम की शाला बनती है जो देवताओं को भी दुर्लभ है।

अग्रशाला प्रकर्तव्या भद्रिकायुक् याम्योत्तरे।
भद्रेऽपरे यथाकारा तद्रूपा च याम्योत्तरे॥ 25॥
श्रीविजयेति तन्नाम कर्तव्या सर्वकामदा।
विजयस्योद्भवो नित्यं यः कुर्यात् तां शिवालये॥ 26॥

इति विजया।

प्रासाद के आगे अग्रशाला उत्तर-दक्षिण की भद्रिका युक्त बनाएँ। भद्रों के पीछे उसी आकार की और उसी रूप की भद्रिका उत्तर-दक्षिण भी बनाएँ। ऐसी रचना 'श्रीविजय' संज्ञक है। यह सबकामनाओं को पूर्ण करने वाला शिवालय नित्य ही विजय दिलाने वाला बनाएँ।

अग्रशाला समायुक्ता कर्तव्या सर्वशोभना।
सा रुद्रमेखला ख्याता सिद्धकिन्नरसेविता॥ 27॥

इति रुद्रमेखला।

इसके अतिरिक्त प्रासाद में अग्रशालायुक्त सब तरह से सुन्दर 'रुद्रमेखला' नाम की जगती सिद्ध-किन्नरों द्वारा सेवित बनवाई जाती है।

उभयभद्रेष्वेकैकां कर्णे दद्याच्च शालिकाम्।
शालाश्चैव प्रभ्रष्टाश्च सुविशाला नाम्ना भवेत्॥ 28॥

इति सुविशाला।

दोनों भद्रों पर के कर्णों पर एक-एक शालिका बनाएँ। ऐसी शालाओं को 'प्रभ्रष्टा सुविशाला' नाम से जाना जाता है।

प्रदद्यादग्रशालां च सर्वलक्षणसंयुता।
विराजिता तदा नाम पूजिता त्रिदशैरपि॥ 29॥

इति विराजिता।

प्रासाद के आगे सभी लक्षणों से संयुक्त अग्रशाला बनाएँ। उसे 'विराजिता' नाम दिया गया है जो समस्त देवताओं द्वारा पूजित है।

याम्योत्तरापरभद्रे कर्णे दद्याच्च शालिकाः।
पार्वती च तदा नाम ईश्वरस्य प्रियात्मिका॥ 30॥

इति गौरी।

इसी प्रकार प्रासाद के उत्तर-दक्षिण और पश्चिम में भद्रों के कर्णों पर शालिका

बनाए जिसे 'पार्वती' नाम दिया है जो ईश्वर या शिव की प्रिया है।

अग्रशाला समायुक्ता सर्वालङ्कारसंयुता।
सुरासुरैश्चार्चनीया नाम्ना गङ्गातरङ्गिणी॥ 31॥

इति गङ्गातरङ्गिणी।

प्रासाद के आगे की अग्रशाला सभी अलङ्करणों से युक्त बनाएँ जो सुर और असुरों के द्वारा भी समानतः पूजनीया है। इसका नाम गङ्गातरङ्गिणी है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गणपतिशिवाष्टाष्टजगतीलक्षणाधिकारो नाम सप्तदशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 117॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गणपतिशिवाष्टाष्टजगतीलक्षण अधिकार नामक एक सौ सत्रहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 117॥

ब्रह्म-विष्णु-त्रिपुरुषजगती नामाष्टादशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 118॥

इत्यमनन्तर ब्रह्मविष्णुत्रिपुरुषजगतीलक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

आयामो विंशद् द्विगुणः पृथुत्वं चाष्टाविंशतिः।
ऋज्वपरकर्णसूत्रे प्रासादाश्च कलांशकैः॥ 1॥

(अव ब्रह्मा, विष्णु, त्रिपुरुष की जगती के सम्बन्ध में आगे) विश्वकर्मा ने कहा कि लम्बाई में 20 का दुगुना अर्थात् 40 और पृथुत्व अर्थात् चौड़ाई में 28 और दोनों कर्ण सूत्रों की सीध प्रासाद के सोलहवें भाग के बराबर हो।

द्विपदानि तवङ्गानि विस्तरैर्निर्गमैस्तथा।
शुकनासा चैकभागा षड्भागो मण्डपस्तथा॥ 2॥

... ...।
चतुष्कीद्वारसोपानं पूर्वमानविकल्पितम्॥ 3॥

प्रासाद के तवङ्गों का निकास विस्तार में दो पद का हो और छह भाग का मण्डप और एक भाग का शुकनास हो। (...) मण्डप की चौकी और द्वार तथा सीढ़ियाँ पहले बताए गए मान प्रमाण की हों।

आद्योद्भवकलशान्तं सपीठं त्रिगुणोन्नतम्।
जगती तेन मानेन सीमान्ते वाम-दक्षिणे॥ 4॥

इसी प्रकार प्रासाद अपने आदि उद्भव से कलश के अन्त तक अपनी पीठ युक्त चौड़ाई से तीन गुणा ऊँचा होना चाहिए और प्रासाद की जगती भी इसी मान के अनुसार बाएँ-दाएँ सीमान्त तक होनी चाहिए।

रथोपरथशोभाढ्यं भद्रोपभद्रमेव च।
अतः सीमा ततो बाह्यं जगती प्रासादोद्भवा ॥ 5 ॥

प्रासाद के रथ और उपरथ शोभायुक्त हों। इसी प्रकार से भद्र और उपभद्र भी शोभाजनक हों। इसी सीमा के बाहर प्रासाद से जगती निकलती हुई द्रष्टव्य हों।

त्यक्त्वा कर्णेषु तुर्यांशं पुनः कर्णौ वेदांशकः।
द्वादशांशापरभद्रं द्विगुणं वाम-दक्षिणे ॥ 6 ॥
कर्णे तु भद्र निष्काशं[1] मूलसीमान्तसूत्रतः।
हंसध्वजा तदा नाम ब्रह्मणश्च प्रियात्मका ॥ 7 ॥

इति हंसध्वजा।

इसमें प्रासाद के कर्णों या कोनों को चतुर्थांश छोड़कर पुनः कर्णों के चतुर्थांश पर बारह अंश की अपरभद्र या पीछे की भद्र दीवार बनाएँ और इसकी दुगुनी (12 × 2 = 24) अंश की बाएँ-दाएँ बनाएँ। कर्णों पर भद्र का निकास मूल सीमान्त सूत्र के अनुसार रखें। यह 'हंसध्वजा' नामक प्रासाद ब्रह्मा को प्रिय कहा गया है।

अग्रशाला तु दातव्या सर्वालङ्कारशोभिता।
रत्नगर्भा तदा नाम कर्तव्या सर्वकामदा ॥ 8 ॥

इति रत्नगर्भा।

प्रासाद के आगे अग्रशाला को सब अलङ्करणों से युक्त शोभा की बनाएँ। इसका नाम 'रत्नगर्भा' है जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला है।

अपरभद्रेषु शालाः कर्तव्याः सर्वकामदाः।
चक्रमाला तदा नाम चतुराननवल्लभा ॥ 9 ॥

इति चक्रमाला।

पीछे, अपर भद्रों में शाला सब कामनाओं की पूर्ति करने वाली बनाएँ। इसका नाम 'चक्रमाला' है जो चतुरानन या ब्रह्मा को प्रिय है।

अग्रशाला परित्यज्य भद्रे दद्याद् याम्योत्तरे।
भ्रमरावली तन्नाम कर्तव्या वेदसम्भवे ॥ 10 ॥

इति भ्रमरावली।

इसी प्रकार आगे शाला नहीं बनाकर बाएँ-दाएँ भद्र पर शाला बनाएँ तो ऐसा प्रासाद 'भ्रमरावली' कहा जाएगा जो ब्रह्माजी के लिए बनाएँ।

---

1. 'कर्णे तु--- निष्काशं' इति प्रकाशित पाठः।

अग्रशालां पुनर्दद्यात् सर्वालङ्कारसंयुता।
नक्रध्वजेति तन्नाम कर्तव्या तु पितामहे ॥ 11 ॥

इति मकरध्वजा।

प्रासाद के आगे सर्वालङ्कार युक्त अग्रशाला बनाएँ। ऐसा प्रासाद पितामह ब्रह्मा के लिए 'नक्रध्वजा' संज्ञक कहा गया हैं।

शालां याम्योत्तरे त्यक्त्वा द्वारे सोपानशुण्डिका।
चतुर्मुखे च कर्तव्या महालक्ष्मी पुर्मध्यगा ॥ 12 ॥

इति महालक्ष्मी।

बाएँ-दाएँ शाला नहीं बनाकर प्रासाद के द्वार पर सोपान शुण्डिका बनाएँ तो पुर के मध्यभाग में चौमुखा प्रासाद 'महालक्ष्मी' नामक बनाएँ।

बलाणकानि कार्याणि त्रिषु द्वारेषु शाश्वतम्।
ब्रह्माणीति च तन्नाम ब्रह्मदेवप्रियात्मिका ॥ 13 ॥

इति ब्रह्माणी।

ऐसा प्रासाद जिसके तीन द्वारों पर बलाणकों को बनाया जाए, जो शाश्वत हो। इसे 'ब्रह्माणी' नामक प्रासाद कहते हैं और यह ब्रह्माजी की प्रिया को समर्पित कहा गया है।

याम्योत्तरे तथा द्वारे कारयेच्च तथापरे।
चतुराननेति तन्नाम शाश्वतं कमलासने ॥ 14 ॥

इति चतुरानना।

बाएँ-दाएँ तथा पीछे भी प्रासाद के द्वार बनाए तो ऐसे प्रासाद को 'चतुरानन' नाम से कमलासन ब्रह्मा के लिए शाश्वत कहा गया है।

चतुरश्रं समं शुद्धं द्वात्रिंशतिविभाजितम्।
मध्ये षट्त्रिंशद्भागैस्तु मण्डपं शुभलक्षणम् ॥ 15 ॥

इति ब्रह्मणो जगत्यष्टकम्।

इसी प्रकार समचौरस या चतुरश्र क्षेत्र को शुद्ध 40 भागों में विभाजित करके मध्य के 36 भागों में शुभलक्षण युक्त मण्डप बनाएँ।

पूर्वोत्तरे तथा याम्ये भागेन शुकनासकम्।
तस्याग्राग्रप्रासादानां कुर्याच्चन्द्रकलांशकैः ॥ 16 ॥

प्रासाद के पूर्व में और उत्तर-दक्षिण में शुकनास के भाग तक व उसके आगे-आगे प्रासाद चन्द्र-कलांशक अर्थात् 16 अंश तक बनाते जाएँ।

चतुष्की पूर्वद्वारे तु कर्तव्या लक्षणान्विता।
प्रासादषोडशांशेन हीनाङ्गा वाम-दक्षिणे॥ 17॥

इसके पूर्व द्वार पर चौकी बनाएँ जो बड़ी सुन्दर हो और प्रासाद के सोलहवें भाग से हीनाङ्ग यानी सोलहवें भाग से कम प्रासाद बाएँ-दाएँ बनाएँ।

जगत्यपरकर्णे तु भागमेकं तु विस्तरः।
निर्गमः पञ्चभागैश्च विस्तरो लिङ्गभागिकः॥ 18॥

अपर कर्ण अर्थात् पीछे के कोने की जगती का विस्तार एक भाग का हो। उसका निकास पाँच भाग का तथा विस्तार लिङ्ग भाग का (3 ?) रखें।

दिक्षु तिसृषु कर्तव्यं भद्रं वै सर्वकामदम्।
अग्रभद्रस्य निष्कासो भागैश्चैकादशैस्तथा॥ 19॥

तीनों दिशाओं में सुन्दर, सर्वकामद भद्र बनाएँ और आगे की भद्र यानी दीवार का निकास 11 भाग का रखें।

शुण्डिकाद्वारसोपानं पूर्वमानविकल्पितम्।
जगतीमूलसीमाग्रे कर्तव्यो मण्डपः शुभः॥ 20॥
षड्भागैश्चैव विस्तीर्णं कर्तव्यं नृत्तमण्डपम्।
त्रिपुरुषेति विज्ञेया नाम्ना नारायणी शुभा॥ 21॥

इति नारायणी।

इसके द्वार सोपानयुक्त शुण्डिका पहले के मान प्रमाणानुसार बनाए और जगती के मूल में सीमा के आगे शुभ मण्डप बनाएँ जिसका विस्तार छह भाग का हो तो यह नृत्यमण्डप 'त्रिपुरुष' नाम से जाना जाता है और नारायणी शुभ होता है।

भद्रकर्णे तथा चाष्टौ शालाश्चेत्सर्वकामदाः।
त्रिदशेन्द्री तदा नाम सिद्धकिन्नरसेविता॥ 22॥

इति त्रिदशेन्द्री।

प्रासाद के भद्र या दीवारों, कर्णों या कोनों पर अष्टशाला बनें तो इसको 'त्रिदशेन्द्री' नाम की सिद्ध-किन्नर सेवित शाला कहा जाएगा।

गर्भशालापरभद्रे भवेच्चेत्सर्वकामदा।
कौमारीति तदा नाम कीर्तिता पापनाशिनी॥ 23॥

इति कौमारी।

प्रासाद के पर भद्र पर गर्भशाला बने जो सर्वकामदा हो, उसे 'कौमारी' नाम से जानते हैं। यह पापनाशिनी कही गई है।

त्यक्त्वा चापरशालां तु शालां दद्याद् याम्योत्तरे।
हंसमालेति तन्नाम कर्तव्या सर्वकामदा॥ 24॥

इति हंसमाला।

पीछे के भाग में शाला न बनाकर बाएँ-दाएँ भाग में शाला बनाएँ तो उसे 'हंसमाला' नाम से कहा गया है।

प्रयोजयेदग्रभोगे शालां चेल्लक्षणान्विताम्।
पत्रावली तदा नाम जगती सर्वकामदा॥ 25॥

इति पत्रावली।

इसी प्रकार प्रासाद के आगे यदि सभी लक्षणों से युक्त शाला बनाएँ तो उसका नाम 'पत्रावली' होता है, यह जगती सर्वकामदा है।

भागमेकं यदा कर्णे पुनर्भागं तु विस्तरे।
शाला सूत्र प्रदातव्या प्रभेदनयना मता॥ 26॥

इति प्रभेदनयना।

प्रासाद के एक भाग की कर्ण पर और एक भाग की विस्तार में शाला सूत्र बनाए तो उसे 'प्रभेदनयता' नाम की कहते हैं।

वाम-दक्षिणभद्रे तु कर्तव्यं च त्रिशालकम्।
कनकेति च तन्नाम कर्तव्या सर्वकामदा॥ 27॥

इति कनका।

प्रासाद के वाम-दक्षिण भाग में तीन शाला बनाएँ तो उसका 'कनक' नाम कहलाता है। यह सर्वकामदा होती है।

अपरे तु त्रिशालं च पूर्वेऽपि गुणसंयुतम्।
विष्णुदेवे तथा चैव कर्तव्या त्रिदशोद्भवा॥ 28॥

इति त्रिदशोद्भवा।

प्रासाद के पीछे त्रिशाला हो और आगे भी त्रिशाला हो, वह विष्णुदेव को अर्पित हो उसे 'त्रिदशोद्भवा' कहते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदवोचार्योक्तापराजितपृच्छायां
ब्रह्मविष्णुत्रिपुरुषजगत्यधिकारो नामाष्टादशोत्तरशततमं सूत्रम्॥ 118॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ब्रह्मविष्णु त्रिपुरुष जगती अधिकार नामक एक सौ अठारहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 118॥

सूर्यस्यपार्थिव्यष्टजगतीलक्षणात्मकमेकोनविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 119॥

इत्यमनन्तरार्कस्यपार्थिव्यष्टजगतीलक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

चतुर्विंशतिर्भागाः स्युः षट्त्रिंशतिर्मुखायता।
चतुर्भागो **भवेत् कर्णः** प्रतिरथस्तु **तत्समः॥ 1॥**

(पूर्वोक्त जगतियों के अतिरिक्त सूर्यादि के निमित्त) विश्वकर्मा बोले कि एक ऐसा आयत परिकल्पित करें जो 24 × 36 आकार का हो। उसमें 4 भाग का कर्ण या कोना और उसी के बराबर प्रतिरथ बनाएँ।

द्वौ द्वौ भागौ तु निष्कासो **भद्रे चैव प्रतिरथे।**
अष्टभागात्परं भद्रं विंशतिर्वाम-**दक्षिणे॥ 2॥**

इसमें भद्र का और प्रतिरथ का निकास दो-दो भाग हो और पीछे के पद के आठ भाग और बाएँ-दाएँ भद्र के 20 भाग रखें।

चतुर्भागं द्वारमानं सोपानपङ्क्तिसञ्चयम्।
भद्रकोणो भवेद्भागो **भागः शुण्डी तु विस्तरे॥ 3॥**

इनमें चार भाग का द्वार सोपानपङ्क्तियुक्त हों और भद्र के कोण एक भाग व शुण्डी एक भाग विस्तार की हो।

कर्णात्परमृजुसूत्रं **प्रासादश्च** कलांशकैः।
शुकनासो **मण्डपश्च** पूर्वमानविकल्पितौ॥ **4॥**

पिछले कर्ण का ऋजुसूत्र प्रासाद के एक कला या सोलह भाग जितना हों और शुकनास तथा मण्डप पहले के मान अनुसार बनाएँ।

कर्णे प्रतिरथे चैव शाला द्वादश कल्पयेत्।
सूर्याख्या सा समाख्याता सिद्धकिन्नरसेविता॥ **5॥**

इति सूर्याख्या।

कर्ण और प्रतिरथों पर बारह शाला बनाएँ। ऐसा 'सूर्याख्य' नामक प्रासाद सिद्ध-सेवित माना जाता है।

प्रदद्यादग्रशालाश्च सर्वालङ्कारसंयुता।
चन्द्रमण्डला तन्नाम सर्वविघ्नविनाशिनी॥ **6॥**

इति चन्द्रमण्डला।

आगे की ओर सभी अलङ्करणों से युक्त सुन्दर शाला बनाएँ तो उसे

'चन्द्रमण्डला' नाम की सर्वविघ्न हरने वाली कहा है।

परित्यज्याग्रशालाश्च भद्रे दद्याद् याम्योत्तरे।
चन्द्रभासा तदा नाम वन्दिता त्रिदशैरपि॥ 7॥

इति चन्द्रभासा।

आगे शाला नहीं बनाकर बाएँ-दाएँ भद्र पर शाला बनावें तो उसे 'चन्द्रभास' नाम दिया गया है जो देवताओं द्वारा भी वन्दित है।

प्रदद्यादग्रशालाश्च सर्वलक्षणसंयुता।
मेघोदरी तस्या नाम कर्तव्या च दिवाकरे॥ 8॥

इति मेघादरी।

समस्त लक्षणों से युक्त आगे की और शाला बनाएँ तो उसे 'मेघोदरी' नाम दिया है। इसे दिवाकर सूर्य के लिए बनाएँ।

भद्रशाला भद्रगर्भे त्वायता सर्वकामदा।
माहेन्द्री तु तस्या नाम सर्वकल्याणकारका॥ 9॥

इति माहेन्द्री।

भद्र के गर्भ पर आयताकार भद्रशाला बनाएँ, उसे 'माहेन्द्री' नाम की सर्वकामनाओं की पूर्ति करने वाली, सर्व कल्याण करने वाली कहा है।

याम्योत्तरे तथा भद्रे शालात्रिकं तु कारयेत्।
विजयानन्दा नामाख्या त्रिदशैरपि दुर्लभा॥ 10॥

इति विजयानन्दा।

बाएँ-दाएँ और भद्र पर शालात्रिक अर्थात् तीन शालाओं को बनाएँ तो 'विजयानन्दा' नामक देवताओं को भी दुर्लभ जगती होगी।

अपरे तु तथा नन्दा शालात्रिकं सुलक्षणम्।
प्रतापतेजा तन्नाम कर्तव्या सर्वकामदा॥ 11॥

इति प्रतापतेजा।

पश्चिम की और नन्दा नामक शालात्रिक अर्थात् तीन शाला सुलक्षणी बनाएँ, उसे 'प्रतापतेजा' नामक सर्वकामना पूर्तिकारी कहा है।

अग्रशाला तु तद्रूपा सर्वालङ्कारसंयुता।
विजयप्रभेति नाम्ना सा चादित्यसमप्रभा॥ 12॥

इति विजयप्रभा। इति सूर्याष्टजगत्यः।

यदि आगे की और भी वैसी ही शाला बनाएँ जो सब अलङ्करणों से युक्त हो तो

उसे 'विजयप्रभा' नाम की कहा है। यह सूर्य की प्रभा जैसी होगी।

पञ्चविंशतिर्विस्तार **आयामः** पञ्चत्रिंशतिः।
षड्भागो भवेत्कर्णो **भद्रं चैव त्रयोदश**॥ 13॥
वाम-दक्षिणभद्राणां **विभागाः** सप्तविंशतिः।
निर्गमे कर्णतुल्यानि सर्वभद्रेष्वयं **विधिः**॥ 14॥

इसके अतिरिक्त, 25 भाग चौड़ी और 35 भाग लम्बी जिसमें छह भाग के कर्ण और 13 भाग के भद्र हो, बाएँ-दाएँ भद्रों के विभाग 27 हों और उनका निकास कर्णों के बराबर ही हो, सभी भद्रों या दीवारों पर यही विधि बनाए रखें।

अपरस्यर्जुसूत्रेण **प्रासादः** पञ्चभागिकः।
शुकाग्रश्च भवेद्भागो **मण्डपः** सप्तविस्तरः॥ 15॥

पीछे की भद्र भी प्रासाद के सीध में 5 भाग की हो और शुकनास के आगे मण्डप का विस्तार 7 भाग का हों।

द्वारत्रयं मण्डपस्य जगतीनां तु कारयेत्।
गण्डशुण्डिकासोपानं पूर्वमानेन कल्पितम्॥ 16॥

जगती पर मण्डप के तीन द्वार बनाएँ जिनका गण्ड शुण्डिकासोपान या सीढ़ियाँ का मान पहले के अनुसार ही रखना चाहिए।

चतस्त्रः कर्णशालाश्च **कर्त्तव्याश्च** सुलक्षणाः।
वसुन्धरीति **तन्नाम देवानां** सततप्रिया॥ 17॥

इति वसुन्धरी।

उसके चार कर्णशालाएँ अति सुन्दर लक्षणों वाली बनाएँ। इसका 'वसुन्धरी' नाम रखा गया है जो देवताओं को भी सतत प्रिय लगता हैं।

पूर्वे च भद्रकोणे **च शाले द्वे तु मनोरमे।**
हरिप्रियेति **तन्नाम** सिद्धकिन्नरसेविता॥ 18॥

इति हरिप्रिया।

पूर्व की और तथा भद्र या दीवार के कोनों पर दो मनोरम शालाएँ बनाएँ तो उसका 'हरिप्रिया' नाम और वह सिद्ध-किन्नर सेवित कही गई है।

तथापरे यथापूर्वे शालां कुर्यान्मनोरमाम्।
राजेश्वरीति तन्नाम वन्दिता त्रिदशैरपि॥ 19॥

इति राजेश्वरी।

इसी प्रकार पश्चिम और पूर्व में मनोरम शालाएँ बनाए जिसका **'राजेश्वरी'** नाम

देवताओं द्वारा भी वन्दित है।

त्यक्त्वा चापरभद्रे तु द्वे च याम्योत्तरे विदुः।
पार्थिवीति तु तन्नाम पूजिता सुरकिन्नरैः ॥ 20 ॥

इति पार्थिवी।

पीछे के भद्र पर कोई शाला नहीं बनाकर केवल बाएँ-दाएँ ही दो शालाएँ बनाएँ तो इसे 'पार्थिवी' नाम से सुर-किन्नर पूजते हैं।

पुनश्चापरभद्रे तु शालाः कुर्यान्मनोरमाः।
सरस्वतीति तन्नाम पूजिता देवदानवैः ॥ 21 ॥

इति सरस्वती।

पीछे की भद्र या दीवार पर एक मनोरम शाला बनाएँ जिसका 'सरस्वती' नाम से देव-दानव सभी पूजन करते हैं।

पुरतो ह्यग्रशाला च कर्तव्या सर्वकामदा।
कुसुमाख्येति सा चैवमाख्याता वास्तुवेदिभिः ॥ 22 ॥

इति कुसुमाख्या।

आगे की ओर अग्रशाला सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली बनाएँ। उसे 'कुसुमाख्या' नाम से वास्तुविद पुकारते हैं।

पूर्वद्वारे परित्यज्य कर्तव्या च याम्योत्तरे।
ज्ञानकलाकुलोजन्म ? चूडामणिरिति स्मृता ॥ 23 ॥

इति चूडामणिः।

पूर्व द्वार पर शाला नहीं बनाकर ज्ञानी लोग केवल बाएँ-दाएँ शालाएँ बनाएँ जिसको 'चूडामणि' नाम दिया जाता है।

पूर्वद्वारे पुनः कार्याः शाला वै सुमनोरमाः।
महाकूटेति तन्नाम कर्तव्या सर्वलक्षणा ॥ 24 ॥

इति महाकूटा।

इसी प्रकार पूर्व द्वार पर पुनः एक मनोरम शाला बनाएँ जिसका नाम 'महाकूट' है। इसको सब लक्षणों युक्त बनाएँ।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सूर्यस्यपार्थिव्यष्टजगतीलक्षणाधिकारो नामैकोनविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 119 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सूर्य पार्थिव अष्ट जगती लक्षणाधिकार नामक एक सौ उन्नीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 119 ॥

चतुःषष्टिजगतीचतुःषष्टिपीठनामात्मकं विंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 120 ॥

अधुना श्रीकर्णिकानायिकारतचूडागोमापत्यर्धनारीश्वरी- भैरवीप्रधाना-सर्वकूटेति जिनेन्द्रजगत्यष्टकं। विश्वकर्मोवाच —

चतुर्विंशतिविस्तारे चत्वारिंशन्मुखायते।
द्वौ द्वौ भागौ त्यजेत्कर्णे **पुरता**ऽग्रोभयस्तदा ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि 24 भाग चौड़ी और 40 भाग मुख पर आयत (24 × 40) जिसके कर्णों पर दो-दो भाग आगे और पीछे दोनों और छोड़ें।

अपरस्यर्जुसूत्रेण प्रासादस्तु कलांशकैः।
शुक्रनासो भवेद्भागो **मण्डपः** षट्प्रविस्तृतः ॥ 2 ॥
भद्रं तु भागनिष्कास उभयोर्वाम-**दक्षयो**ः।
चतुष्किको चेत्तस्याग्रे द्विभागायामविस्तरे ॥ 3 ॥

पीछे के ऋजुसूत्र से प्रासाद के सोलहवें भाग (1/16 हिस्से) में शुकनास बनाए और मण्डप छह भाग विस्तार वाला बनाए। उसके दोनों और बाएँ-दाएँ भद्र का निकास एक भाग का रखें और उसके आगे एक चतुष्किका या चौकी दो भाग विस्तार वाली बनाएँ।

द्विक्षण त्रिकमाख्यातं चतुर्भिस्तु चतुष्किका।
आयामश्चाष्टभागः स्यात् पृथुत्वं चैव चाष्टतः ॥ 4 ॥

मध्य भाग, क्षण 2 भाग का, 3 भाग का अथवा 4 भाग का हो— ऐसी चतुष्किका या चौकी का आयाम आठ भाग और विस्तार भी आठ भाग का रखें।

अष्टांशैरुत्तमं **ख्यातं मण्डपं नृत्यकं विदुः**।
द्विभागा क्षणचतुष्का **द्विभागा** पट्टशालिका ॥ 5 ॥

इसी प्रकार अष्टांश यानी आठ भाग वाले मण्डप को नृत्यशास्त्र के जानकार उत्तम मानते हैं। दो भाग से क्षण, मध्य चौकी या चतुष्का, दो भाग की पट्टशालिका बनाएँ।

कुर्याच्छालां **द्विभागां वा ह्यष्टौ च** देवसन्मुखाः।
सप्तसप्तोभये **पक्षे** द्वाविंशतिर्जिनालयाः ॥ 6 ॥

इसके अतिरिक्त, दो भाग की शाला या आठ देवता के सामने बनाएँ तथा उभय पक्षों या दोनों बाजुओं में सात-सात शाला बाईस जिनालयों में बनाएँ।

त्रिकौ त्रिकस्योभयतः **सङ्ख्या** चतुर्विंशतिः।
चतुर्भिः पृथुनिष्कासोऽ**ग्रे स्यादेवं** बलाणकम्॥ 7॥

त्रिक और त्रिक के दोनों और चौबीस की संख्या में चारों और चौड़ाई के निकास में ऐसे ही बलाणक भी बनाएँ।

श्रीदा शान्तिकरा **नित्यं पुरमध्ये** सुखावहा।
जिनेन्द्रस्य **भवनस्था सा वै** श्रीकर्णिकाभिधा॥ 8॥

इति श्रीकर्णी।

ऐसे सौभाग्य देने वाले, शान्तिकारक सुखदायी पुर के मध्य भाग में बने जिनेन्द्र के भवन में 'श्रीकर्णिका' नाम से जाने जाते है।

मण्डपाद् गर्भसूत्रेण **त्वष्टापदं** याम्योत्तरे।
नायिकेति **च तन्नाम जिनेन्द्रे** सर्वदायिका॥ 9॥

इति नायिका।

मण्डप के गर्भसूत्र से बाएँ-दाएँ आठ भाग में बनी 'नायिका' नाम की जगती जिनेन्द्र प्रासाद में समस्त कामना की पूर्ति करती है।

अष्टापदं परित्यज्य **तत्र कुर्याद्** बलाणकम्।
रत्नचूडेति **तन्नाम कर्तव्या** शान्तिमिच्छता॥ 10॥

इति रत्नचूडा।

अष्टापद छोड़कर वहाँ पर बलाणक बनाया जाए तो उसे 'रत्नचूड़ा' नाम दिया जाता है जो शान्ति प्रदाता है।

यथापूर्वे तथापरे शालाः स्युश्चतुर्विंशतिः।
गोमापती **तदा नाम कर्तव्या** सर्वकामदा॥ 11॥

इति गोमापती।

जैसी पूर्व में वैसी ही पीछे भी चौबीस शाला हो तो उसको 'गोमापती' नाम दिया जाता है जो सब कामना पूर्तिकारक है।

याम्योत्तरबलाणकानपरे पट्टशालिका।
अर्धनारीश्वरी नाम वीतरागे तु शान्तिदा॥ 12॥

इत्यर्धनारीश्वरी।

बाएँ-दाएँ तो बलाणक बनाएँ और पीछे की ओर पट्टशालिका या पटशाल बनाएँ तो उसे 'अर्धनारीश्वरी' नाम दिया जाता है। यह वीतराग भगवान् को शान्तिदाता है।

अपरे रथशाला स्यान्मठो याम्ये प्रतिष्ठितः।

उत्तरे रथरन्ध्रं च नाम्ना सा शान्तिभैरवी॥ 13॥

इति भैरवी।

पीछे के भाग में तो रथशाला बनी हो और बायीं ओर मठ या आवास बना हो, उत्तर की ओर रथ का रन्ध्र-द्वार हो तो उसे 'भैरवी' कहते हैं।

याम्योत्तरे च द्वाराग्रे कुर्यादष्टापदं तथा।

प्रधानेति च तन्नाम सिद्धकिन्नरसेविता॥ 14॥

इति प्रधाना।

बाएँ-दाएँ और द्वार के अग्रभाग में अष्टापद बनाया जाए तो उसे सिद्ध-किन्नर सेवित 'प्रधान' के नाम से जाना जाता है।

अष्टापदस्य संस्थाने शालात्रिकं तु कारयेत्।

सर्वकूटेति तन्नाम कर्तव्या तु जिनेश्वरे॥ 15॥

इति सर्वकूटा।

इति जिनेन्द्रस्य जगत्यष्टकम्।

अष्टापद के स्थान पर तीन शालाएँ बनाए तो उसका नाम 'सर्वकूट' है, इसे जिनेश्वर के लिए बनाया जाए।

जगत्या अष्टच्छन्दाः —

यादृशो मूलप्रासादो जगती चैव तादृशी।

भिन्नच्छन्दा न कर्तव्या जगती प्रासादस्थितिः॥ 16॥

जैसा मूल प्रासाद हो, उसी के अनुरूप जगती भी बनानी चाहिए क्योंकि प्रासाद की स्थिति से भिन्न छन्द की जगती बनाना अनुचित है।

चतुरश्रा तथायतावृत्ता वृत्तायता तथा।

अष्टाश्रा च तथा कार्या छन्दाः पञ्च प्रकीर्तिताः॥ 17॥

सामान्यतया चौकोर, आयताकार, वृत्ताकार, वृत्तायता, अष्टाश्रा— इस तरह पाँच छन्दों में जगती बनती है।

चतुरश्रा वीरभद्रा सुपताका तथायता।

वृत्ता च पूर्णभद्रा च वृत्तायता भद्राङ्गिका॥ 18॥

अष्टाश्रा च जया प्रोक्ता विजया चैव स्वस्तिका।

अजिता षोडशाश्रा च द्वात्रिंशाश्रापराजिता॥ 19॥

इनमें से चतुरश्रा या चौकोर को वीरभद्रा, आयताकार को सुपताका, वृत्तायत को पूर्णभद्रा, वृत्तायता को भद्राङ्गिका और अष्टाश्रा को जया और विजया या स्वस्तिका भी। षोडशाश्रा को अजिता और बत्तीस कोणीय को अपराजिता कहते हैं।

समन्ताच्च शिवे कुर्याज्जगती**श्चतुःषष्टिका:**$_{64}$ ।
धर्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां प्राप्तिहेतूरभिष्टदाः ॥ 20 ॥

शिव के निमित्त 64 जगती की समन्ता नाम की बनाए जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हेतु अभिष्ट को देने वाली है।

आख्याता जगतीछन्दाः पीठमानमतः **श्रृणु**।
छन्दालङ्कारसंयुक्तं **प्रोक्तं यद्** वास्तुवेदिभिः ॥ 21 ॥

इस प्रकार अब तक जगती-छन्दों के बारे में कहा गया। अब पीठ के मान-प्रमाण को सुनो! जो वास्तुवेद के जानकारों ने छन्द-अलङ्कारों से संयुक्त कहा है।

अथ चतुःषष्टि पीठनामानि —

वैराग्यं पीठमाख्यातं **पीठं चैव** सुनन्दनम्।
मन्दरं तु भवेत्पीठं पीठं त्रैलोक्यभूषणम् ॥ 22 ॥
मलयं चोज्जयन्तं **च पीठं वै** गन्धमादनम्।
हेमकूटं भवेत्पीठं चन्द्रशालं श्रियाननम् ॥ 23 ॥
विजयं महातिलकं **कामदं** देवदुर्लभम्।
वाराहपीठं **गरुडं श्रीनेत्रं च भद्रारथी** ॥ 24 ॥
भद्रं वै राष्ट्रवर्द्धनं **शङ्खावर्तं च पुष्पकम्**।
नागरं भद्रतिलकं **श्रीवत्सं तु** जयावहम् ॥ 25 ॥
रत्नकूटं महाकूटं त्रिकूटं कूटवर्द्धनम्।
हंसं च हंसतिलकं **महाकान्तं** मनोहरम् ॥ 26 ॥
वर्द्धमानं नन्द्यावर्तं **श्रीकूटं** विजयोद्भवम्।
कैलासं पृथ्वीतिलकं पृथ्वीजयं सुभद्रकम् ॥ 27 ॥
इन्द्रनीलं महानीलं **भूधरं च** किरातकम्।
वृषभं भद्रपीठं च द्राविडं च वैराटकम् ॥ 28 ॥
हर्म्यं हर्म्यतलं चैव सर्वभद्रं च सुन्दरम्।
हिमवानमृतोद्भवं कर्णिकारं महाप्रियम् ॥ 29 ॥
तुङ्गारं सिंहपीठं च शक्त्याख्यं **तु भैरवम्**।

कुलपीठं तथा तूक्तं शुक्ताख्यं व्योम्नःपतिम्।
जयं च विजयं चैव त्वजितं चापराजितम्।
एवं चतुःषष्टिपीठा$_{64}$ वास्तुवेदैरुदाहृताः ॥ 31 ॥

पीठों के विभिन्न नाम ये हैं— 1. वैराग्य, 2. सुनन्दन, 3. मन्दर, 4. त्रैलोक्यभूषण, 5. मलय, 6. जयन्त, 7. गन्धमादन, 8. हेमकूट, 9. चन्द्रशाल, 10. श्रियानन, 11. विजय, 12. महातिलक, 13. कामद, 14. वाराह, 15. गरुड़, 16. श्रीनेत्र, 17. भद्रारथी, 18. भद्र, 19. राष्ट्रवर्धन, 20. शङ्खावर्त, 21. पुष्पक, 22. नागर, 23. भद्रतिलक, 24. श्रीवत्स, 25. जयावह, 26. रत्नकूट, 27. महाकूट, 28. त्रिकूट, 29. कूटवर्धन, 30. हंस, 31. हंसतिलक, 32. महाकान्त, 33. मनोहर, 34. वर्धमान, 35. नन्द्यावती, 36. श्रीकूट, 37. विजयोद्भव, 38. कैलास, 39. पृथ्वीतिलक, 40. पृथ्वीजय, 41. सुभद्र, 42. इन्द्रनील, 43. महानील, 44. भूधर, 45. किरात, 46. वृषभ, 47. भद्रपीठ, 48. द्राविड़, 49. वैराट, 50. हर्म्य, 51. हर्म्यतल, 52. सर्वभद्र, 53. हिमवान, 54. अमृतोद्भव, 55. कर्णिकार, 56. तुङ्गार, 57. सिंहपीठ, 58. शक्ति, 59. भैरव, 60. शक्ति, 61. जय, 62. विजय, 63. अजित और 64. अपराजित— इस प्रकार की चौंसठ पीठ वास्तुविदों ने कही हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां चतुःषष्टिजगतीचतुःषष्टिपीठाधिकारो नाम विंशत्युत्तरशततं सूत्रम् ॥ 120 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में चौंसठ जगती चौंसठ पीठ अधिकार नामक एक सौ बीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 120 ॥

आयतनदेवानुक्रमनिर्णयो नामैकविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 121 ॥

अधुना एकद्वारशिवायतनक्रमः। विश्वकर्मोवाच —

आयतनं गणादीनां देवतानां यथाविधि।
अनुक्रमेण वक्ष्यामि यथोक्तं च पृथक् पृथक् ॥ 1 ॥
वामे तु गजकर्णं च सिद्धिं दद्याच्च दक्षिणे।
द्वौ पृष्ठकर्णयोश्चैव धूम्रको बालचन्द्रमाः ॥ 2 ॥
उत्तरे तु सदा गौरी याम्ये चैव सरस्वती।
पश्चिमे यक्षराजस्तु बुद्धिः पूर्वे तु संस्थिता ॥ 3 ॥

इति गणपत्यायतनक्रमः।

(अब गाणपत्यादि विभिन्न सम्प्रदायों के देवालयों में विविध देवताओं की

स्थापना की स्थिति के विषय में कहा जा रहा है) विश्वकर्मा बोले कि अब गणपति आदि देवताओं के आयतन, स्थिति के बारे में यथाविधि अनुक्रम से पृथक-पृथक् कहता हूँ। वाम भाग में गजकर्ण गणेश हो। सिद्धि को दक्षिण, पीछे दोनों कोनों पर धूम्रक और बालचन्द्र तथा उत्तर की ओर सदा गौरी और दक्षिण की ओर सरस्वती को स्थापित करें। पश्चिम में यक्षराज और पूर्व में बुद्धि की स्थापना करनी चाहिए।

वामे गणपतिश्चैव दक्षिणे पार्वती स्थिता।
नर्ऋत्ये भास्करं विद्याद् वायव्ये च जनार्दनम्॥ 4॥
मातृभ्यो मातृसंस्थानं **दक्षिणस्यां हि कारयेत्।**
सौम्ये शान्तिगृहं **कुर्यात् पश्चिमे** जलशायिनम्॥ 5॥

इत्येकद्वारशिवायतनक्रमः।

एक द्वार वाले शिवालय में वाम भाग में गणपति, दक्षिण भाग में पार्वती स्थित होगी। नैर्ऋत्य कोण में भास्कर सूर्यदेव और वायव्य कोण में जनार्दन भगवान् विष्णु तथा मातृकाएँ मातृस्थान में दक्षिण दिशा में ही रखें। उत्तर दिशा में शान्तिगृह बनाएँ और पश्चिम में जलशायिन् भगवान नारायण की स्थापना करें।

चतुर्मुखशिवायतनक्रमः —

वामे स्नानगृहं कुर्यात् सोमद्वारं तु दक्षिणे।
मध्ये रुद्रः प्रतिष्ठाप्यो मातृस्थानं च दक्षिणे॥ 6॥
वामे देवीं महालक्ष्मीमुमां वै भैरवीं तथा।
ब्रह्मविष्णू तथा रुद्रं पृष्ठदेशे तु कारयेत्॥ 7॥
चन्द्रादित्यौ **स्थितौ कर्णे ह्याग्नेय्यां स्कन्द एव च।**
ईशाने विघ्नराजस्तु धूम्रश्चेशानगोचरे॥ 8॥

इति चतुर्मुखशिवायतनक्रमः।

यदि चतुर्मुख शिवालय हो तो वाम भाग में स्नानगृह और सोम-द्वार या शिव का द्वार दक्षिण में, मध्य में रुद्र की प्रतिष्ठा करें और मातृस्थान दक्षिण में रखें। वाम भाग में देवी महालक्ष्मी, उमा और भैरवी तथा पृष्ठदेश में ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र को रखें। चन्द्रदेव और आदित्य सूर्यदेव को कोनों पर तथा आग्नेयकोण पर स्कन्द और ईशान कोण पर विघ्नराज गणपति को तथा धूम्र को भी ईशान कोण में बनाएँ।

ब्रह्मायतनक्रमः —

आग्नेय्यां तु गणेशः स्यान्नमातृस्थानं **च दक्षिणे।**
नैर्ऋत्ये तु सहस्राक्षो जलशायी **च वारुणे॥ 9॥**

उमाशङ्करौ वायव्ये ग्रहाश्चैवोत्तरस्थिताः।
ईशाने तु श्रियादेवी प्राच्यां तु धरणीधरः॥ 10॥

इति ब्रह्मायतनक्रमः।

यदि ब्रह्मा का प्रासाद हो तो आग्नेयकोण पर गणेश हो और मातृस्थान दक्षिण में हों। नैर्ऋत्यकोण में सहस्राक्ष और पश्चिम दिशा में जलशायी नारायण तथा वायव्यकोण में उमा के साथ शङ्कर और सभी ग्रह उत्तर में स्थित हों। ईशानकोण में श्रियादेवी और पूर्व दिशा में धरणीधर को स्थापित करना चाहिए।

विष्णवायतनक्रमः —

पूर्वे नारायणं देवं पुण्डरीकाक्षं दक्षिणे।
पश्चिमे चैव गोविन्दमुत्तरे मधुसूदनम्॥ 11॥
विष्णुं कुर्यात्तथेशाने चाग्नेय्यां तु जनार्दनम्।
नैर्ऋत्ये पद्मनाभं च वायव्ये माधवं तथा॥ 12॥
मध्ये तु केशवः स्थाप्यो वासुदेवस्तथोच्यते।
सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नो ह्यनिरुद्धो यथाक्रमम्॥ 13॥

विष्णु के मन्दिर में पूर्व दिशा में नारायण देव और दक्षिण दिशा में पुण्डरीकाक्ष, पश्चिम में गोविन्द और उत्तर में मधुसूदन, ईशानकोण में विष्णु और आग्नेयकोण में जनार्दन, नैर्ऋत्यकोण में पद्मनाभ और वायव्यकोण में माधव तथा मध्य में केशव की स्थापना करके वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को यथाक्रम स्थापित करें।

जलशायी तथा प्रोक्ताः दशावतारसंयुतः।
शूकरस्त्वग्रतः स्थाप्यः सर्वदेवमयः शुभः॥ 14॥
शेषकूर्मसमायुक्तो लक्ष्मीर्वै वाम-पार्श्वतः।
विष्णवायतनमित्येवं कथितं त्वपराजित॥ 15॥

इति विष्णवायतनक्रमः।

जलशायी भगवान् नारायण को दशावतार के साथ बनाएँ और उनके आगे की ओर वराह की स्थापना करें। यह स्वरूप सर्वदेवमय शुभ हो। शेष नाग और कूर्म के साथ लक्ष्मी को उनके बाएँ पार्श्व में स्थापित करें। इस तरह से हे अपराजित! यह विष्णवायतन बनता है।

सूर्यायतनक्रमः —

आग्नेय्यां तु कुजः स्थाप्यो गुरुर्याम्ये प्रतिष्ठितः।

नैर्ऋत्ये राहुसंस्थानं पश्चिमे चैव भार्गवः ॥ 16 ॥
वायव्ये केतुसंस्थानं सौम्यायां बुध एव च।
ईशाने च शनिं दद्यात् प्राच्यां चैव तु चन्द्रमाः ॥ 17 ॥

इति सूर्यायतनक्रमः।

सूर्य के मन्दिर में आग्नेयकोण में मङ्गल की स्थापना करें और गुरु को दक्षिण दिशा में प्रतिष्ठित करें। नैर्ऋत्य में राहु को रखें और पश्चिम में शुक्र को रखें। वायव्य में केतु का स्थान रखें और उत्तर में बुध का। ईशानकोण में शनि और पूर्व दिशा में चन्द्रमा को स्थापित करें।

गौर्यायतनक्रमः —

गौर्यायाः सम्प्रवक्ष्यामि देवतानामनुक्रमम्।
दक्षे मातृः श्रिया सौम्ये सावित्रीं पश्चिमे विदुः ॥ 18 ॥
द्वे पृष्ठकर्णयोश्चैव भगवती सरस्वती।
गणेशं च कुमार च त्वीशान चाग्निगोचरे ॥ 19 ॥
कुण्डलाभ्यामलङ्कृत्वा सर्वाभरणभूषिता।
मध्ये देवी प्रतिष्ठाप्या महेशस्य सदा प्रिया ॥ 20 ॥

इति गौर्यायतनक्रमः।

अब मैं गौरी के मन्दिर में देवताओं के नाम अनुक्रम से कहता हूँ। दक्षिण में मातृकाओं और उत्तर में श्रिया तथा पश्चिम में सावित्री और दोनों पृष्ठ कोनों पर भगवती व सरस्वती की स्थापना करें। ईशानकोण पर गणेश और आग्नेयकोण पर कुमार या कार्तिकेय को कुण्डल और सभी अलङ्करणों से विभूषित बनाएँ। मध्यम में महेश की सदा प्रिय रहने वाली देवी गौरी की स्थापना करें।

जिनालयक्रमः —

जिनालयं प्रवक्ष्यामि जिनेन्द्रभवनं तथा।
आश्रयन्ति ततो दिव्या जिनशासनपारगाः ॥ 21 ॥
जिनेन्द्रस्य तथा यक्षा देव्यश्च जिनमातृकाः।
तीर्थङ्कराणां सर्वेषामतीतानामवर्जिनाम् ॥ 22 ॥
केवल्यृषभदेवाद्याः पद्मनाभादितः क्रमात्।
पृथक् चतुर्विंशतिर्वै जिनानां वा द्वासप्ततिः$_{72}$ ॥ 23 ॥

अब जिनेन्द्र भवन या जिनालय के बारे में कहता हूँ जहाँ सभी दिव्य जिनशासन के पार गए हुए तीर्थङ्कर आश्रय पाते हैं। जिनेन्द्रों की यक्षदेवियों की,

जिन मातृकाओं की और सभी अतीत के तीर्थङ्करों, ऋषभदेवादि केवलियों की और भावी पद्मनाम के क्रम से पृथक् चतुर्विंशति (अवसर्पिणी या चौबीसी) के अनुसार जिनों की संख्या बहत्तर होती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छाया-
मायतनदेवानुक्रमनिर्णयाधिकारो नामैकविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 121॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में आयतन देवानुक्रम निर्णय अधिकार नामक एक सौ इक्कीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 121॥

बलाणकलक्षणं द्वात्रिंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 122॥

अधुना बलानकमानमाह। विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बलानकसुल**क्षणम्।**
विस्तीर्णं जगतीपादे पदपादविवर्जितम्॥ 1॥

(इस सूत्र में मन्दिर के प्रमुखाङ्ग बलाणक के विषय में कहा जा रहा है) विश्वकर्मा बोले कि अब मैं बलानक के सुलक्षणों को कहता हूँ। इसके विस्तीर्ण जगती पाद चतुर्थांश एक चौथाई पाद में कम होते हैं।

प्रासादव्यासमानेन गर्भमानेन चाऽथवा।
शालालिन्दप्रमाणेन त्रिविधं$_3$ मानलक्षणम्॥ 2॥

बलानक के तीन प्रकार के मान बताए जाते हैं— 1. प्रासाद के व्यास के बराबर का मान 2. प्रासाद के गर्भ के मान के बराबर अथवा 3. शाला अलिन्द के बराबर का मान।

कनिष्ठे चोत्तमं कार्यमुत्तमे च कनिष्ठकम्।
मध्यमे मध्यमं कार्यमेतन्मानं च शोभनम्॥ 3॥

(शिल्पी के लिए यह ज्ञातव्य है कि देवालय में) इनके प्रयोग के बारे में यह ध्यान रखना चाहिए कि कनिष्ठ में उत्तम और उत्तम में कनिष्ठ तथा मध्यम में मध्य मान रखने पर शोभायुक्त होते हैं।

अन्यच्च युक्तिभेदैश्च पुरतः पृष्ठतोऽपिवा।
अनेकैरर्थभेदैश्च कथयाम्यपराजित॥ 4॥

इसके अन्य भी युक्ति भेद आगे, पीछे तथा अनेक अर्थ भेदों को हे अपराजित! मैं तुम्हें कहता हूँ।

अथ बलानकभेदा: —

वामनश्च विमानश्च हर्म्यशालश्च पुष्करः।
तथा चोत्तुङ्गनामा च पञ्चैते च बलानकाः॥ 5॥

बलानक पाँच प्रकार के होते हैं— 1. वामन बलानक, 2. विमान, 3. हर्म्यशाल, 4. पुष्कर और ५. उत्तुङ्ग बलानक।

वामनविमानहर्म्यशालपुष्करोत्तुङ्गेति पञ्चबलाणकास्तेषां लक्षणानि च —

वर्तनं कथयिष्यामि पदसंस्थानमानतः।
प्रासादाग्रे च प्राकारे मन्दिरे वारिमध्यतः॥ 6॥

इनका वर्तन भी पदमान संस्थान अनुसार कहता हूँ। वामन बलानक का प्रयोग प्रासाद के आगे प्राकार परकोटे पर, मन्दिर पर व जलाशय के मध्य में किया जाता है।

वामनं जगतीग्रस्तं विमानं तु तदाश्रितम्।
हर्म्यशालं गृहे वाऽपि प्रासादे नगरानने॥ 7॥

इसी प्रकार विमान बलानक का प्रयोग वामन की जगती के आधारित होता है। हर्म्यशाल का प्रयोग गृह में, प्रासाद और नगर के द्वार पर किया जाता है।

पुष्करं वारिमध्यस्थमग्रतचैव भूषितम्।
सप्तभूमं नवभूममतऊर्ध्वं न कारयेत्॥ 8॥

पुष्कर बलानक का प्रयोग जलाशय के मध्य बने भवन (जलमहल) के आगे शोभायमान होता है। इन बलानकों को सात मंजिलों से लेकर नौ मंजिला तक बना सकते हैं, परन्तु इनसे अधिक नहीं बनाना चाहिए।

प्रासादाग्रे-जं कुर्याज्जगतीमुखमण्डनम्।
लक्षणं तस्यं वक्ष्यामि स्थानमानं च भूमिकाम्॥ 9॥

प्रासाद के आगे के भाग में जगती के द्वार पर शोभा बढ़ाने के लिए बलानक बनाने चाहिए जिनके स्थान-मान और मंजिलों के लक्षण मैं कहता हूँ।

एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्-सप्ता-ष्टभिरेव च।
स्थानं तथैवोव्येक्तं[1] कर्तव्यं तदनन्तरम्॥ 10॥
प्रासादादिक्रमद्वारं मण्डपान्ते निवेशयेत्।
तत्क्रमेण प्रकर्तव्यं द्वारं तस्य बालनके॥ 11॥

एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः अथवा सात तक इनके स्थान कहे हैं जो इनके

---

1. 'स्थानं तस्य-सेवोक्तं ?' इति प्रकाशित पाठः।

अनन्तर करने चाहिए और इनको प्रासादों के आदि क्रम द्वार पर अर्थात् मुख्यद्वार पर अथवा मण्डप के अन्त में बनाने चाहिए। इस प्रकार के क्रम में द्वारों पर बालनक बनाने चाहिए।

हस्तेऽङ्गुला भवेद् वृद्धिरङ्गुलं **हस्तमानतः।**
कर्तव्यं पूर्वमानेन **हीने हीनं समे समम्॥ 12॥**

हस्तमान अर्थात् गज के मान के अनुसार प्रति गज एक अङ्गुल की वृद्धि होनी चाहिए जो पूर्व मान के अनुसार करें। हीन मान के साथ हीन और सम के साथ सम मान कल्पित करना चाहिए।

जगती तु शिरोदेशे **जठरं** चोत्तमाङ्गजे ?।
जगत्युदयतो **द्वारं कर्तव्यं तु** बलानके॥ 13॥

जगती के शिरोभाग में बलानक का जठर मुख्य भाग का अङ्ग बनाएँ और जगती के उदय अर्थात् ऊँचाई आरम्भ हो, वहीं से बलानक पर जाने का द्वार भी बनाना चाहिए।

द्वारं चैतेन मानेन प्रकुर्याच्च **बलानके।**
परापरविभागेन **हीनं वा अधिकं यदि॥ 14॥**
तद्द्वारं दोषदं प्रोक्तमेकमानेन **कामदम्।**
पुरतः पृष्ठतो द्वारं यथा सौभाग्यतं **न्यसेत्॥ 15॥**

बलानक के द्वार भी इतने मानों के बनाने चाहिए। परापर विभाग के अर्थात् आगे-पीछे के भाग के द्वार यदि हीन या अधिक बन जाए तो वे द्वार दोषपूर्ण माने जाएँगे। अतः एक मान के अनुसार ही द्वार बनाए तो वे कामनापूर्ति करने वाले होते हैं। इस तरह आगे और पीछे के द्वारों को सौभाग्यदाता बनाया जाता है।

तुलोदयप्रमाणं —

तत्रैव तेन मानेन तत्समं च तुलोदयम्।
तथा तुलोदये भूमिर्घटकादि **ततःसमम्॥ 16॥**

इसी तरह इनके ही मान के अनुसार तुलोदय भी बनाना चाहिए और तुलोदय के सभी घटक भी उसी के समान बनाने चाहिए।

तत्समं तु प्रकर्तव्यमुत्तमाङ्गं सपट्टकम्।
उदयोन्नतमानेन **सोपानं** तुलमध्यतः॥ 17॥

उसी के अनुरूप पट्टयुक्त उत्तमाङ्ग उत्सङ्ग को बनाना चाहिए और तुला के मध्य से ऊँचाई के मान के ही अनुसार बलानक तक जाने के सोपान अर्थात्

सीढ़ियाँ भी बनानी चाहिए।

अञ्चला[1] बाह्यतश्चैवं सौपानं च विदुर्बुधाः।
कुम्भी स्तम्भशिरःपट्टं पृथक् सूत्रात्तुलादिकम्॥ 18॥

भीतर की और बाहर की दो प्रकार की सीढ़ियों का क्रम विद्वानों ने बताया है। तुलादिकों के स्तम्भों के कुम्भी स्तम्भशिर, पट्ट पृथक् सूत्र में कहे हैं।

युक्ता न्यस्ताः समा कुम्भी स्तम्भोदुम्बरशिर्षिकाः।
भूमिं तु भूमिमानेन समसूत्रैर्विचक्षणाः॥ 19॥

कुम्भी को स्तम्भ के उदुम्बर-शीर्षिका के समसूत्र में भूमि पर भूमिमान के अनुसार ही बनाने का निर्देश विचक्षण शिल्पियों ने दिया है।

मूलपीठसमसूत्रे आदिभूमेस्तु **मस्तकम्।**
ऊर्ध्वं पट्टानुक्रमेण **कर्तव्यो** भूमिकाक्रमः॥ 20॥

आदि भूमि से लेकर मस्तक तक मूल पीठ के समसूत्र ऊँचा, ऊर्ध्वपट्ट अनुक्रम से करना चाहिए।

उदुम्बरशिरोभूमिर्जलाधारे **प्रशस्यते।**
बलानकस्तत्तदग्रे **तोरणं** भद्रमस्तके॥ 21॥

उदुम्बर के ऊपरी भाग में जलाधारी बनाना प्रशस्त कहा गया है और बलानक के आगे तोरण पर भद्रमस्तक बनाएँ।

तदूबाह्ये मत्तावरणं द्वाराणि वाम-दक्षिणे।
सन्मुखानि **त्रीणि शेषं मत्तावरणके तथा॥ 22॥**

उसके बाहर की ओर मत्तवारण द्वारों को बाएँ और दाएँ भाग में बनाएँ और बलानक के सन्मुख तीन शेष मत्तवारण द्वार बनाएँ।

देवप्रासादाग्रे बलानकं कुर्याद् —

शिवसूर्यौ ब्रह्मविष्णू चण्डिका **जिन एव** च।
एतेषां च सुराणां च कुर्यादग्रे बलानकम्॥ 23॥

शिव, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, चण्डिका **और तीर्थङ्करों** के प्रासादों के आगे बलानक बनाने चाहिए।

विमानस्तुङ्गनामा **च** राजवेश्माग्रतः **शुभः।**
हर्म्यशालो **गृहे वापि कर्तव्यो** गोपुराकृतिः॥ 24॥

1. 'अस्तुला (?)' इति प्रकाशित पाठः।

विमान और उतुङ्ग नामक बलानक राजमहलों के आगे शुभ होते हैं। हर्म्यशाल बलानक को गृहों में भी गोपुराकृति, पोल के रूप में बनाया जा सकता है।

पुष्करो वारिमध्यस्थो **वामनो** देवताग्रतः।
इषुभेदाऽ **वामनाद्याः** कर्तव्यास्तु **बलानकाः** ॥ 25 ॥

पुष्कर बलानक को तो जलाशय के मध्य में ही बनाना चाहिए। वामन बलानक देवताओं के प्रासाद के आगे बनाया जाए। इस तरह इन पाँचों भेदों के बलानकों को वामन से लेकर बनाना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां बलाणकलक्षणाधिकारो **नाम** द्वाविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 122 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में बलाणक लक्षण अधिकार नामक एक सौ बाईसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 122 ॥

प्रासादपीठोदयमानं त्रयोविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 123 ॥

अधुना नागरलतिनसान्धारमिश्रकविमानप्रासादपीठोदयमानं। विश्वकर्मोवाच —

एकहस्ते तु प्रासादे त्रयस्त्रिंशद्भिरङ्गुलैः।
द्विहस्ते तु प्रकर्तव्यः पञ्चपञ्चाशदङ्गुलैः ॥ 1 ॥

(इस सूत्र में नाना प्रासादों की पीठों का मान वाणत है) विश्वकर्मा बोले कि एक गज की चौड़ाई वाले प्रासाद का पीठोदय मान 33 अङ्गुल और दो गज के प्रासाद की चौड़ाई वाले में 55 अङ्गुल का रखें।

सप्तसप्तत्यङ्गुलैश्च **प्रासादे तु** त्रिहस्तके।
चतुर्हस्ते तु प्रासादे एकोनशतसङ्ख्यकैः ॥ 2 ॥

तीन गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के 77 अङ्गुल, चार गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के 99 अङ्गुल का पीठोदयमान रखें।

प्रासादे पञ्चहस्ते सैकविंशतिशताङ्गुलैः।
पञ्चहस्तान्ततो वृद्धिर्ह्रस्वं कुर्यात्तदूर्ध्वतः ॥ 3 ॥
पञ्चहस्तादूर्ध्वतश्च **यावत्स्यान्नवहस्तकम्**।
ह्रस्वं हस्तार्धभागेन **पञ्चोर्ध्वं च** नवान्तकम् ॥ 4 ॥

इसी प्रकार 5 गज चौड़ाई के प्रासाद के 121 अङ्गुल का पीठोदय होगा। पाँच गज से आगे तक कमी-वेशी करनी, परन्तु उसके ऊपर जब तक 9 गज न हो जाए तब तक आधे गज के बराबर कमी पाँच से नौ तक करें।

तदूर्ध्वे त्रयोदशान्तं पादभागं परित्यजेत्।
अष्टमांशं ततो ह्रस्वं यावद्विंशतिहस्तकम्॥ 5॥

इसके ऊपर 13 गज के अन्त तक चतुर्थांश या एक चौथाई ही कम करें और इसके ऊपर जब तक 20 गज तक जाए तब तक अष्टमांश कम करते जाएँ।

ततो द्वात्रिंशदंशं च ह्रस्वं यावच्छतार्धकम्।
प्रहरान्तं कुम्भकादेरुच्छ्रयो नागरे मतः॥ 6॥
विभक्ते चैकविंशत्या भागेन स्यात्तदुच्छ्रयः।
पीठानि पञ्च पञ्चादेर्नवान्तं भागवृद्धितः॥ 7॥

इसके बाद, बतीसवाँ भाग पचास गज तक बढ़ते समय कम करते जाएँ। नागर मतानुसार कुम्भक की आदि ऊँचाई प्रहरान्त तक 21 भाग की ऊँचाई होनी चाहिए। पीठों की 5 से आरम्भ करके 9 तक के अन्त के भाग में वृद्धि करते जाना चाहिए।

लतिने वाऽथ सान्धारे नागरे मिश्रकेऽपि वा।
विमानेऽपि समाख्यातः पीठमानसमुच्छ्रयः॥ 8॥

इस तरह प्रसिद्ध लतिन प्रासाद, सान्धार प्रासाद, नागर प्रासाद, मिश्रक प्रासाद या विमान प्रासाद में भी पीठमान की ऊँचाई बताई गई है।

द्राविडपीठोदयमानम् —

पृथुप्रासादार्धोदये द्राविडे पीठकोच्छ्रयः।
तदूर्ध्वे तु भवेद्रेखा द्राविडे कर्मचर्चिता॥ 9॥

द्राविड़ पीठ की ऊँचाई प्रासाद की पृथु या चौड़ाई के आधे के बराबर होनी चाहिए। इसके ऊपर तो द्राविड़ कर्म में चर्चित रेखा होती है।

भूमिजपीठोदयमानम् —

कुम्भकादेः क्षितेरन्ते भूमिजे वै पृथूदयः।
क्षितिशृङ्गोत्सेधमाने पीठमर्धे प्रकल्पयेत्॥ 10॥

भूमिज प्रासाद की चौड़ाई के बराबर कुम्भ के आदि से क्षिति के अन्त तक क्षितिशृङ्ग की ऊँचाई पीठ के आधे के बराबर कल्पित करनी चाहिए।

वराटपीठोदयमानम् —

वराटे वै विंशतिधा क्षितेरन्ततउच्छ्रयः।
ऋतुभागं भवेत्पीठमधः सप्तभिरुन्नतम्॥ 11॥

इसी प्रकार वराट प्रासाद में 20 तक क्षिति का अन्त ऊँचा होना चाहिए। इस तरह पीठ छह भाग या सात भाग ऊँची हों।

पीठोच्छ्रयप्रभेदास्तु कथिताश्च शुभप्रदाः ।
इष्टमेवाप्नुतः कामं कर्तृकप्रवरावुभौ ॥ 12 ॥

इति पीठोच्छ्रयप्रभेदाः ।

इस तरह प्रासाद के पीठोदय को सभी भेदों से युक्त बताया जो शुभप्रदा है और जिससे काम करने वाले प्रवरजनों के काम में इष्ट की पूर्ति होती है।

भिट्टस्य मानं लक्षणश्च --

प्रासादपादमानं च ज्ञात्वा चैव विचक्षणैः ।
षोडशाङ्गुलमानेन[16] कर्तव्यास्तु दृढाः समाः ॥ 13 ॥
प्रासादच्छन्दमस्योर्ध्वे दृढखरशिलोत्तमा ।
एकहस्ते पादहस्तः पञ्चान्तेऽङ्गुलवृद्धितः ॥ 14 ॥

(अब भिट्ट का मान व लक्षण कहा जाता है) प्रासाद की चौड़ाई के चौथे भाग, या पादमान ज्ञात करके विचक्षण शिल्पी को चाहिए कि 16 अङ्गुल के मान के बराबर दृढ़ खरशिला उत्तम प्रकार से रखें। उक्त खरशिला एक गज के साथ चतुर्थांश गज के अनुसार पाँच गज के अन्त तक एक-एक अङ्गुल बढ़ाते जाएँ।

अर्धाङ्गुलं तदूर्ध्वे तु नवान्तं सुदृढोत्तमा ।
पादवृद्धिं पुनर्दद्याद् हस्ते हस्ते तथा पुनः ॥ 15 ॥
हस्तानां विंशतिर्यावदर्धपादा तदूर्ध्वतः ।
विंशत्यङ्गुलपिण्डा च शतार्धे तु खरा शिला ॥ 16 ॥

इसके ऊपर पुनः आधा-आधा अङ्गुल नौ गज तक उत्तम होता है। इसके बाद एक-एक गज पर पुनः चतुर्थांश अङ्गुल की वृद्धि करते जाए जब तक कि बीस गज तक न पहुँच जाएँ। इसके बाद 20 गज के ऊपर चतुर्थांश का भी आधा अर्थात् अष्टमांश ही बढ़ाएँ। इस तरह पचास गज तक के प्रासाद की खरशिला 20 अङ्गुल के पिण्ड की अर्थात् मोटाई की होनी चाहिए।

प्रासादच्छन्दमाकारैर्विविधैर्दलनिर्गमैः ।
इष्टकारज्जुसम्युक्तास्तलतो ये च पृष्ठतः ॥ 17 ॥
शिलास्ताश्चैव तीक्ष्णाग्राः स्पर्शयेत्तु प्रयत्नतः ।
सुदृढाः समताढ्याश्च सूत्रपातं तदूर्ध्वतः ॥ 18 ॥

प्रासाद के छन्द के आकार में तरह-तरह के दलों का निर्गम करते समय ईंटों और सूत की सीध तल से लेकर पृष्ठ तक रखना चाहिए और उनसे शिला को बड़ी ही तीक्ष्णता से प्रयत्नपूर्वक स्पर्श कराना चाहिए अर्थात् पक्की तरह से शिला पर ईंटों

पीठोच्छ्रयप्रभेदास्तु कथियाश्च शुभप्रदाः।
इष्टमेवाप्नुतः कामं कर्तृकप्रवरावुभौ॥ 12॥

इति पीठोच्छ्रयप्रभेदाः।

इस तरह प्रासाद के पीठोदय को सभी भेदों से युक्त बताया जो शुभप्रदा है और जिससे काम करने वाले प्रवरजनों के काम में इष्ट की पूर्ति होती है।

भिट्टस्य मानं लक्षणञ्च —

प्रासादपादमानं च ज्ञात्वा चैव विचक्षणैः।
षोडशाङ्गुलमानेन16 कर्तव्यास्तु दृढाः समाः॥ 13॥
प्रासादच्छन्दमस्योर्ध्वे दृढखरशिलोत्तमा।
एकहस्ते पादहस्तः पञ्चान्तेऽङ्गुलवृद्धितः॥ 14॥

(अब भिट्ट का मान व लक्षण कहा जाता है) प्रासाद की चौड़ाई के चौथे भाग, या पादमान ज्ञात करके विचक्षण शिल्पी को चाहिए कि 16 अङ्गुल के मान के बराबर दृढ़ खरशिला उत्तम प्रकार से रखें। उक्त खरशिला एक गज के साथ चतुर्थांश गज के अनुसार पाँच गज के अन्त तक एक-एक अङ्गुल बढ़ाते जाएँ।

अर्धाङ्गुलं तदूर्ध्वे तु नवान्तं सुदृढोत्तमा।
पादवृद्धिं पुनर्दद्याद् हस्ते हस्ते तथा पुनः॥ 15॥
हस्तानां विंशतिर्यावदर्धपादा तदूर्ध्वतः।
विंशत्यङ्गुलपिण्डा च शतार्धे तु खरा शिला॥ 16॥

इसके ऊपर पुनः आधा-आधा अङ्गुल नौ गज तक उत्तम होता है। इसके बाद एक-एक गज पर पुनः चतुर्थांश अङ्गुल की वृद्धि करते जाए जब तक कि बीस गज तक न पहुँच जाएँ। इसके बाद 20 गज के ऊपर चतुर्थांश का भी आधा अर्थात् अष्टमांश ही बढ़ाएँ। इस तरह पचास गज तक के प्रासाद की खरशिला 20 अङ्गुल के पिण्ड की अर्थात् मोटाई की होनी चाहिए।

प्रासादच्छन्दमाकारैर्विविधैर्दलनिर्गमैः।
इष्टकारज्जुसम्युक्तास्तलतो ये च पृष्ठतः॥ 17॥
शिलास्ताश्चैव तीक्ष्णाग्राः स्पर्शयेत्तु प्रयत्नतः।
सुदृढाः समताढ्याश्च सूत्रपातं तदूर्ध्वतः॥ 18॥

प्रासाद के छन्द के आकार में तरह-तरह के दलों का निर्गम करते समय ईंटों और सूत की सीध तल से लेकर पृष्ठ तक रखना चाहिए और उनसे शिला को बड़ी ही तीक्ष्णता से प्रयत्नपूर्वक स्पर्श कराना चाहिए अर्थात् पक्की तरह से शिला पर ईंटों

को चुनाई के समय जमाना चाहिए। इससे वे सुदृढ़ समतायुक्त सूत्रपात में ऊँचाई तक जा सकेंगी।

भिट्टप्रमाणमाह —

एकहस्ते तु प्रासादे भिट्टं वेदाङ्गुलं स्मृतम्।
एकतः पञ्चहस्तान्तं हस्ते चैकैकमङ्गुलम्॥ 19॥

एक गज के प्रासाद की चौड़ाई होने पर उसके भिट्ट का मान चार अङ्गुल का होना चाहिए। एक गज से पाँच गज तक के चौड़ाई के प्रासाद में प्रत्येक गज के साथ एक-एक अङ्गुल की वृद्धि करते जाएँ।

पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्तं हस्ते पादोनमङ्गुलम्।
विंशत्यन्तं दशोर्ध्वं च वृद्धिरर्धाङ्गुला करे॥ 20॥
शतार्धान्तं ततो हस्तचतुष्के चैकमङ्गुलम्।
अनेनैव प्रकारेण भिट्टोच्छ्रायं प्रकल्पयेत्॥ 21॥

इसके बाद, 5 गज से दस गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के अन्त तक अङ्गुल का चौथा भाग कम करते जाएँ अर्थात् 3/4 अङ्गुल का ही रखें। इसके बाद पुनः 10 से 20 गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के क्रम में भिट्ट की यह वृद्धि आधा अङ्गुल की ही रखे गज के साथ। इसके आगे, 20 गज की चौड़ाई वाले प्रासाद से 50 गज की चौड़ाई वाले प्रासाद तक की भिट्ट का मान चार-चार गज की एक-एक अङ्गुल करते जाए। इसी प्रकार से भिट्ट की ऊँचाई भी कल्पित करें।

एकभिट्टं द्विभिट्टं वा भिट्टत्रयमथोच्यते।
एवं त्रिपुष्पकं चैव हर्षो धर्मो यशोऽपि च॥ 22॥

एक भिट्ट, दो भिट्ट या तीन भिट्ट— जैसा भी उचित लगे करें। इस प्रकार त्रिपुष्पक रचना से हर्ष, धर्म और यश बढ़ता है।

तृतीये च तदर्धेन पुष्पकान्वितचिप्पिका।
उच्छ्रयात् पादनिष्काशं कुर्याद्धि स्वस्वमानतः॥ 23॥

तीसरे भिट्ट पर उसके आधे भाग में पुष्प अलङ्करण से युक्त चिप्पिका बनाएँ जो अपने मान की अपेक्षा ऊँचाई से चतुर्थांश निकास युक्त बनें।

कर्णभद्रोपभद्राश्च रथोपरथकर्णिकाः।
इदं मानं तु भिट्टस्य पीठं चैव तदूर्ध्वतः॥ 24॥

इसी तरह भिट्ट के कर्णभद्र और उपभद्र भी, रथ और उपरथ तथा कर्णिका भी उक्त मान के अनुसार रहेगा। इनसे ऊपर की और फिर प्रासाद पीठ बनेगी जिसका

मान आगे निर्देशानुसार रखना चाहिए।

एकहस्तादिपञ्चाशद्धस्तान्तप्रासादेषु पीठमानम् —

एकहस्ते तु प्रासादे पीठं वै द्वादशाङ्गुलम्।
द्व्यष्टाङ्गुलं द्विहस्ते च त्रिहस्तेऽष्टादशाङ्गुलम्॥ 25॥

सामान्यतया पीठ एक गज के चौड़ाई वाले प्रासाद में 12 अङ्गुल प्रमाण से बनाए। दो गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के 16 अङ्गुल और तीन गज की चौड़ाई वाले प्रासाद में 18 अङ्गुल ऊँची पीठ बनावें। इस प्रकार एक गज चौड़ाई वाले प्रासाद के 12 अङ्गुल अर्थात् 12/24 = 1/2 आधी; दो गज चौड़ाई वाले प्रासाद के 16 अङ्गुल अर्थात् 1/3 यानी त्रिभाग और तीन गज की चौड़ाई के प्रासाद के 18 अङ्गुल अर्थात् 1/4 यानी चतुर्थांश की परिकल्पना बनती है।

अर्धं पादं त्रिभागं वा त्रिविधं परिकल्पयेत्।
त्र्यंशेनार्धेनं पादेन चतुर्हस्ते सुरालये॥ 26॥
पादं पीठोच्छ्रयं कार्यं प्रासादे पञ्चहस्तके।
पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्तं रसांशं हस्तवृद्धेय॥ 27॥

इसी तरह चार गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के तीन अंश के आधे के बराबर तथा पाँच गज की चौड़ाई के प्रासाद का चतुर्थांश अर्थात् 120 भाजक 4 = 30 अङ्गुल का पीठोदय बनाए। पाँच गज से आगे 10 गज तक के चौड़ाई वाले प्रासाद के लिए एक-एक गज की वृद्धि के साथ 1/6 अंश बढ़ाते जाएँ।

ततो हस्ते चाष्टमांशा वृद्धिः स्याद् द्वादशावधि।
षट्त्रिंशदन्तं वृद्धिस्तु हस्ते वै द्वादशांशिका॥ 28॥
चतुर्विंशत्यंशिका तदूर्ध्वं यावच्छतार्धकम्।

इसके उपरान्त 12 गज के प्रासाद तक 1/8 अंश तक की वृद्धि करें और इसके पश्चात्, 12 के बाद 36 गज की चौड़ाई के प्रासाद के लिए पीठ की ऊँचाई 1/12 अंश की करते जाएँ। छत्तीस गज के बाद पचास गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद के 1/24 ऊँचाई प्रति गज के प्रमाण से रखनी चाहिए।

शुभदसर्वतोभद्रपद्मकवसुन्धरसिंहव्योमगरुडहंसवृषभेति नवधोच्छ्रयतो नवपीठ नामानि —

मध्ये न्यूनेऽधिके पञ्चमांशे ज्येष्ठं कनिष्ठकम्॥ 29॥
त्रिज्येष्ठमिति च ख्यातं त्रिमध्यं त्रिकनिष्ठकम्।
तस्याभिधानं वक्ष्येऽहमुदितं नवधोच्छ्रयात्॥ 30॥

नौ प्रकार की पीठ की ऊँचाई बताई गई है—1. मध्य, 2. न्यून, 3. अधिक, 4. पञ्चमांश, 5. ज्येष्ठ, 6. कनिष्ठ, 7. त्रिज्येष्ठ, 8. त्रिमध्य और 9. त्रिकनिष्ठ। इन नौ की ऊँचाइयों के अनुसार इनके नामों को अब कहता हूँ।

शुभदं सर्वतोभद्रं पद्माकं च वसुन्धरम्।
सिंहपीठं तथा व्योम गरुडं हंसमेव च॥ 31॥
वृषभं यद्भवेत्पीठं मेरोराधारकारणम्।
पीठमानमितिख्यातं प्रासादे आदिसीमया॥ 32॥

(इनके क्रमानुसार नाम है) 1. शुभद, 2. सर्वतोभद्र, 3. पद्मक, 4. वसुन्धरम, 5. सिंहपीठ, 6. व्योम, 7. गरुड़, 8. हंस और 9. वृषभ। ये इतनी नौ प्रकार की पीठ मेरु के आधार का कारण होती है। इसे ही पीठमान कहा जाता है जो प्रासाद में आदि सीमा से बनता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
प्रासादपीठोदयमानाधिकारो नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 123॥
इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद
पीठोदय मान अधिकार नामक एक सौ तेईसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 123॥

नागरप्रासादपीठलक्षणकं चतुर्विंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 124॥

अधुना नागरकोट्यान्तर्गतप्रासादस्य पीठलक्षणं। विश्वकर्मोवाच —

पीठोच्छ्रयं तथा मानं विभक्तं भागसङ्ख्या।
रूपं चांशं समुत्सेधं द्वाविंशतिविनिर्गतम्॥ 1॥

(इस सूत्र में नागर कोटि के प्रासादों की पीठ के लक्षण बताए जा रहे हैं) विश्वकर्मा बोले कि प्रासाद पीठ की ऊँचाई, उसका मान-माप आदि भाग और भागों की संख्या, उसका रूप, उसके अंश, उसकी उत्सेध यानी ऊँचाई आदि को 22 भाग विनिर्गत अर्थात् निकास युक्त बनाते हैं।

जाड्यकुम्भे ततो वक्ष्ये भागैर्नवभिरुच्छ्रितम्।
कर्णं कुर्यात्सार्धभागमर्धमन्तरपत्रिकाम्॥ 2॥

इसमें जाड्यकुम्भ (जाडिम्बा) की ऊँचाई 9 भाग की कही गई है। डेढ़ भाग का कर्ण करें जबकि अन्तरपत्र को आधे भाग का बनाना चाहिए।

सार्धाष्टांशं निर्गतं च सार्धद्व्यंशां तु चिप्पिकाम्।
स्कन्धं च सार्धपञ्चांशं सार्धभागां तु चिप्पिकाम्॥ 3॥

इसके बाद साढ़े आठ भाग का निकास व उसके ढाई भाग की चिप्पिका बनाएँ। उसका स्कन्ध साढे पाँच भाग का और उस पर भी डेढ़ भाग की चिप्पिका कल्पित करें।

कर्णालि: केन्द्रभागैश्च भागार्धाऽन्तरपत्रिका।
सार्धद्वयं कर्णकं च भागैका चिप्पिका मता॥ 4॥

कर्णाली को केन्द्रीय भाग में, आधे भाग की अन्तरपत्रिका बनानी चाहिए। इसके उपरान्त ढाई भाग का कर्णक और उस पर एक भाग की चिप्पिका बनाए।

द्विभागेऽन्तरपट्टं द्वे पदिके भागमध्यतः।
कर्णस्तथैकभागश्च भागः स्कन्धः सपट्टिकः॥ 5॥

इसी प्रकार दो भाग का अन्तरपट्ट और दो पद पर भागमध्य होगा। एक भाग से कर्ण और एक ही भाग से पट्टिका सहित स्कन्ध होगा।

सार्धाब्ध्यंशां ग्रासपट्टी भागं निर्वाणचिप्पिका।
उच्छ्रयः कथितश्चैवं निर्गमं शृणु साम्प्रतम्॥ 6॥

इसके अतिरिक्त साढ़े चार अंश की ग्रासपट्टी और एक भाग की निर्वाणचिप्पिका होगी। इस प्रकार इनकी ऊँचाई कही गई। अब उनका निर्गम अर्थात निकास कहता हूँ, जिसे सुनो।

तस्य निर्गमप्रमाणमाह —

सार्धद्व्यंशा कपोताली सार्धं कर्णकमेव च।
द्विभागा चिप्पिका ज्ञेया निर्गमश्चाष्टभागिकः॥ 7॥

इसी प्रकार ढाई अंश की कपोताली और डेढ़ भाग प्रमाण से कर्णक की रचना करें। उसके दो भाग की चिप्पिका बनाएँ। इस प्रकार सब आठ भाग के निर्गम हुए।

सूर्यांशैर्गजपीठ चाऽर्धभागान्तरपत्रिका।
कुर्यात्कर्णं चैकभागं भागं स्कन्धं सपट्टिकम्॥ 8॥

बारह भाग के गजपीठ को आधे भाग की अन्तरपत्रिका करें और एक भाग प्रमाण से कर्ण करें एवं एक भाग का ही पट्टिक युक्त स्कन्ध बनाएँ।

कर्णोर्ध्वे तु गजाः कार्याः सार्धाष्टांशसमुच्छ्रिताः।
ऊर्ध्वे कर्णस्ततो भागस्त्रिभागं स्कन्धपट्टकम्॥ 9॥

कर्ण के ऊपर की ओर गजों, हाथियों की रचना करें जो साढ़े आठ भाग ऊँचाई के होंगे। उनके ऊपर कर्ण बनाएँ और उसके तीन भाग का स्कन्धपट्ट बनाएँ।

द्विभागा च कपोताली **क्षोभणा चार्धभागिका।**

द्विभागा चिप्पिका **चैवं चतुर्भागैश्च निर्गमः ॥ 10 ॥**

इनके बाद, दो भाग की कपोताली और आधे भाग की क्षोभणा तथा दो भाग की चिप्पिका बनाए जो चार भाग निकास वाली हो।

दशभागं वाजिपीठं **भागेऽर्धे**ऽन्तरपत्रिका।

पादोनभागकर्ण**श्च पादोनः स्कन्ध एव च॥ 11 ॥**

अब दस भाग का वाजीपीठ या अश्वस्तर बनाएँ जिसमें आधे भाग की अन्तरपत्रिका और तीन चौथाई भाग से कर्ण और तीन-चौथाई भाग का ही स्कन्ध बनाएँ।

वाजिमानं **सप्तभागं** कर्णान्तरसमुन्नतौ।

पादोन ऊर्ध्वकर्ण**श्च पादोना** स्कन्धचिप्पिका॥ **12 ॥**

द्विभागा च कपोताली **क्षोभणा** भागनिर्गमा।

द्विभागा चिप्पिका **चैव ... ... निर्गमैः सह॥ 13 ॥**

वाजीमान यानी अश्वों की ऊँचाई सात भाग की बनाएँ जिनके दोनों कोनों के अन्तर उठे हुए हो। कर्ण का उठान तीन चौथाई मात्र हो और इतनी ही स्कन्ध चिप्पिका हो। इस पर दो भाग की कपोताली हो जिसका निकास क्षोभणा एक भाग प्रमाण हो। दो भाग की चिप्पिका और.... उसका निकास हो।

नरपीठप्रमाणमाह —

नरपीठं ततो वक्ष्ये अष्टभागसमुन्नतम्।

अन्तःपत्रं च पादोनं कर्णः पादोनं एव च॥ 14 ॥

अब नरपीठ के बारे में कहता हूँ जिसकी ऊँचाई आठ भाग की हो। इसका अन्तरपत्र तीन चौथाई और इतना ही कर्ण भाग होगा।

ऊर्ध्वं कर्णयश्च तन्मानः पादोना स्कन्धचिप्पिका।

रूपाणि पञ्चभागानि द्विभागैर्निर्गमैः सह॥ 15 ॥

कर्ण के ऊपर की ओर उतना ही यानी तीन चौथाई कर्ण और उतने ही भाग प्रमाण से स्कन्धचिप्पिका बनाए। इनमें रूप पाँच भाग के बनाए जिनका निकास दो भाग का हो।

जाड्यकुम्भं **च कर्णाली...** चिप्पिका **समा।**

कपोतालीसमसूत्रे **कर्णकः** पूर्वनिर्गमः **॥ 16 ॥**

इस तरह जाड्यकुम्भ और कर्णाली... चिप्पिका आदि को कपोताली के समसूत्र में कर्णक पहले बताए निकास के प्रमाण के होने चाहिए।

जाड्यकुमीस्कन्धसूत्रे कुर्याद् ग्रासस्य पट्टिकाम्।
ग्रासपट्टीप्रवेशात्तु द्विभागं गजपीठकम्॥ 17॥

जाड्यकुम्भ के समसूत्र में ग्रास की पट्टिका को बनाएँ। ग्रासपट्टिका के प्रवेश के दो भाग में गजपीठ बनाएँ।

ऊर्ध्वकर्णे कपोताली वाजिपीठं द्विभागिकम्।
तस्योर्ध्वे च कपोताली अर्धांशं नरपीठकम्॥ 18॥

जिसके ऊपर कर्ण पर कपोताली तथा दो भाग की वाजीपीठ, अश्वस्तर बनाएँ। इसके ऊपर की और कपोताली और आधे भाग प्रमाण नरपीठ अर्थात् नरस्तर बनाएँ।

नरपीठप्रवेशात्तु खुरकं सार्धभागिकम्।
प्रवेशनिर्गमावेवं कथितौ च शुभप्रदौ॥ 19॥

नरपीठ के प्रवेश में खुरक डेढ़ भाग का बनाएँ। इस तरह इनका प्रवेश और निकास शुभ फलदायी बताया गया है।

जाड्यकुम्भः पञ्चभागः कर्णाली चाष्टभागिका।
गजपीठं चतुर्भागं त्रिभागं वाजिपीठकम्॥ 20॥

जाड्यकुम्भ पाँच भाग का हो और कर्णाली आठ भाग की कल्पित करें। इसका गजपीठ चार भाग का और अश्वपीठ तीन भाग का करें।

नरपीठं द्विभागं च कर्तव्यं शुभलक्षणम्।
खुरकाज्जाड्यकुम्भान्तं द्वाविंशद्भागनिर्गतम्॥ 21॥
त्रिपञ्चांशं समुत्सेधं द्वाविंशतिविनिर्गतम्।
पीठमानमतो दृष्टं कथितं त्वपराजित॥ 22॥

नरपीठ दो भाग से शुभ लक्षण युक्त बनाए। जाड्यकुम्भ से खुरक 22 भाग निकास युक्त हो और 53 भाग की ऊँचाई का और 22 भाग निकास का होना चाहिए। इस प्रकार हे अपराजित! तुम्हें पीठमान कहकर प्रदर्शित किया गया है।

ईदृशं कुरुते यस्तु स सर्वफलमश्नुते।
अज्ञानात् कुरुते यस्तु शिल्पदोषो महान् भवेत्॥ 23॥

इस तरह यदि कोई निर्माण कार्य करेगा तो उसे सभी फलों की प्राप्ति होगी।

यदि इस तकनीकी ज्ञान के बिना कोई काम करेगा तो उसे महान शिल्पदोष का भागी होना पड़ेगा।

इति सूत्रसन्तानगुणकीतिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां नागरप्रासादपीठलक्षणाधिकारो नाम चतुर्विंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 124॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में नागर प्रासाद पीठ लक्षण अधिकार नामक एक सौ चौबीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 124॥

प्रासादज्ञातिच्छन्दपीठलक्षणं पञ्चविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 125॥

अधुना पादबन्धश्रीबन्धवेदिबन्धप्रतिक्रमक्षुरबन्धेति पञ्चविधद्राविडपीठभेदाः

विश्वकर्मोवाच —

द्राविडे पीठकोत्सेधं द्वाविंशत्या विभाजयेत्।
वेदीबन्धत्रयं कुर्यादूर्ध्वतः सुरमस्तकात्॥ 1॥

(इस सूत्र में द्राविड़ादि प्रासादों के वेदीबन्धों के विषय में कहा जा रहा है। समराङ्गण. के 61वें अध्याय में पादबन्ध, श्रीबन्ध, वेदीबन्ध, प्रतिक्रम और क्षुरकबन्ध नाम से पीठों का वर्णन हुआ है।) विश्वकर्मा बोले कि द्राविड़ प्रासाद के लिए पीठ की ऊँचाई को सर्वप्रथम 22 भागों में विभाजित करें। इसमें तीन वेदीबन्ध करें और उनके ऊपर की ओर देवता के मस्तक तक उन्हें बनाएँ।

त्रिपदो जाड्यकुम्भस्तु द्विपदः कर्णकस्तथा।
पदं चान्तरपत्रं च द्विपदा चोर्ध्ववेदिका॥ 2॥

इनमें तीन 3 भाग का जाड्यकुम्भ, 2 भाग का कर्णक, 1 भाग का अन्तरपत्र और 2 भाग की ऊर्ध्व वेदिका बनाएँ।

पदार्धमन्तःपत्रं च द्विपदो जाड्यकुम्भकः।
सार्धं चान्तरपत्रं च द्विपदोर्ध्वे च वेदिका॥ 3॥

आधे भाग का अन्तरपत्र, दो भागों का जाड्यकुम्भ, पुनः डेढ़ भाग का अन्तरपत्र और उसके ऊपर 2 भाग की वेदिका होगी।

अर्धपञ्चमपदाख्या ? तृतीयं वेदिबन्धनम्।
पदार्धमन्तपत्रं च खुरकं च पदद्वयम्॥ 4॥

अब तीसरा वेदी बन्धन बनाए जिसमें साढ़े पाँच भाग है, उसका अन्तरपत्र आधे भाग का और खुरक 2 भाग का होगा।

कुमुदं पदमुत्सेधे तस्यैवोर्ध्वे **ततः पदम्।**
पदं चान्तरपत्रं च कर्णपाली **च तत्समा॥ 5॥**

उसके उत्सेध या ऊँचे में 1 भाग का कुमुद हो और उसके ऊपर भी उतना ही यानी 1 पद भाग का अन्तरपत्र तथा उसके बराबर अर्थात् 1 भाग की कर्णपाली बनाएँ।

तत्समं तलकुम्भं **च तत्समं च प्रचक्षते ?।**
प्रथमं वेदिबन्धानां **निर्गतं** पदपञ्चकम्॥ 6॥

उसके बराबर ही तलकुम्भ को उसके समान ही बनाएँ। पहले वेदीबन्धों को पाँच भाग का निकास देते हुए बनाया जाना चाहिए।

द्वितीयं सार्धवेदांशैस्तृतीयं **च पदत्रयम्।**
खुरकं च पदं सार्धत्रयोदशविनिर्गमे॥ 7॥

इसी प्रकार दूसरे वेदी बन्धों को साढ़े चार भाग का निकास दें और तीसरे बन्धों को तीन भाग का निकास दें। फिर, खुरक को साढ़े तेरह भाग का निकास वाला बनाएँ।

जाड्यकुम्भस्य **कर्णोर्ध्वे मकरास्यं** महोत्कटम्।
तदुच्छ्रयः प्रकर्तव्यो यावद् वेद्याश्च मस्तकम्॥ 8॥
द्वि-त्रि-चतुरङ्गुलानामन्तरणे **पुनः पुनः।**
न कारयेन्नक्रहीनां नासिकोपाङ्गफालनाम्॥ 9॥

इसमें जाड्यकुम्भ के कर्णों के ऊपर मकराकृति भयङ्कर रूप की बनाएँ। उसके ऊपर की ओर वेदी के मस्तक तक उन्हें बनावे जो दो, तीन, चार अङ्गुलों के अन्तर पर पुनः-पुनः बनाएँ। इन नासिका के उपाङ्गों की फालनाओं को मकराकृतियों रहित नहीं बनाएँ।

कोटपालैर्युतं **पूर्वं द्वितीयं** भैरवान्वितम्।
तृतीयं कण्टकयुतं **पीठं कुर्वीतं कोविदः।**
पदप्रवेशं **कुमुदं सुलीनं** घण्टुमीदृशम् ?॥ 10॥

यह भी ज्ञातव्य है कि पहली पीठ को कोटपालों की आकृति से युक्त और दूसरी को भैरव की आकृति से युक्त बनाएँ। तीसरी पीठ को कण्टक आकृतियों से युक्त बनाएँ— ऐसा शिल्प के पण्डित बताते हैं। इस प्रकार से घण्टु में पदप्रवेश को, कुमुद को व सुलीन को बनाएँ।

पादे च पादबन्धाख्यं खुरकं स्थापयेत्तथा।
श्रीबन्धस्त्वेकसङ्घाटस्तद्द्वया वेदिबन्धनम्॥ 11॥

प्रतिक्रमस्त्रिभिः प्रोक्तः चतुर्भिः खुरबन्धनम्।
एते पञ्चविधा भेदा द्राविडे पीठसञ्ज्ञकाः॥ 12॥

इति द्राविडपीठलक्षणम्।

इसी प्रकार एक पाद भाग से पादबन्ध नामक पीठ का खुरक को बनाए। ऐसे ही श्रीबन्ध के लिए भी एक भाग का सङ्घाट बनाए। दो भाग का वेदीबन्धन के लिए करें। प्रतिक्रम के लिए तीन भाग चार भाग का खुरबन्धन के लिए करें। इस तरह से पाँच प्रकार ये पाँच प्रकार के द्राविड़ पीठों की संज्ञाएँ बताई गई हैं।

अथ भूमिजप्रासादपीठलक्षणम् —

प्रासादे दशधा भक्ते पीठं सार्धांशमुच्छ्रितम्।
निर्गतं चैकभागेन विभञ्जायनवोलुटम्?॥ 13॥

(यदि भूमिज) प्रासाद हो तो उसकी चौड़ाई के 10 भाग करें। फिर, उसके डेढ़ भाग के बराबर पीठ की ऊँचाई रखें। उसका निकास 1 भाग का रखें तो उसे 'विभंजायनवोलुटं' (?) कहते हैं।

नरपीठं पदं विद्याद्भूमिजे पीठकोच्छ्रयम्।
निर्गतं च त्रिभागेन कर्तव्यं सर्वकामदम्॥ 14॥

भूमिज प्रासाद के पीठ को नरपीठ कहते हैं जो एक भाग के बराबर की ऊँचाई की होती है। उसका निकास तीन भाग का करना चाहिए जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला कहा है।

त्रिपदो जाड्यकुम्भश्च द्विपदः कर्णकस्तथा।
अन्तःपत्रं चैकपादं त्रिपदा ग्रासपट्टिका॥ 15॥

इस पीठ का जाड्यकुम्भ तीन भाग का, उसका कर्णक दो भाग का रखें। उसका अन्तरपत्र एक भाग का और उसकी ग्रासपाट्टिका तीन भाग की बनाएँ।

जाड्यकुम्भः सार्धपादो द्विपदः कर्णकस्तथा।
अन्तःपत्रं पादमेकं खुरकः पाद एव च॥ 16॥

जाड्यकुम्भ डेढ़ भाग का और उसका कर्णक दो भाग रखें। उसका अन्तरपत्र एक भाग का और खुरक को एक भाग से बनाएँ।

उदयं पञ्चधा कृत्वा जाड्यकुम्भस्तु पादतः।
पादोनयुग्मा कर्णाली सपादं गजपीठकम्॥ 17॥

भूमिज पीठ की ऊँचाई के पाँच भाग करके उनके ही अनुसार जाड्यकुम्भ को एक भाग का, कर्णाली को पोने दो भाग की और गज पीठ सवा भाग की होगी।

नरपीठं पदं विद्याद्भूमिजे पीठकोच्छ्रयः।
निर्गमश्च त्रिभिर्भागः कर्तव्यः सर्वकामदः॥ 18॥

इति भूमिजप्रासादपीठलक्षणम्।

नरपीठ एक भाग की बनाएँ। इस तरह कुल एक, पौने दो और सवा कुल पाँच भाग होंगे जो पीठ की ऊँचाई होगी। इस पीठ का निकास तीन भाग का करना चाहिए जो सब कामनाओं की पूर्ति करता है।

अपराजित उवाच —

अलङ्कारं स्वरूपं च कथितं परमेश्वर।
विचित्रकाश्च प्रासादा येषांयुक्तिर्विधीयते॥ 19॥

अपराजित बोले कि हे परमेश्वर! अब आप विचित्र प्रासादों के अलङ्कार, स्वरूप और उनके बनाने की युक्ति भी बताइए।

स्वल्पद्रव्यः संयतात्मा सोत्साहो धर्महेतवे।
तद्द्रव्ययुक्तिमानं च कथ्यतां भुवनेश्वर॥ 20॥

जिनके पास कम द्रव्य हो फिर भी संयतात्मा होकर, उत्साह के साथ धर्मवृद्धि के हेतु उस अल्पद्रव्य से युक्ति युक्त प्रासाद निर्माण कर सके, ऐसा हे भुवनेश्वर! मुझे कहिएगा।

इत्यमनन्तर साधारणपीठप्रमाणं विश्वकर्मोवाच-

हीनद्रव्ये शिवभक्ता ये कुर्वन्ति शिवालयम्।
तस्यानुक्रमयुक्तिं च कथयाम्यपराजित॥ 21॥

जो शिवभक्तगण कम द्रव्य से भी शिवालय बनाना चाहते हैं, उसके बनाने के युक्तिक्रम को हे अपराजित! मैं तुम्हें बताता हूँ।

गजाश्वनरपीठाद्यमल्पद्रव्ये न सम्भवेत्।
जाड्यकुम्भश्च कर्णाली प्रशस्ता सर्वकामदा॥ 22॥

इस क्रम में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रासाद में प्रयुक्त होने वाले गज, अश्व और नरयुक्त पीठ अल्पद्रव्य में बनवाना सम्भव नहीं हैं। उसके लिए जाड्यकुम्भ और कर्णाली ही सबकामना की पूर्ति हेतु बनाना प्रशस्त कहा है।

जाड्यकुम्भः कर्णकश्च ऊर्ध्वे वै शीर्षपत्रिका।
शिरःपालीं विनात्वेवं कर्णं पीठं तु कारयेत्॥ 23॥

इति साधारणपीठप्रमाणम्।

अतएव जाड्यकुम्भ और कर्णक बनाकर उसके ऊपर शीर्षपत्रिका बनाएँ और

तदोपरान्त शिरपाली के बिना ही कर्ण पीठ को बनानी चाहिए।

अन्यदप्याह —

वराटे भूमिजं कुर्याल्लतिने **चैव नागरम्।**
सान्धारे नागराख्यं च मिश्रके च विमानके॥ 24॥

वराट संज्ञक प्रासाद में भूमिज को तथा लतिन में नागर को और सान्धार में नागर को और मिश्रक में विमान में संयुक्त करें।

लतिनं निर्गमैर्हीनं **सान्धारं** निर्गमाधिकम्।
विमानं भागतुल्यं **च मिश्रकं तस्समं तथा॥ 25॥**

लतिन में निकास रहित और सान्धार में अधिक निकास युक्त तथा विमान में उसी के भाग के समान और मिश्रक में उसी के समान रचना होगी।

वलभ्यां भूमिजं मानं फांसाकारे **च द्राविडम्।**
दारुजे भूमिजाख्यं **च नागरं च रथारुहे॥ 26॥**
पीठं च पीठकाकारं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
सृष्टिपीठोद्भवं **पीठं** मेरोराधारकारणम्॥ 27॥

इसी प्रकार वलभी प्रासाद में भूमिज के मान तुल्य और द्राविड़ में फांसनाकार के समान, दारुज में भूमिज के समान और नागर में रथारूह के समान पीठ और पीठ का का आकार तथा जगत के सभी स्थावर और जंगम सृष्टि के उद्भव को मेरु की पीठ आधार में बनाएँ।

अन्य प्रासादपीठलक्षणम् —

व्योम्नश्च पृथिवी पीठं मेरुस्तस्य **च मेखला।**
मेघार्णवे ततः पीठं जलमाधार उच्यते॥ 28॥

व्योम एक प्रकार से पृथ्वी-पीठ युक्त है और मेरु उसकी मेखला है। मेघों का समुद्र उसकी पीठ है जो जल को आधार बनाए हुए है।

तारिका लिङ्गपीठान्ते **गजपीठं तदुच्यते।**
भावानुभावयन् **पीठे** तत्पीठमनुसंस्थिते ?॥ 29॥

जिस लिङ्ग के पीठ के अन्त में तारिका हो उसे गजपीठ कहते हैं। इस प्रकार की भाव-अनुभाव युक्त पीठ अनुवर्त्यानुसार स्थित होती है।

वर्णानुवर्णयत् **पीठं तत्पीठं** भाववर्णिकम् ?।
अंशूना मेघपीठं तु मेघानां तु धराधरा॥ 30॥

वर्ण और अनुवर्ण युक्त पीठ को भाववर्णिक पीठ कहते हैं (?)। अंशूना-मेघपीठ अर्थात् शैल-पाषाण वाली मेघपीठ तो धराधर अर्थात् पहाड़ ही है।

देवानां पुष्पकं पीठं यानझम्पानकं नृणाम्।
सर्वेषामशनं पीठं.... स्यात्प्रतिक्रमम्॥ 31॥

देवताओं की पीठ पुष्पक है और मानवों के पीठ यान[1], गाड़ी-घोड़े और झम्पानक (पालकी या गाड़े) होते हैं। सबके लिए तो अशन अर्थात् भोजन ही पीठ है अर्थात् आधार है। इस तरह का प्रतिक्रम है।

सर्वेषां पीठमाधारः पीठहीनं निराश्रयम्।
पीठहीनां विनश्यन्ति अचिरेणैव सर्वदा॥ 32॥

सभी को पीठ ही आधार होता है और जो भी पीठ हीन हो, वह तो निराश्रय है और पीठ हीन व्यक्ति का शीघ्र ही विनाश हो जाता है, ऐसा सदा होता आया है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादज्ञातिच्छन्दपीठलक्षणाधिकारो नाम पञ्चविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 125॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद जातिछन्दपीठ लक्षण अधिकार नामक एक सौ पच्चीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 125॥

समस्तप्रासादोदयमानो नाम षड्विंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 126॥

अधुना नागरप्रासादोदयमानं। विश्वकर्मोवाच —

एकहस्ते चोदयस्तु स्यात्त्रयस्त्रिंशदङ्गुलैः।
प्रासादे च द्विहस्ते तु पञ्चपञ्चाशदङ्गुलैः॥ 1॥
सप्तसप्तत्यङ्गुलानि प्रासादे तु त्रिहस्तके।
एकोनशताङ्गुलैश्च वेदहस्ते सुरालये॥ 2॥

---

1. ईशानशिवगुरुदेव मिश्र ने अपनी पद्धति में शिबिकाधिकार में शिबिका, रथ व खट्वादि को यानान्तर्गत लिया है और शयनासन के अन्य चिह्न बताए हैं। शिबिका के तीन नाम पैठी, शैखरी एवं मौण्डी बताए हैं। इनमें से पैठी भित्तिकान्तक होती है; शैखरी शिखर वाली और मौण्डी स्तम्भ के उत्तरान्त पर आच्छादन सहित बनती है— शिबिकाद्यं रथाद्यं च यानं खट्वादिकं तु यत्॥ शयनासनसञ्ज्ञं स्यात् तल्लक्ष्म प्रथगुच्यते। पैठी च शैखरी मौण्डी त्रिविधा शिबिका भवेत्॥ पैठी तु भित्तिकान्ता स्याच्छैखरी शिखरान्विता। मौण्डी स्तम्भोत्तरान्ता तु शालाच्छादनसंयुता॥ (ईशान. उत्तरार्द्ध 48, 42-44)
शिल्परत्नकार श्रीकुमार ने डोला, सुखासन, रथ, नौका, प्लवक इन पाँच प्रकार के यानों का वर्णन किया है— डोला सुखासनं तद्वद्रथो नौः प्लवकस्तथा। वाहानि पञ्च ज्ञेयानि नराणां कृत्रिमाणि वै। (शिल्परत्नम् उत्तर. 33, 51)

प्रासादे पञ्चहस्ते चैकविंशत्युत्तरं **शतम्**।
हासवृद्धी पञ्चयावत् **ह्रस्वं** कुर्यात्तदूर्ध्वत: ॥ 3 ॥

(इस सूत्र में समस्त प्रासादों के उदय मान के विषय में कहा जा रहा है) विश्वकर्मा बोले कि एक गज की चौड़ाई के प्रासाद की ऊँचाई 33 अङ्गुल, दो गज की चौड़ाई के प्रासाद की ऊँचाई 55 अङ्गुल, तीन गज के चौड़े प्रासाद की ऊँचाई 77 अङ्गुल, चार गज की चौड़ाई वाले प्रासाद की ऊँचाई 99 अङ्गुल और पाँच गज की चौड़ाई वाले प्रासाद की ऊँचाई 121 अङ्गुल। इस तरह पाँच गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद के प्रसङ्ग में ऊँचाई में यह क्रमिक कमी-वृद्धि दिखाई गए है। परन्तु, अब पाँच गज की चौड़ाई के प्रासाद के बाद के प्रासादों में इसमें क्रमिक कमी की जाए।

पञ्चोर्ध्वं नवपर्यन्तं वृद्धिर्मन्वङ्गुलैर्भवेत्।
अष्टहस्तोदय**श्चैव प्रासादे** दशहस्तके ॥ 4 ॥

इस क्रम में पाँच गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के ऊपर की चौड़ाई वाले नौ गज की चौड़ाई वाले प्रासाद की ऊँचाई में क्रमिक वृद्धि 14 अङ्गुल की ही हो। इसके बाद, 10 गज की चौड़ाई वाले प्रासाद की ऊँचाई 8 गज की और यह ऊँचाई 20 गज की चौड़ाई वाले प्रसाद तक प्रति गज 12 अङ्गुल बढ़ती जाए अर्थात् 20 गज चौड़ाई की प्रासाद की ऊँचाई में 12 अङ्गुल या आधे गज की वृद्धि होती जाएगी। अत: 11 गज के चौड़े प्रासाद के साढ़े आठ गज की ऊँचाई, 12 गज के 9 गज, 13 गज के साढ़े नौ, गज, 14 गज के 10 गज, 15 गज के साढ़े दस गज, 16 गज के 11 गज, 17 गज के साढ़े ग्यारह गज, 18 गज के 12 गज, 19 गज के साढ़े बारह गज और 20 गज के चौड़े प्रासाद की ऊँचाई 15 गज की होगी।

अथ वृद्धिक्रमाह —

विंशत्यन्तं **दशोर्ध्वं च वृद्धि:** सूर्याङ्गुलैर्भवेत्।
त्रयोदशकरा: सप्ताङ्गुलं विंशतिहस्तके ॥ 5 ॥
अतऊर्ध्वं पुनर्वृद्धिर्हस्ते **हस्ते करार्धत:**।
त्रिंशद्धस्ते सप्ताङ्गुलं **हस्ता** अष्टादशैव **च** ॥ 6 ॥
ऊर्ध्वं पञ्चाशदन्तं च हस्ते हस्ते नवाङ्गुला।
कराणां वै सार्धपञ्चविंशतिश्च शतार्धके ॥ 7 ॥

(हालांकि इन श्लोकों का क्रमश: प्रमाण उचित नहीं प्रतीत होता किन्तु श्लोक पाठ के अनुसार अनुवाद है) बीस गज तक के प्रासाद की चौड़ाई पर 7 अङ्गुल की वृद्धि

करें। इससे ऊपर पुनः प्रति गज 12 अङ्गुल की वृद्धि करें। इस तरह 30 गज की चौड़ाई वाले प्रासाद की ऊँचाई 7 अङ्गुल से 18 गज की हो जाती है। इसके ऊपर, फिर 50 गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद में प्रति गज 9 अङ्गुल बढ़ाते जाए जिससे 50 गज की चौड़ाई वाले प्रासाद की ऊँचाई साढ़े पच्चीस गज की हो जाएगी।

एकोनविंशत्यङ्गुला कामदा च तदग्रतः।
एषा युक्तिर्विधातव्या प्रासादस्योत्तमोदये॥ 8॥

इसके आगे, 19 अङ्गुल की वृद्धि अभीष्ट रहती है। यही युक्ति प्रासाद के उत्तम उदय हेतु मान्य की गई है।

नागरे लतिने चैव सान्धारे चैव मिश्रके।
विमाननागरच्छन्दे कुर्याद्विमानपुष्पके॥ 9॥
कुम्भकादि प्रहारानतं प्रयुक्तं वास्तुवेदिभिः।
तदधस्तात्तु पीठं च ऊर्ध्वे स्याच्छिखरोदयः॥ 10॥

इति नागरप्रासादोदयमानम्।

नागर, लतिन, सान्धार, मिश्रक के विमान या मन्दिर नागर छन्द में बनाएँ अथवा विमान पुष्पकछन्द में बनाएँ। इनके ऊपर कुम्भादि प्रहारान्त प्रयुक्त किए जाए, उनके नीचे पीठ बनाई जाए और ऊपर शिखरोदय बनाएँ— ऐसा वास्तुविदों ने कहा है।

तदन्यप्रासादोदयमानं —

विस्तारसम उत्सेधे यावत् प्रथमभूमिका।
शृङ्गकूटोदयं त्यक्त्वा शेषं मण्डोवरं भवेत्॥ 11॥

अन्य प्रकार के प्रासादोदय के लिए यह ज्ञातव्य है कि पहली भूमिका या मंजिल में तो प्रासाद के विस्तार के समान ही ऊँचाई बनाएँ। इनमें शृङ्ग, कूटोदय आदि छोड़कर शेष मण्डोवर की ऊँचाई आती है।

विमाने भूमिजे चैव वराटे च तथैव च।
द्राविडे चैवमुत्सेधं यावत्पीठोर्ध्वमस्तकम्॥ 12॥

इसी प्रकार विमान, भूमिज, वराट, द्राविड़ आदि जातियों के प्रासादों में ऊँचाई को प्रासाद के पीठ के मस्तक से गिने।

कर्णमानेन चोत्सेधं घण्टान्तं तु प्रकल्पयेत्।
एकभूम्यादितो वृद्धिर्यावद् द्वादशभूमिकाः॥ 13॥

कर्णमान की ऊँचाई को घण्टा अर्थात् गुम्बज तक कल्पित करें और ऐसा एक मंजिल से लेकर बढ़ाते-बढ़ाते बारह मंजिलों तक रखें।

जङ्घावृद्धिक्रमयोगे साद्यसूर्यान्तका भवेत्।
वलभीषु समस्तासु प्रासादपरमोदयः ॥ 14 ॥

यह जङ्घा वृद्धि क्रम योग आदि से बारह 12 तक होता है। सभी वलभी प्रासादों में यही उदय ऊँचाई परम मानी गई है।

सिंहावलोकनाः सर्वे सिंहकर्णैर्विभूषिताः।
विस्तरार्धः समुत्सेधः पर्यन्ते पृथुछाद्यकम्॥ 15 ॥

इन प्रासादों में सिंहावलोकन, झरोखे आदि सभी सिंहकर्ण से विभूषित बनाएँ और जितना विस्तार हो उसकी समानता की ही ऊँचाई होगी जो कि छाद्य तक हो।

धातुजे रत्नजे चैव दारुजे तु रथारुहे।
नागरच्छन्दवत्कुर्यात् प्रासादे परमोदयम्॥ 16 ॥

इसी प्रकार धातुज, रत्नज, दारुज या रथारुह प्रासाद को नागरछन्द में ही करना चाहिए, यही प्रासाद का परन उदय अर्थात् ऊँचाई कही गई है।

उच्छ्रयाः कथिताश्चैवं विभक्तिर्हस्तसख्यया।
अत उच्छ्रयमध्यस्थभागसख्याः प्रकल्पयेत्॥ 17 ॥

इत्यन्यप्रासादोदयमानम्।

इस तरह प्रासाद की ऊँचाई के बारे में प्रति गज विभक्ति संख्या के क्रमानुसार कहा गया हैं। इसके आगे की ऊँचाई के बारे में मध्यस्थ भाग संख्या की प्रकल्पना कर लेनी होगी।

भितिमानं —

मृदिष्टकाकमर्युक्तां भित्तिं पादां प्रकल्पयेत्।
पञ्चमांशेऽथवा सा तु षष्ठांशे शैलजे भवेत्॥ 18 ॥

मिट्टी से बनने वाले प्रासाद, जो ईंटों युक्त भिति में बने, उसमें भित्ति को पाद अर्थात् एक चौथाई भाग से बनाएँ अथवा पञ्चमांश भाग की बनाएँ। शैलज या पाषाण के प्रासाद में यह षष्ठांश भाग की हो सकती है।

दारुजे सप्तमांशे च सान्धारे चाष्टमांशके।
धातुजे रत्नजे भित्तिः प्रासादे दशमांशतः ॥ 19 ॥

इसी तरह दारुज या काष्ठ के प्रसाद की भित्ति सप्तमांश और सान्धार प्रासाद की भित्ति अष्टमांश प्रमाण हों। धातु और रत्न के प्रासाद की भिति दशमांश तक की होगी।

प्रमाणं तद्यत्पृथुत्वं कुम्भके मूलनासिके।

त्रि$_3$पञ्च$_5$सप्त$_7$नन्दान्तं$_9$ फालनोपाङ्गबाह्यतः ॥ 20 ॥

यह मोटाई का प्रमाण कुम्भक और मूलनासक तक बताया गया है। इसके बाहर फिर 3, 5, 7, और 9 फालनाओं के उपाङ्ग होते हैं।

रथे प्रतिरथे कर्णे कर्णिकायां च नन्दिका।

कर्णिका भद्रनिष्कासमुखभद्रं शुकाग्रकम् ॥ 21 ॥

इन प्रासादों के रथ, प्रतिरथ, कर्ण, कर्णिका और नन्दिका, कर्णिकाभद्र का विकास और मुखभद्र की ऊँचाई शुकाग्र तक अर्थात् शुकनासा तक होती है।

एतत्सर्वं प्रयोक्तव्यं कर्णोपाङ्गादिनासिकाम्।

मूलसीमान्ततो बाह्ये नैतद् वास्तुपरिग्रहे ॥ 22 ॥

इन सभी कर्णोपाङ्गों को नासिका तक प्रयुक्त करना चाहिए और वास्तु परिग्रह के बाहर मूल सीमान्त के बाहर नहीं किया जाए।

यमचुल्लीनामकगर्भगेहम् —

चतुरश्रं भद्रकं च सुभद्रं प्रतिभद्रकम्।

गर्भगृहं फालनीयं मर्म तत्र न पीडयेत् ॥ 23 ॥

गर्भगृह को चतुरश्र, भद्रक, सुभद्र, प्रतिभद्रक व फालना युक्त बनाए जिससे कोई मर्माङ्ग पीड़ित न हो।

एक-द्वि-त्रिकमात्राभिर्गर्भगेहं यदायतम्।

यमचुल्ली तदा नाम भर्तुर्गृहविनाशिका ॥ 24 ॥

जिस गर्भगृह की एक, दो, तीन मात्रा तक की आयत रचना लंबाई होती है, उसे 'यमचुल्ली' नाम दिया जाता है जो कर्ता, स्वामी की विनाशक कही है।[1]

दारुजे वलभीनां तु आयतं च न दूषयेत्।

प्रशस्तं सर्वकृत्येषु चतुरश्रं शुभप्रदम् ॥ 25 ॥

---

1. मत्स्यपुराण में यमसूर्य और चुल्ली दो पृथक्-पृथक् शालभवनों के नाम व फल दिए गए हैं। पश्चिम और उत्तर शाला वाले भवन को यमसूर्य नामक शाल कहा गया है जो कि मनुष्यों के लिए राजा और अग्नि से भयदायक और कुलविनाशक होता है। केवल पूर्व व पश्चिम की ओर बना हुआ चुल्ली नामक द्विशाल भवन मृत्यु सूचक है वह स्त्रियों को विधवा करने वाला और अनेक प्रकार का भय उत्पन्न करने वाला होता है— यमसूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्॥ राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत्॥ चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी॥ वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्। (मत्स्य. 254, 9-10 एवं 12-13)

वराहमिहिर ने कहा हैं— याम्याहीनं चुल्ली त्रिशालकं वित्तनाशकरमेतत्। पक्षघ्नमपरया वर्जितं सुतध्वंसवैरकरम्॥ (बृहत्संहिता 52, 38)

परन्तु, दारुज यानी काष्ठ के प्रासाद में वलभी का आयत होना दूषित नहीं करता तथापि सभी कामों में चतुरश्र ही शुभ माना गया है, इसका ध्यान रखना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां समस्तप्रासादोदयमानाधिकारो नाम षड्विंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 126 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में समस्त प्रासादोदय मान अधिकार नामक एक सौ छब्बीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 126 ॥

नागरप्रासादविभक्तिस्तरप्रमाणलक्षणं सप्तविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 127 ॥

अधुना नागरप्रासादखुरकप्रमाणं। विश्वकर्मोवाच —

उच्छ्रयाः कथिताः पूर्वं प्रासादे नागराभिधे।
विभक्तिभागसङ्ख्यां च कथयामि च साम्प्रतम् ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि पूर्व में नागर प्रासाद के ऊँचाई के बारे में कहा गया था। अब मैं उक्त ऊँचाई में विभक्ति भाग संख्या को कहता हूँ।

चतुश्चात्वारिंशदुक्तान् स्थापयदेग्रतः क्रमात्।
एकहस्तादितो यावत् पञ्चाशद्धस्तकं भवेत् ॥ 2 ॥

संख्या में विभक्तियों को 44 कहा गया है जिनको पहले स्थापित कर दें। ये एक गज से लेकर पचास गज तक में होते हैं।

खुरोन्नतिः पञ्चभागा द्विभागः खुरनिर्गमः।
अन्तःपत्रं च भागार्धं द्विभागः कर्ण ऊर्ध्वतः ॥ 3 ॥

खुरक की ऊँचाई पाँच भाग की और उसका निर्गम या निकास दो भाग का, अन्तःपत्र आधे भाग का, कर्ण ऊँचाई में दो भाग का करें।

चिप्पिका सार्धभागा स्यात् सार्धांशं कर्णकं भवेत्।
तीक्ष्णाग्रं तत्प्रकर्तव्यं पट्टिकाद्वयभूषितम् ॥ 4 ॥

चिप्पिका डेढ़ भाग और कर्णक भी डेढ़ भाग का हो व उसका अग्रभाग तीक्ष्ण करें जिसमें दो पट्टिकाएँ बनाकर उसकी शोभा बढ़ाएँ।

पट्टिका पादनिष्कासा सपादांशं च कर्णकम्।
स्कन्धः कुम्भो मुखाली च कर्णान्ते तद्विनिर्गमः ॥ 5 ॥

इति खुरकः।

इसी प्रकार पट्टिका को एक भाग, निकास दो और सवा भाग का कर्णान्त बनाएँ। स्कन्ध, कुम्भ, मुखाली को कर्णान्त में दो भाग निकास युक्त बनाएँ।

कुम्भमानम् —

विंशतिभागमुत्सेधं तदूर्ध्वं कुम्भकं न्यसेत्।
भागर्धं स्कन्धपट्टी च चिप्पिका चैकभागिका॥ 6॥

कुम्भक के लिए बीस भाग का उत्सेध रखें, उसके ऊपर की ओर कुम्भक रखें। उसमें आधे भाग की स्कन्धपट्टी और एक भाग की चिप्पिका बनाएँ।

वृत्ताकारं सुललितं स्कन्धं कुर्यात्तु कुम्भके।
विचित्रपल्लवाकीर्णं चिप्पीपत्रादिराजितम्॥ 7॥

कुम्भ को वृत्ताकार, सुन्दर स्कन्ध वाला बनाएँ और उसे तरह-तरह के सुन्दर पल्लवों और चिप्पी-पत्र आदि से सजाएँ।

प्रातर्मध्याह्नापरासु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
त्रिसन्ध्यं भद्रशोभाढ्यं चित्रैः परिकरैर्वृतम्॥ 8॥

इनमें प्रातः, मध्याह्न और अपराह्न में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की त्रिसन्ध्य भद्रशोभा युक्त मूर्तियाँ परिकर के घेरे में बनाएँ।

नासायां रूपसङ्घाटा रथिका दलगर्भतः।
मृणालपत्रशोभाढ्यं स्तम्भेषु तोरणं न्यसेत्॥ 9॥

इति कुम्भकः।

इसी प्रकार नासा को सुन्दर रूप की रचना युक्त रथिका के दलगर्भ युक्त बनाएँ जिसमें मृणालपत्र की शोभा से भरपूर स्तम्भों पर तोरण की रचना करें।

कुम्भीकुम्भमानम् —

सर्वे रूपोतमाः कार्या विचित्राकाररूपिणः।
खुरमानं यथा चादौ कुम्भमानं तथा भवेत्॥ 10॥

इति कुम्भीकुम्भकः।

कुम्भीकुम्भन या सभी प्रकार के मूर्तिरूपकों से युक्त विचित्राकार रूपों के द्वारा खुरमान को आदि कुम्भमान के समान ही बनाएँ।

नागरकलशप्रमाणं —

कलशं चाष्टभागैः स्यादेकांशं मध्यचिप्पिका।
वृत्तं षड्भागमुक्तं भागा वै ऊर्ध्वचिप्पिका॥ 11॥

नागर कलश को आठ भाग का बनाएँ, उसमें एक भाग की चिप्पिका बनाएँ। उसका वृत्त छह भाग का बनाएँ और उस पर चिप्पिका बनाएँ।

पट्टिका बन्धशोभाढ्या **नैकरत्नैः** समाकुला।
अन्तःपट्टं सार्धद्वयं पुष्पकादिविभूषितम्॥ 12॥

इति कलशः।

फिर, अनेक रत्नों से युक्त बन्धशोभा की पट्टिका बनाकर, अन्तःपट्ट ढाई भाग का पुष्पों आदि से सजाया हुआ बनाना चाहिए।

कपोतालीप्रमाणं —

कपोताली **चाष्टभागा भागार्धं** ग्रासपट्टिका।
स्कन्धः सपादद्व्यंशस्त्वेकपादा मुखपट्टिका॥ 13॥

कपोताली को आठ भाग में और आधे भाग की ग्रासपट्टी बनाएँ, स्कन्ध को सवा दो भाग और मुखपट्टी एक भाग की बनाएँ।

कार्यः कर्णो द्विभागश्च स्कन्धः सार्धद्वयोन्नतः।
भागार्धं स्कन्धपट्टी **च कर्तव्या मध्यव्यक्तयः**॥ 14॥

कर्ण दो भाग और स्कन्ध को ढाई भाग के ऊँचे बनाएँ। स्कन्धपट्टी आधे भाग में मध्य में व्यक्त या बनानी चाहिए।

मुखपट्टादधोऽग्रे **तु कर्तव्याश्च गगारकाः।**
[1]समताग्रविधातव्यास्तराङ्गुलवेदांशकैः॥ 15॥

मुखपट्ट के नीचे आगे निकले हुए गगारक बनाएँ। ये समानतः आगे रूप वाले हों और चार अङ्गुल प्रमाण रखे जा सकते हैं।

ऊर्ध्वं स्कन्धो विधातव्यो **दलानां गर्भभद्रतः।**
ठकारा मुखलूमोर्ध्वे **कपोताली** त्वितीरिताः॥ 16॥

इति कपोताली।

गर्भ के भद्र से दलों को ऊर्ध्व स्कन्ध के बनाना चाहिए और ठकार मुख लूमों के ऊपर कपोताली बनानी चाहिए। इस प्रकार कपोताली का प्रमाण कहा गया।

मञ्चिकाया लक्षणं मानं च —

मञ्चिकाश्च प्रवक्ष्यामि **व्यक्तिस्तु नवभागतः।**
अन्तः पट्टं सपादं वा पादोनं कामरूपकम्॥ 17॥

---

1. 'समताग्रविधातव्यास्तराङ्गुलविदांशकैः ?' इति प्रकाशित पाठः।

अब मञ्चिका के बारे में कहता हूँ जो नौ भाग में व्यक्त होती है। उसमें अन्त:पट्ट सवा भाग का और कामरूपक पौन भाग का होगा।

पट्टिका भागपादेन **स्कन्धश्चैव** द्विभागिकः।
मुखपट्टी भवेत्पादा **सपादः कर्ण एव च**॥ 18॥

पट्टिका सवा भाग की और स्कन्ध दो भाग का, मुखपट्टी चतुर्थांश भाग की और कर्ण सवा भाग का होगा।

सपादश्च भवेत्स्कन्धः **पादा** चान्तरपट्टिका।
कर्णिकं सार्धभागं **च पादा** निर्वाणपट्टिका॥ 19॥

स्कन्ध भी सवा भाग का और अन्तरपट्टिका चतुर्थांश भाग की, कर्णिका डेढ़ भाग और निर्वाणपट्टिका चतुर्थांश की होगी।

कपोतालीयुक्तिसूत्रे कारयेच्च गगारकान्।
जङ्घास्तम्भैनिर्गमाढ्या **भरणी** लम्बनाकृतिः॥ 20॥

इति मञ्चिका।

मञ्चिका में कपोताली के युक्ति सूत्र में ही गगारक को बनाएँ। जङ्घास्तम्भों से निकलती हुई भरणी लम्बनाकृति में बनानी चाहिए।

अथ जङ्घाप्रमाणं —

कार्या तदूर्ध्वे जङ्घा च पञ्चत्रिंशत्समुच्छ्रिता।
भ्रमनिर्माणतः स्तम्भैर्नासिकोपाङ्गफालना॥ 21॥

इसके ऊपर की और पच्चीस भाग ऊँची जङ्घा बनाएँ। उसके भ्रम निर्माणानुसार स्तम्भ बनाएँ और उनमें नासिक, उपाङ्ग और फालनाएँ भी बनाएँ।

मूलनासासु **सर्वासु स्तम्भैः स्युश्चतुरश्रिकाः**।
गजश्च सिंहव्यालैश्च **मकरैः** समलङ्कृताः॥ 22॥

मूलनासक से सभी स्तम्भ चतुरश्र यानी चौकोर हों, उन पर गज, व्याल और मकराकृतियों से अलङ्करण किया जाए।

कर्णेष्वष्टौ च दिक्पालाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्।
नटेशः पश्चिमे भद्रे ह्यन्धकैः सह दक्षिणे॥ 23॥

कोनों पर आठों दिक्पाल पूर्व की ओर से प्रदक्षिणा क्रम में बनाए जाए। नटेश की मूर्ति पश्चिमी भद्र या दीवार और अन्धकासुर के साथ दक्षिण भद्र पर बनाए।

चण्डस्य चोत्तरे देवी दंष्ट्राननसुशोभिताः।
वीतरागे च शासनदेव्य**श्चैव दिशाः प्रति**॥ 24॥

उत्तरी भद्र या दीवार पर चण्डीदेवी तीक्ष्ण-दाढ़ों से युक्त शोभित बनाएँ। प्रतिदिशा में (यदि जिनालय हो तो) वीतराग-तीर्थङ्कर और शासन देवियों को बनाएँ।

वारिमार्गे मुनीन्द्रांस्तु प्रलीनांश्च तपःसु च।
गवाक्षाकारभद्रे तु कुर्यान्निर्गमभूषितान्॥ 25॥

मुनीन्द्रों को वारिमार्ग के खाँचों में तपस्या में रत दिखाए। भद्र या दीवार में गवाक्ष-झरोखों के आकार निर्गम, निकले हुए सुन्दर बनाएँ।

नानाभरणकैः स्तम्भैस्तिलकच्छाद्यभूषिताः।
ब्रह्म-विष्णु-महेशाद्या इल्लिकावलणैर्युताः॥ 26॥

इति जङ्घा।

तरह-तरह के आभूषणों से, तिलक से स्तम्भों और छाद्य को सजाएँ। इनमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि इल्लिकावलणों से युक्त बनाएँ।

उद्गमप्रमाणं —

पञ्चदशोन्नतः कार्य उद्गमः सर्वकामदः।
छाद्यं भागं तथार्धा च कपोताली तदूर्ध्वतः॥ 27॥

उद्गम के प्रसङ्ग में ज्ञातव्य है कि 15 भाग ऊँचा उद्गम (डोढ़िया) सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है। उसके आधे में छाद्य हो और उसके ऊपर कपोताली बनाएँ।

पादं चान्तरपत्रं च सार्धं पञ्चोद्गमोदयः।
द्वितीयश्चोद्गमः कार्यः सार्धाष्टांशः समुच्छ्रितः॥ 28॥

अन्तरपत्र पाद चतुर्थांश भाग का और उद्गम की ऊँचाई साढ़े पाँच भाग होगी। दूसरा उद्गम भी साढ़े आठ भाग की ऊँचाई का बनाएँ।

अन्तःपत्री च भागार्धं तत्प्रमाणान्धकारिका।
ग्रासस्य पट्टिका कार्या त्रिभिर्भागैः समुच्छ्रिता॥ 29॥

आधे भाग की अन्तःपत्री और उतने ही प्रमाण की यानी आधे भाग की अन्धकारिका बनेगी। ग्रासपट्टी को तीन भाग की ऊँचाई की बनाएँ।

चित्राणि कपिरूपाणि निर्गमोद्गमकर्णिके।
दलरूपाश्चोत्पतन्ति वीक्षन्ते भावरूपकाः॥ 30॥

इत्युद्गमः।

यह ज्ञात रहे कि कर्ण को निर्गमोद्गम युक्त कपिरूपों से चित्रित, अलंकृत करें जो दलबल के साथ उत्पात करते दीखें, ऐसा भाव रूप युक्त होना अपेक्षित है।

भरणीप्रमाणं —

भरण्यष्टांशकोत्सेधा अधश्छन्दं तु वृत्तकम्।
उद्गमे ग्रासपट्टी च भरणी स्कन्धपट्टिका॥ 31॥

भरणी को आठ भाग में ऊँची बनाएँ जिसका नीचे का छन्द गोल, वृत्ताकार हों। उद्गम पर ग्रासपट्टी और भरणी पर स्कन्धपट्टिका नियोजित होगी।

वृत्ताकाराः प्रकर्तव्याः समपत्रा च निर्गमे।
पादोनांशं कामरूपं पादं स्यात् स्कन्धपट्टिका॥ 32॥

ये सब वृत्ताकार, गोलाई युक्त हो व समान पत्रानुसार निकास युक्त हों। इसमें कामरूप पौन भाग का और चतुर्थांश भाग की स्कन्धपट्टिका हों।

चिप्पिका चार्धभागा स्यात् सपादा कर्णपालिका।
पट्टिकान्तरपट्टी च पादपादं प्रकल्पयेत्॥ 33॥

चिप्पिका आधे भाग की और कर्णपाली सवा भाग की, पट्टिका और अन्तरपट्टी दोनों ही चतुर्थांश-चतुर्थांश प्रमाण की बनाएँ।

स्कन्धः कार्यो द्विभागश्च भागार्धं कर्णपालिका।
पट्टीकान्तरपट्टी च पादपादं प्रकल्पयेत्॥ 34॥

इसके बाद, स्कन्ध दो भागों का और आधे भाग की कर्णपालिका तथा पट्टिका और अन्तरपट्टी भी चतुर्थांश-चतुर्थांश बनाई जाएगी। (यहाँ आधा श्लोक पूर्व श्लोक के समरूप है)।

भागार्धं च भवेत्स्कन्धः कर्णः पादोनभागिकः।
अन्तःपत्रं चार्धभागं कर्तव्यं सर्वकामदम्॥ 35॥

स्कन्ध को आधे भाग का बनाएँ और कर्ण को पौन भाग तथा अन्तःपत्र आधे भाग का बनाएँ जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला कहा गया है।

नासोपाङ्गेषु सर्वेषु पल्लवाः कामरूपिणः।
अशोकपल्लवाकाराः कर्तव्याः सर्वकामदाः॥ 36॥

सभी नासिकाओं पर बड़े सुन्दर पल्लवों की आकृतियाँ उत्कीर्ण करें जो अशोक के पल्लव के आकार में बनाई जाए तो सब कामनाओं की पूर्तिकारी हैं।

तमालपत्रकाकाराः कर्णकस्कन्धबन्धकाः।
तदालीनाकारपत्रैर्वकस्योर्ध्वं समार्गकैः॥ 37॥

इति भरणी।

कर्णक स्कन्ध के बन्धन को तमाल के पल्लवों की आकृति में बनाए और उनमें बक या बगुलों को समार्ग या एक ही मार्ग पर जाते हुए दिखाएँ।

पट्टयुक्ता शिरोवटीप्रमाणं —

शिरावटी **पञ्चभागा** समुच्छ्राये प्रकीर्तिता।
भारपुत्तलिकायुक्तां त्रिभागैस्तां **च कारयेत्**॥ 38॥

शिरावटी को पाँच भागों की ऊँचाई की बनाना कहा गया है। उसे भार-पुत्तलिका युक्त तीन भागों में करना चाहिए।

पादोनस्तु भवेत्स्कन्धः **कर्णः** पादोनभागिकः।
अन्तःपत्रं चार्धभागं **कर्तव्यं** सर्वकामदम्॥ 39॥

उसका स्कन्ध पादोन या तीन चौथाई भाग का हो और कर्ण भी पादोन ही हो। अन्तःपत्र आधे भाग का करना चाहिए जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है।

तदूर्ध्वे च भवेत्पट्टं भागैः पञ्चभिरूच्छ्रितम्।
तन्त्रकेन च संयुक्तं युक्तालङ्कारभूषितम्॥ 40॥

इति पट्टयुक्ता शिरोवटी।

इसके ऊपर के भाग में पट्ट होता है जिसकी ऊँचाई पाँच भाग की होती है। इसमें तन्त्रक के साथ समुचित अलङ्करणों को बनाना चाहिए।

कपोताल्यामालाप्रमाणं —

तदूर्ध्वं तु कपोताली पूर्वमानप्रकल्पिता।
सार्धद्वयं च तत्पट्टं कर्तव्यं सर्वकामदम्॥ 41॥

इति कपोताल्या माला।

इसके ऊपर कपोताली पहले बताए गए मान के अनुसार प्रकल्पित होगी। उसका पट्ट ढाई भाग का बनाएँ जो सब कामनाओं की पूर्ति करता हैं।

कूटच्छाद्योदयः —

कूटच्छाद्योत्सेधमानं स्यात्रयोदशभागतः।
भागार्धं स्कन्धपट्टी **च स्कन्धश्चैव** त्रिभागिकः॥ 42॥

कूटछाद्य की ऊँचाई का मान तेरह भाग का होगा। उसके आधे भाग की स्कन्ध पट्टी और तीन भाग का स्कन्ध बनाएँ।

भागार्धं मुखपट्टी च छाद्योत्सेधो युगांशकः।
एकभागा दण्डिका **च अर्धं** चान्तरपत्रिका॥ 43॥

इसी प्रकार आधे भाग की मुखपट्टी तथा छाद्य की ऊँचाई दो भाग की और एक भाग की दण्डिका तथा आधे भाग की अन्तरपत्रिका बनाई जाएँ।

कर्णः सपादभागश्च स्कन्धश्चैव द्विभागिकः।
स्कन्धपट्टी भागपादा कर्तव्या सर्वकामदा॥ 44॥

उसका कर्ण सवा भाग का और स्कन्ध दो भाग तथा स्कन्धपट्टी चतुर्थांश भाग की बनाएँ जो सब कामनाओं को पूर्ति करने वाली है।

कपोताल्यग्रनिष्कासं कुर्यात्तु दशभागिकम्।
चतुर्भागमधः स्कन्धं सार्धं च मणिबन्धकम्॥ 45॥

कपोताली का आगे का निकास दस भाग का रखें। उसके नीचे का स्कन्ध चार भाग का और मणिबन्ध को डेढ़ भाग का रखना चाहिए।

तत्तुल्याग्रे चिप्पिका तु कर्तव्या सर्वकामदा।

उसी के बराबर अर्थात् डेढ़ भाग की चिप्पिका उसके आगे बनाए जो सब कामनाओं की पूर्ति करती है।

अथोच्छ्रायप्रमाणमाह —

उच्छ्रयं कथयिष्यामि शृणु चैकाग्रमानसः॥ 46॥
कामरूपं भवेद् भागं पदिका स्कन्धपट्टिका।
भागार्धं चिप्पिकां कुर्यात् पादं च मुखपट्टिकाम्॥ 47॥

अब मैं ऊँचाई के बारे में कहता हूँ जिसे तुम एकाग्र मन होकर सुनो। उसके पदिका और स्कन्धपट्टिका एक भाग की व कामरूप अर्थात् सुन्दर होगी। उसकी चिप्पिका आधे भाग की कही गई है जबकि मुखपट्टिका चतुर्थांश होगी।

कर्णो द्विभागक इत्युक्तो भागर्धं दण्डकं मतम्।
मणिबन्धस्य संस्थाने त्रिभागं सारिलम्बनम्॥ 48॥

कर्णों को दो भाग का बनाए और दण्डक को आधे भाग कहा है। मणिबन्ध के स्थान पर तीन भाग प्रमाण का सारिलम्बन बनाए। इसका प्रवेश छह भागों का और निर्गम षोडषांश भाग का हो।

षड्भिर्भागैः प्रवेशः स्यात् षोडशांशैश्च निर्गमः।
वार्यन्तरं च षड्भागैः प्रवेशः षड्भिरेव च॥ 49॥

इसके वारी-अन्तर (जलार्थ निर्मिति) को छह भाग का बनाए और प्रवेश भी छह-छह भागों का और निर्गम षोडषांश भाग का हो।

स्वके स्वके च स्थाने च बृहल्लघुक्रमैस्तथा।
भक्तिपादषोडशांशे पृथुत्वमुदकान्तरे॥ 50॥

अपने स्थान के ऊपर बड़े-छोटे के क्रम में षोडषांश विभक्ति पादों में उदकान्तर, वारिमार्ग का पृथुत्व या मोटाई कल्पित करें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां नागरप्रासादविभक्तिस्तरप्रमाणलक्षणाधिकारो नाम सप्तविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 127॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में नागर प्रासाद विभक्ति स्तर प्रमाण लक्षण अधिकार नामक एक सौ सत्ताइसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 127॥

प्रासादसमस्तमण्डोवरो नामाष्टाविंशत्युत्तरशततमं सूत्रम्॥ 128॥

अधुना मेरुमण्डोवरोदयस्तरसङ्ख्याप्रमाणं। विश्वकर्मोवाच —

मेरुमण्डोवरं वच्मि विभक्तिदलसङ्ख्यया।
पुरतः प्रोच्यते मानं स्थलानां स्थूलतोद्भवम्॥ 1॥
चतुःपञ्चाशदेवोक्ताः पुनर्भागैश्च पूर्वतः।

(इस सूत्र में प्रासादों के मण्डोवर यानी गर्भगृह की भित्तियों के विषय में लक्षण-प्रमाणादि कहे जा रहे हैं) विश्वकर्मा बोले कि अब मैं मेरु मण्डोवर यानी मेरु प्रासाद के लिए बनाए जाने वाले मण्डोवर को रचना के विभिन्न भागों दलों-स्तरों की संख्या के क्रम से कहता हूँ। पहले कहे गए मान के अनुसार बने स्थलों के स्थूलता से पैदा होने वाले 54 भागों के बारे में पूर्वकथितानुसार ही बनाए जाएँ।

भरण्यूर्ध्वे भवेन्मञ्ची ह्यष्टभागसमुच्छ्रिता॥ 2॥
पञ्चनेत्रोन्नता जङ्घा उद्गमे च त्रयोदश।

इसमें भरणी के ऊपर मञ्ची आठ भाग की ऊँचाई की और जङ्घा को पाँच नेत्र (अर्थात 5 × 2 = 10) भाग ऊँचाई की बनाएँ जो उद्गम तक १३ तेरह भाग हो।

पुनर्भरण्यष्टभागा शेषं पूर्वविकल्पितम्॥ 3॥
अतस्ताश्च पुनः स्थूला [1]एकपञ्चाशदवृद्धितः।

इसके ऊपर पुनः भरणी आठ भाग की पहले कही गई, वैसी ही बनावें। इसके बाद पुनः इक्यावन (एकपञ्चाशद वृद्धितः ?) तक स्थूलाकार या मोटी बनाएँ।

---

1. 'एकपञ्चाशद्वृद्धितः।' इति प्रकाशित पाठः।

कूटच्छाद्योपरि **कुर्यात्** सप्तांशोन्नतमञ्चिकाम् ॥ 4 ॥
षोडशांशा **पुनर्जङ्घा भरणी** सप्तभागिका।

कूटच्छाद्य के ऊपर सात भाग की ऊँची मञ्चिका बनाएँ। फिर, सोलह अंश या भागों में जङ्घा और सात भागों की भरणी बनाएँ।

शीर्षपट्टी चतुर्भागाऽन्तः **पट्टः** पञ्चभागिकः ॥ 5 ॥
कूटच्छाद्यं द्वादशांशं **कर्तव्यं** सर्वकामदम्।
एषा युक्तिर्विधातव्या मेरुमण्डोवरे **तथा** ॥ 6 ॥

इति मेरुमण्डोवराधिकारः।

इसी प्रकार मेरुमण्डोवर में शीर्षपट्टी को चार भाग और अन्तःपट्ट को पाँच भाग का बनाएँ। कूटछाद्य को बारह अंशों का बनाएँ। यह सब कामनाओं की पूर्ति करता है। यह युक्ति मेरुमण्डोवर के लिए बताई गई है।

अपराजित उवाच —

स्वल्पद्रव्यैः **संयतैश्च क्रियते यः** शिवालयः।
तन्मानानुक्रमं **वक्ष्ये** क्षीणवित्ताः **कलौ युगे** ॥ 7 ॥

इस बीच, अपराजित ने प्रश्न किया कि कम पूँजी या धनराशि होने पर भी संयत होकर जो व्यक्ति शिवालय बनवाना चाहे, उसके लिए मान का अनुक्रम कहिए जिससे इस कलियुग में भी क्षीणवित्ता, कम धन वाले लोग निर्माण कार्य करवा सके।

अथ भूमिजप्रासादोदयस्तरसङ्ख्याप्रमाणं विश्वकर्मोवाच —

स्वल्पद्रव्यैर्यदा युक्तिर्महापुण्योदया **भवेत्**।
पीठं तु कथितं पूर्वमूर्ध्वमानमतः **शृणु** ॥ 8 ॥
खुरं कुम्भी च कलशं कपोतालीमनन्तरम्।
... ... जङ्घारूपाणि **मञ्चिका** ॥ 9 ॥
... ... **शेषां कार्याश्च** समसूत्रतः।
... ... ॥ 10 ॥

विश्वकर्मा बोले कि कम द्रव्य होने पर शिवालय बनाने की युक्ति महापुण्योदय करने वाली होती है। उसके लिए पीठ के बारे में तो मैंने पहले ही बता दिया है, अब उसकी ऊँचाई का मान बताता हूँ जिसे सुनो। इसके खुरक, कुम्भी, कलश, कपोताली अन्तरपत्र... जङ्घारूपों में मञ्चिका.... शेष सभी समसूत्र में करें।

ग्रासपट्ट्या समं युक्ता कर्तव्या सर्वकामदा।
इति साधारणः प्रोक्तः प्रासादे स्तरसङ्ख्यया॥ 11॥

इसमें ग्रासपट्टी ठीक तरह की युक्ति से करनी चाहिए जिससे सब कामनाओं की पूर्ति हो। यह साधारण प्रासाद की स्तर संख्या बताई गई।

भूमिजे चैव प्रासादे वराटे च विमानके।
विस्ताराच्च समुत्सेधपर्यन्तं **चा**ऽऽद्यभूमिका॥ 12॥
शृङ्गकूटोदयं **त्यक्त्वा तन्मध्ये तु विचक्षणैः।**
शीर्षोदयो विधातव्यश्छाद्यान्तं कुम्भकादितः॥ 13॥

भूमिज प्रासाद में, वराट प्रासाद में, विमान प्रासाद में आदि भूमि के विस्तार से ऊँचाई पर्यन्त अर्थात् पूरी ऊँचाई तक शृङ्ग-कूटोदय को छोड़कर इसके बीच में विचक्षण शिल्पीगण कुम्भक से आरम्भ करके छाद्यान्त तक शीर्षोदय या ऊँचाई बताते हैं।

तत्समुच्छ्रययुक्तिं **च प्रवक्ष्ये** स्तरसङ्ख्यया।
विभक्तं सार्धसप्तांशः कुम्भादिप्रहरान्तकम्॥ 14॥

उनकी ऊँचाई की युक्ति ठीक प्रकार से स्तर संख्यावार कहता हूँ। कुम्भादि से प्रहरान्त तक साढ़े सात भाग में विभक्त करें।

खुरकं पीठमध्ये तु सपादं कुम्भकोऽंशकः।
भागार्धं च घटे कुर्यादध ऊर्ध्वे च चिप्पिके॥ 15॥

इसमें पीठ के मध्य में खुरक सवा भाग का और कुम्भक एक भाग का और घट अर्थात् कुम्भ का आधा नीचे बनाएँ और उस पर चिप्पिका बनाएँ।

अन्तःपत्रं घटार्धं स्यात् घटतुल्या **तु मालिका।**
मञ्चिका तत्समोत्सेधे **जङ्घा** भागद्वयोन्नता॥ 16॥

अन्तःपत्र को घट का आधा अर्थात् चतुर्थांश भाग बनाएँ। घट के बराबर आधे भाग की मालिका बनाएँ। मञ्चिका भी उतनी ही ऊँची यानी आधे भाग की और जङ्घा को दो भाग ऊँची बनाएँ।

भरणं चैव भागार्धं शिरःपट्टी च तत्समा।
ऊर्ध्वे च तत्समं पट्टं पादार्धन्तरपत्रिका॥ 17॥

भरण को आधा भाग और शिरपट्टी को भी उसी के समान आधा भाग की बनाएँ। इसके ऊपर इतना ही अर्थात् आधे भाग का पट्ट और आधे भाग की अन्तरपत्रिका बनेगी।

पादोनांशं कूटच्छाद्यं निर्गमे च पदद्वयम्।
एकपादा क्षोभणां स्यात् स्तरमानमितीदृशम्॥ 18॥

इति भूमिजप्रासादोदयस्तरसङ्ख्याप्रमाणम्।

कूटछाद्य को पादोन अंश का यानी तीन-चौथाई भाग का बनाएँ जिसका निकास दो भाग रखें और एक भाग की क्षोभणा रखें। इस तरह प्रासाद की ऊँचाई के स्तर मान होते हैं।

द्राविडप्रासादमण्डोवर: —

द्राविडे चैवमुत्सेधे यावत्पीठोर्ध्वमस्तकम्।
कर्णे समुत्सेधमानं घण्टान्तं तु प्रकल्पयेत्॥ 19॥

पीठ से लेकर मस्तक तक द्राविड़ प्रासाद का उत्सेध यानी ऊँचाई को कर्ण की ऊँचाई तक के मान अनुसार घण्टान्त अर्थात् गुम्बज के सिरे तक की कल्पना करें।

एकभूमादितो वृद्धिरन्ते द्वादशभूमिकम्।
जङ्घावृद्धिक्रमयोगे साद्यसूर्यान्तका$_{12}$ भवेत्॥ 20॥

इति द्राविडप्रासादमण्डोवर:।

इसमें एक भूमि या मंजिल से लेकर बारह मंजिलों तक जङ्घावृद्धि का क्रम प्रारम्भ से बारह तक होता है।

धातुजरत्नजदारुजादिप्रासादमण्डोवरा: —

धातुजे रत्नजे चैव दारुजे च रथारुहे।
प्रोक्तं च नागरं मानं प्रयुक्तं वास्तुवेदिभि:॥ 21॥

इसके अतिरिक्त धातु के, रत्न और काष्ठ के तथा रथारुह प्रासाद के मान नागर मानानुसार ही वास्तुविदों ने बताए हैं।

इत्येवं मानमुद्दिश्य वास्तुविद्भिरुहाहृतम्।
धर्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां प्राप्तिहेतुरपीदृशम्॥ 22॥

इसी प्रकार का मान प्रमाण वास्तुविदों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के निमित्त प्रतिपादित किया है।

सूत्रशास्त्रप्रयुक्तं च वास्तुवेदउदाहृतम्।
स सर्वमाप्नोति नर ईदृशं यस्तु कारयेत्॥ 23॥

जो व्यक्ति वास्तुवेद में बताए गए सूत्रशास्त्र[1] में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार कार्य

1. सूत्रशास्त्र का पूर्व में भी सङ्केत किया है। सम्भवत: यह समराङ्गणसूत्रधार या अन्य विश्वकर्मीय ग्रन्थ

करता है, उसकी समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है।

अज्ञात्वा कुरुते यस्तु स शिल्पी दोषभाग् भवेत्।
दोषं च वर्जयेत्प्राज्ञः कृते चैव महाभयम्॥ 24॥

जो शिल्पी इन नियमों से अनभिज्ञ है और कार्य करता है तो वह दोष का भागी होता है। इसलिए दोष को प्राज्ञ अर्थात् समझदार व्यक्ति नहीं होने दे क्योंकि दोष करने पर महाभय उपस्थित होता है।

सर्वं कुर्याच्च शास्त्रोक्तं सर्वं कुर्याच्च शोभनम्।
शास्त्रोक्तमेव चाऽत्रोक्तं दृश्यं मूलागमे तथा॥ 25॥

अस्तु, सब कुछ शास्त्रोक्त विधि से करना ही शोभा देता है। शास्त्रोक्त ही यहाँ पर कहा गया है जिसको मूलागम से ही ध्यान में रखना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादसमस्तमण्डोवरधिकारो नामाष्टाविंशत्युत्तरं शततमं सूत्रम्॥ 128॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद समस्त मण्डोवर अधिकार नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 128॥

प्रासादगर्भगृहोदुम्बरार्धचन्द्रलक्षणद्वारप्रतिष्ठा नामैकोनत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 129॥

अधुना गर्भगृहोच्छ्रयमानं। विश्वकर्मोवाच —

गर्भगृहप्रमाणं च विश्वकर्मवचो यथा।
तथा ते सम्प्रवक्ष्यामि शृणुत्वमपराजित॥ 1॥

(देवालयों के ही विविध अङ्गों के क्रम में इस सूत्र में गर्भगृह के प्रमाण बताए जा रहे हैं) विश्वकर्मा बोले कि हे अपराजित! मैं विश्वकर्मा के मत से तुम्हें गर्भगृह के प्रमाण के बारे में कहता हूँ जिसे ध्यान से सुनो।[1]

होगा। कहा है कि वास्तुशास्त्रादि को समझने व समझाने के लिए सूत्रधारों के उपयोगार्थ अनेकों ग्रन्थ हैं यथा— भुवनकोश विज्ञान और प्रमाणसूत्रकर्मणि— सूत्रधारोपयोगार्थ वास्तुशास्त्रादिबोधनम्। भुवनकोशविज्ञानं प्रमाणं सूत्रकर्मणि॥ (अपराजित. 50, 6) वैसे पृथक् से 'वास्तुसूत्रोपनिषद्' भी मिलता है।

1. यहाँ किसी अन्य विश्वकर्मीय मत की ओर भी सङ्केत सम्भव है। विश्वकर्माप्रकाश में आया है कि जितनी भूमि में मन्दिर बनाना हो, उसका 16 भाग करें। मध्य के चार भाग में गर्भगृह बनाए और पुनः साढ़े बारह कल्पित कर चार भाग की भित्तिका की ऊँचाई करें। भित्ति की ऊँचाई का दुगुना शिखर की ऊँचाई रखें— तस्य मध्ये चतुर्भागं तस्मिन् गर्भं च कारयेत्। भागं द्वादशकं सार्द्धं ततस्तु परिकल्पयेत्॥

कुम्भी तु कुम्भके ज्ञेया स्तम्भो ज्ञेयस्तथोद्गमः।
भरणं भरणी ज्ञेया कपोताली **तथा शिरः ॥ 2 ॥**

इस प्रसङ्ग में कुम्भी को कुम्भक जानो और स्तम्भ को उसका उद्गम। भरण को भरणी और कपोताली को उसका सिर जानना चाहिए।

अधस्यात् कूटच्छाद्यस्य कुर्यात्पट्टस्य **पेटकम्।**
अर्धोदये करोटं च कर्तव्य विधिपूर्वकम् **॥ 3 ॥**

कूटच्छाद्य के नीचे से लेकर पाट का पेटा बनाना चाहिए। इसकी आधे तक की ऊँचाई में विधिपूर्वक करोट को बनाना चाहिए।

तथान्य प्रमाणमाह —

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि **मानं** गर्भगृहस्य **च।**
प्रासादानां बृहन्मानं वत्स विज्ञायते यतः ॥ 4 ॥

अब मैं गर्भगृह का अन्य, दूसरा मान कहता हूँ। हे वत्स! इससे प्रासादों का बृहन्मान यानी पूरा मान जानने में आ जाता है।

गर्भव्यासः **षडंशस्तु सपादः सार्ध एव च।**
पादोनांशाधिको **वाऽपि ज्येष्ठ-मध्य-**कनिष्ठकः **॥ 5 ॥**

गर्भगृह का व्यास सवा छह भाग, साढ़े छह भाग और पौने सात भाग भी हो सकता है जो क्रमशः ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ होगा।

तत्रोदयेऽष्टभिर्भक्ते भागेनैकेन कुम्भिका।
स्तम्भः सार्धचतुष्कांशो भागमुच्छालको **मतः ॥ 6 ॥**

प्रासाद की ऊँचाई को आठ भाग करें। इनमें एक भाग की कुम्भिका, स्तम्भ साढ़े चार भाग का और एक भाग का उच्छालक रखें।

शीर्षकं भागमेकं तु अर्धं पट्टसमुच्छ्रयः।
गर्भव्यासार्धमानेन **कुर्यात्** पद्मशिलोदयम् **॥ 7 ॥**

शीर्षक को एक भाग का और आधे भाग का पट्ट का ऊँचाव करें। पद्मशिला की ऊँचाई को गर्भ के व्यास के आधे के बराबर करें।

च कर्तव्या दर्दरिका पञ्चसप्तमथोचिते।[1]

चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः। द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायच्च यानतः॥ (विश्वकर्मा. 6, 57-58)

1. 'न कर्तव्या दर्दरिका पञ्चसप्तमथोचिते ?।' इति प्रकाशित पाठः।

अनेनैव प्रकारेण कुर्याद् गर्भगृहोच्छ्रयम् ॥ 8 ॥

इति गर्भगृहोच्छ्रयमानम्।

इसी प्रकार दर्दरिका पाँच या सात यथोचित बनाएँ। इस प्रकार से ही गर्भगृह की ऊँचाई को रखनी चाहिए।

अथोदुम्बरमानमाह —

उदुम्बरं तथा वक्ष्ये कुम्भिकान्तं तदुच्छ्रयः।
तस्यार्धेन **त्रिभागेन** पादोनरहितं **तथा ॥ 9 ॥**
उक्तं चतुर्विधं शस्तं कुर्याच्चैवमुदुम्बरम्।
अत्युत्तमा**श्च चत्वारो न्यूना** दुष्यास्तथाधिकाः ॥ 10 ॥

अब उदुम्बर के बारे में कहता हूँ। सामान्यतया कुम्भिका के अन्त से उसकी ऊँचाई कल्पित होती है। उसकी आधी, तृतीयांश और चतुर्थांश भी— इसी प्रकार उदुम्बर चार प्रकार से प्रशस्त कहा गया है। ये चारों ही प्रकार अति उत्तम कहे गए हैं और इनसे कम या इनसे अधिक रखना दोषपूर्ण माना गया है।

खुरकोर्ध्वेऽर्धचन्द्रस्स्यात् **तदूर्ध्वं** स्यादुदुम्बरः।
उदुम्बरार्धे **त्र्यंशे वा पादे वा** गर्भभूमिका ॥ 11 ॥

खुरक के ऊपर अर्धचन्द्र बनाते हैं और उसके ऊपर ही उदुम्बर बनता है। उदुम्बर के आधे, तृतीयांश या चतुर्थांश भाग में गर्भगृह की भूमिका होती है।

मण्डपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका।
एषा युक्तिर्विधातव्या सर्वकामफलोदया ॥ 12 ॥

सभी मण्डपों में पीठ के अन्त तक रङ्गभूमिका होती है। इसी युक्ति से निर्माण करना विहित है जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला है।

द्वार्विस्तरत्रिभागेन **मध्ये** मन्दारिका **तथा।**
वृत्तं मन्दारकं कुर्याद्युतं पद्ममृणालतः ॥ 13 ॥

इसी प्रकार दो भाग विस्तार और तीन भाग के मध्य में मन्दारिका तथा वृत्त मन्दारक को पद्ममृणाल युक्त बनाएँ।

मूलनासिकयोर्मध्ये **स्थाप्यश्चो**दुम्बरस्तथा।
सिंहशाखा मूलनासा **समसूत्रे विचक्षणैः** ॥ 14 ॥

मूलनासिकाओं के मध्य में उदुम्बर को स्थापित करें। इनमें सिंहशाखा को मूलनासिका के समसूत्र में विचक्षण शिल्पी बनाते हैं।

जाड्यकुम्भः कर्णमाला चोर्ध्वे वृत्तं मृणालकम्।
मन्दारोभयपक्षे तु कीर्तिवक्त्रद्वयं भवेत्॥ 15॥

जाड्यकुम्भ और कर्णमाला के ऊपर की ओर वृत या गोल मृणालक बनाएँ और मन्दार के दोनों ओर दो कीर्तिमुख बनाए जाने चाहिए।

भृकुट्या कुटिलाक्षं च दंष्ट्राभिः समलङ्कृतम्।
कर्णोपशृङ्गैस्तदधः शाखापत्रैरलङ्कृतम्॥ 16॥

इन कीर्तिमुखों की भृकुटी कुटिल, भयानक आँखों से युक्त हो और उनके तीखे दाँत भी दिखाई पड़ते हों, ऐसा अलंकृत करें। इनके कानों और उपशृङ्गों के नीचे शाखापत्रों का अलङ्करण होना चाहिए।

तलच्छन्दे च शाखा तु स्यादुदुम्बरपक्षयोः।
तद्रूपा क्रियते प्राज्ञैर्निगमे पीठसंयुता॥ 17॥

उदुम्बर का विधान तलछन्द से शाखा तक होता है। समझदार शिल्पी उसका निर्गम इसी रूप का पीठ युक्त बनाते हैं।

शालोदरपृथुत्वेन शाखावत्स्यादुदुम्बरः।
शाखाकपाटग्रहणी उभयोर्भित्तिमानतः॥ 18॥

इत्युदुम्बरमानम्।

गर्भशाला के उदर की चौड़ाई के अनुसार ही शाखा नियोजित होती है और उदुम्बर बनता है। द्वारशाखा को कपाटग्रहणी युक्त दोनों और की भीति के प्रमाणानुसार बनानी चाहिए।

अर्धचन्द्रमानमाह —

अर्धचन्द्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं लक्षणान्वितम्।
द्वारस्य विस्तरार्धेन कर्तव्यस्तस्य निर्गमः॥ 19॥

अब मै अर्धचन्द्र के यथोचित लक्षणों को कहता हूँ। द्वार के विस्तार की अपेक्षा आधे के बराबर उसका निर्गम यानी निकास करना चाहिए।

निर्गमस्य प्रमाणेन द्विगुणं दैर्ध्यतस्ततः।
त्रिभागं चोत्सृजेद् भागं वृत्तं तु भ्रामयेत्ततः॥ 20॥

निर्गम के प्रमाण के बराबर से दुगुनी उसकी चौड़ाई यानी दैर्घ्य हो। इसके पुनः तीन भाग करें और एक भाग को वृत्ताकार बनाए।

अर्धचन्द्राकृतिं कुर्याच्छाखाग्रे गर्भकान्वितम्।
गगारकं याम्योत्तरे तस्यान्ते चैव पादुकाः॥ 21॥

उससे अर्धचन्द्राकृति करके शाखा और गर्भ के आगे बनाए। उसके बाएँ-दाएँ गगारक बनाएँ और उनके अन्त में पादुका की भी रचना करें।

पत्रशाखासमायुक्ताः पद्माकारैरलङ्कृताः।
गगारकौ च द्वा मध्ये वृत्तस्य वाम-दक्षिणे॥ 22॥
नाभ्युद्भवलतामध्ये गकोरादरनिर्गमः।
एवमुक्तश्चार्धचन्द्रः सर्वकामफलप्रदः॥ 23॥

इत्यर्धचन्द्रः।

इन सबको पत्रशाखाओं से युक्त कमलों के आकारों से अलंकृत करें। वृत्त को मध्य में रखकर बाएँ-दाएँ दो गगारक बनाएँ जिनके नाभि के मध्य से निकलते हुए ये कमलपत्र शाखा अलङ्करण हों। इस प्रकार का अर्धचन्द्र सर्व कामनाओं को पूरी करने वाला कहा गया है।

इत्यमनन्तर द्वारप्रतिष्ठामाह —

द्वारस्य चोच्छ्र्यः कार्यः शुभचन्द्रबलस्थितौ।
खातं कृत्वोदुम्बरस्य पञ्चरत्नानि निक्षिपेत्॥ 24॥

(अब द्वार की प्रतिष्ठा के अर्थ में कहा जा रहा है) द्वार की ऊँचाई बनाते समय शुभ चन्द्रबल अवश्य देखें। उदुम्बर के खात यानी नींव रखते समय नींव में पाँच प्रकार के रत्नों को रखना चाहिए।

शाखाश्चोदुम्बरश्चैव हीनाश्चैवोत्तरङ्गतः।
वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा वास्तुदेवं समर्चयेत्॥ 25॥

शाखा, द्वारशाखा और उदुम्बर को उतरङ्ग से कुछ कम रखें और इस अवसर पर वास्तुदेवता को वस्त्र से ढक करके पूजा करें।

आदौ दक्षिणशाखायां स्थापनं कुरुते ध्रुवम्।
शाखोत्सेधचतुर्थांशे द्वारपालौ प्रपूजयेत्॥ 26॥

इस क्रम में सबसे पहले दाहिनी शाखा को स्थापित करें, ऐसा निश्चित जानना चाहिए। शाखा की ऊँचाई के चौथे भाग में द्वारपालों की पूजा करनी चाहिए।

सहिरण्यैः सुकलशैर्वस्त्रैराच्छादितैः क्रमात्।
उदुम्बरस्याऽभिषेकस्तथा शाखोत्तरङ्गयोः॥ 27॥

पूजन के प्रयोजन से सोने की मोहरों, सुन्दर कलशों को रखें और नवीन वस्त्रों से आच्छादित कर क्रमपूर्वक उदुम्बर, शाखा और उतरङ्ग का अभिषेक करें।

उदुम्बरे च शाखायां प्रतिष्ठा च यथोच्यते।
कार्या तथा चोत्तरङ्गे प्रतिष्ठा सर्वकामदा॥ 28॥

इस तरह से उदुम्बर और शाखा की प्रतिष्ठा करके उतरङ्ग की प्रतिष्ठा करें जो सब कामनाओं की पूर्ति करता है।

शिल्पिनं पूजयेत्तत्र वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
अन्ये च पूजनीयास्ते तत्र ये कर्मचारिणः॥ 29॥

इसके उपरान्त शिल्पियों को वस्त्रालङ्कार प्रदान कर सम्मानित करें। उनका पूजन करें और अन्य कर्मकरों और कर्मचारियों का भी पूजन-सम्मान करना चाहिए।

विश्रामस्तद्दिने वास्तुः सर्वविघ्नप्रशान्तिकृत्।
तदग्रे कथितव्यं च द्वारसूत्रप्रमाणकम्॥ 30॥

इति द्वारप्रतिष्ठा।

इसके उपरान्त, उस दिन काम का विश्राम दिन यानी अवकाश का दिन घोषित करें जिससे वास्तु के समस्त विघ्नों की शान्ति हो। इसके आगे मैं द्वार के सूत्र, नियमों के बारे में कहूँगा।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादगर्भगृहोदुम्बरार्धचन्द्रलक्षणद्वारप्रतिष्ठाधिकारो नामैकोनत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 129॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद गर्भगृह उदुम्बर अर्धचन्द्र लक्षण द्वार प्रतिष्ठा अधिकार नामक एक सौ उन्नतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 129॥

समस्तजातीयप्रासादद्वारप्रमाणं त्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 130॥

अधुना नागरप्रासादद्वारमानं। विश्वकर्मोवाच —

प्रयुक्तं प्रद्योतकरं मधुरं मुखरं सदा।
उक्तं मुक्ताफलं पङ्क्तौ द्वारमाला प्रमाणतः॥ 1॥[1]

(इस सूत्र में समस्त जातियों के प्रासादों के द्वारों के प्रमाणों का वर्णन है। इसमें लगता है कि रचनाकार ने अपना मूर्ण पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयास किया है जिससे गणित के अङ्कों की दुरुहता झलकती है) विश्वकर्मा बोले कि सदा ही मुखर

---

1. प्रसिद्ध शिल्पी सूत्रधार मण्डन (1433-68 ई.) के पुत्र सूत्रधार गोविन्द ने अपनी 'द्वारदीपिका' में इन्हीं श्लोकों को उद्धृत किया है।

होकर कहने वाला, मधुर आकर्षक मधुर वाणी में कहने वाला और सूर्य के समान प्रकाशित करने वाले कथन के द्वारा अपने मोतियों जैसी दन्तपङ्क्ति से उच्चारण करके मैं यह द्वारमाला, समस्त जातीय प्रासादों के प्रसङ्ग में सप्रमाण कहता हूँ।

द्वारस्य प्रस्तारक्रमाह —

तन्वादौ च कृतानष्टौ खबाणान् विन्यसेत् करान्।
प्रस्तार्याङ्कानुक्रमं च द्वारार्थं तु सुरालये॥ 2॥

(यहाँ रचयिता सुरालयों के द्वारों के लिए प्रस्तार अनुक्रम के अनुसार कुछ पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग कर रहा है। उसे उसी अर्थ में समझना होगा) तन्वादौ, तनु 1 आदि में और कृत यानी 4, अष्टो यानी 8, ख यानी 0, बाण यानी 5 के क्रम में कर या हस्त यानी गज को विन्यसेत् यानी निवेशित करें।

द्व्यष्टादौ च कलावृद्धिर्गुणयुग्मान्तगाः क्रमः।
द्वारोर्ध्वार्धश्च विस्तारो न तदर्धाधिकः शुभः॥ 3॥
प्रासादद्वारसूत्रार्थमङ्कं प्रस्तारयेद् बुधः।

प्रारम्भ में द्व्यष्ट यानी 16 और बाद में कला यानी 1/16 वृद्धि करते हुए पुनः गुण यानी 3 की और पुनः युग्म यानी 2 की वृद्धि अन्त तक क्रम से करें। द्वार का विस्तार उसकी ऊँचाई के आधे के बराबर रखें, उसे आधे से अधिक नहीं रखें। ऐसा करना शुभ नहीं है। इस तरह समझदार शिल्पी प्रासाद द्वारों के अङ्कों का प्रस्तार सूत्रार्थ, संक्षेप में याद रखने के लिए करें।

तनुस्त्वेका कृतैश्चतुरष्टावष्ट क्रमागतम्॥ 4॥
खं शून्यं पञ्चभिर्बाणा व्यसने विस्तरे शरः।
करो हस्ताभिधानं च क्रमात् प्रस्तारयेत्तथा॥ 5॥

अब परिभाषा समझते हैं— क्रमशः तनु का अर्थ 1 समझें, कृत का 4, अष्टा का 8, ख को शून्य 0 और बाण को पाँच 5 तथा व्यसन को विस्तार समझें। कर को हाथ, गज नाम से जाने और इस क्रम से प्रस्तार करें।

एकहस्तादिप्रासादाः पञ्चाशद्धस्तकावधि।
प्रस्तारक्रमयोगेन चतुरष्टौ सुसञ्ज्ञकाः॥ 6॥

इसके बाद, एक हाथ यानी गज वाले चौड़ाई के प्रासाद से लेकर पचास गज की चौड़ाई वाले प्रासाद तक प्रस्तारक्रम से चौरासी सुसंज्ञा बनती है।

द्व्यष्टादौ च षोडशान्ता कला वै षोडश स्मृताः।
गुणैस्त्रिभिर्युग्मे द्विभिः समुच्छ्रयार्थेषु चाङ्गुलाः॥ 7॥

प्रारम्भ में सोलह के अन्त तक की सोलह कला समझें। गुण से 3 और युग्म से 2 को द्वार की ऊँचाई के लिए अङ्गुल समझें।

एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं स्यात् षोडशाङ्गुलम्।
कार्या षोडशतो वृद्धिः पर्यन्ते च चतुष्करम्॥ 8॥
गुणाङ्गुलाऽष्टहस्तान्तं प्रयुक्ता वास्तुवेदिभिः॥ 9॥

एक गज चौड़े प्रासाद का द्वार 16 अङ्गुल ऊँचा होता है। इसमें चार गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद के लिए प्रति गज 16 अङ्गुल की वृद्धि करते जाएँ। उदाहरणार्थ— 1 गज 16 अङ्गुल, 2 गज 32 अङ्गुल, 3 गज 40 अङ्गुल, 4 गज 64 अङ्गुल। आगे 5 से 8 गज तक के चौड़े प्रासाद के लिए गुण = तीन अङ्गुल की वृद्धि करें। उदाहरणार्थ— 5 गज के 67 अङ्गुल, 6 गज के 70 अङ्गुल, 7 गज के 73 अङ्गुल और 8 गज के 76 अङ्गुल ऊँचा द्वार रखें। आगे 8 गज के ऊपर 9 से 50 गज तक के चौड़े प्रासाद के लिए प्रति गज में 2 अङ्गुल बढ़ाते जाएँ— ऐसा वास्तुविदों ने प्रयोग करके कहा है। उदाहरणार्थ— 9 गज के 78 अङ्गुल और 10 गज के 80 अङ्गुल, 50 गज के 80 + 80 = 160 अङ्गुल ऊँचा द्वार रखें।

द्वारं प्रासादसद्मादौ यानझम्पानतल्पके।
पृथुत्वमर्धमर्धं च शुभं स्यात्तु कलाधिके॥ 10॥

इति नागरप्रासादमानम्।

इस प्रकार प्रासाद, भवन, यान, झम्पान, तल्प इत्यादि सवारियों के लिए द्वार की मोटाई क्रमशः आधे-आधे प्रमाण से करना या कला प्रमाण से बढ़ाना शुभ है। (इस प्रकार नागर प्रासाद का द्वार मान कहा गया।)

भूमिजप्रासादद्वारमानं —

क्षमादौ पञ्च मुनीन्द्रा ग्रहाः शून्यबाणान्तगाः।
प्रस्तार्याङ्कानुक्रमं च द्वारार्थं तु सुरालये॥ 11॥

प्रारम्भ में क्षमा यानी 1, उसके बाद 5, मुनीन्द्र यानी 7, ग्रह यानी 9, शून्य यानी 0 और अन्त में बाण यानी 5 हो— इस तरह (5 0 9 7 5 1) प्रस्तार अङ्कानुक्रम से सुरालयों को द्वार के लिए काम में लें।

सूर्यादौ द्वादशवृद्धिस्तत्त्ववेदयुग्मान्तगाः।
अर्धेनार्धेन विस्तारः शुभः स्यात्तु कलाधिके॥ 12॥

प्रथमतः सूर्य अर्थात् 12 की वृद्धि चार तक, तत्व यानी 5 से, वेदयुग्मान्तगा- 8 तक 5 की वृद्धि करें और द्वार की ऊँचाई के आधे में पुनः उसका आधा जोड़कर

विस्तार दें, जो कलाधिक (सोलह अंश) होने से शुभ होता है।

क्षमा त्वेका तत्त्व पञ्च मुनीन्द्राः सप्त एव च।
ग्रहा नव शून्यैर्बिन्दुर्भूतबाणौ पञ्चांशकौ ॥ 13 ॥
क्षमादौ पञ्च मुनीन्द्रा ग्रहाः शून्यबाणान्तगाः।
प्रासादद्वारसूत्रार्थमङ्कं प्रस्तारयेद् बुधः ॥ 14 ॥

क्षमा अर्थात् 1, तत्व अर्थात् 5, मुनीन्द्र अर्थात् 7, ग्रह अर्थात् 9, शून्य अर्थात बिन्दु 0, बाण अर्थात् 5 है। इस तरह से क्षमा से आरम्भ करके पाँच मुनीन्द्र, ग्रह और बाण तक अन्त तक प्रासाद द्वार के सूत्रार्थ संक्षेप में याद रखने योग्य प्रस्तारक्रम को समझदार शिल्पी स्मरण रखें।

एकहस्तादिप्रासादाः पञ्चाशद्धस्तकावधि।
पञ्चसप्तनवैर्वापि कार्या अङ्का सुसञ्ज्ञकाः ॥ 15 ॥

एक हस्त (गज) की चौड़ाई वाले प्रासाद से 50 गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद तक की अवधि में पाँच, सात, और नौ तक भी अङ्कों को सुसंज्ञक करें।

एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं सूर्याङ्गुलोदयम्।
हस्ते हस्ते सूर्यवृद्धिः यावत्स्यात् पञ्चहस्तकम् ॥ 16 ॥

एक गज की चौड़ाई वाले प्रासाद के द्वार की ऊँचाई 12 अङ्गुल रखें। तदोपरान्त प्रत्येक गज के साथ 12-12 अङ्गुल की वृद्धि करते जाए जब तक कि पाँच हाथ का प्रासाद हो। उदाहरणार्थ— 5 गज के चौड़ाई के प्रासाद के 12 अङ्गुल प्रति गज से 60 अङ्गुल की ऊँचाई का द्वार होता है।

त्रितुर्यांशा च सप्तान्तं नवान्तं च तदर्धतः।
तदूर्ध्वं शतार्धान्तं च वर्धयेद् द्वयङ्गुलैः पुनः ॥ 17 ॥

इसके बाद सात गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद के प्रति गज त्रितुर्यांश अर्थात् 12 / 4×3 = नौ और जोड़े। उदाहरणार्थ— 6 गज के प्रासाद में 60 + 9 = 69, 7 गज के प्रासाद में 69 + 9 = 78 अङ्गुल ऊँचा द्वार रखें। इसके आगे आठ और नौ गज की चौड़ाई वाले प्रासाद में प्रतिगज 12/2 अर्थात् 6 अङ्गुल बढ़ाएँ। उदाहरणार्थ— 8 गज के चौड़े प्रासाद के 78 + 6 = 84 और नौ गज के प्रासाद के लिए 84 + 6 = 90 अङ्गुल ऊँचा द्वार रखें। फिर, इसके बाद तो पचास गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद तक प्रति गज 2 अङ्क बढ़ाते जाए। उदाहरणार्थ— 10 गज के 92 अङ्गुल और 50 गज के चौड़े प्रासाद के 92 + 80 = 172 अङ्गुल ऊँचाई का द्वार अर्थात् 7 गज और 4 अङ्गुल ऊँचा द्वार रखें।

उच्छ्रयार्धेण विस्तारं शुभं स्यात्तु कलाधिकम्।
भूमिजे द्वारमानं च प्रयुक्तं वास्तुवेदिभिः ॥ 18 ॥

इति भूमिजप्रासादद्वारमानम्।

द्वार का विस्तार उसकी ऊँचाई का आधा हो और 1/16 भाग अधिक भी हो तो वह शुभ होता है— ऐसा वास्तुविदों ने भूमिज प्रासाद के लिए द्वारमान का प्रमाण प्रयुक्त किया है।

द्राविडप्रासादद्वारमानं —

रूपादौ रसदिगन्तं शून्यतत्त्वान्ततः क्रमात्।
प्रस्तार्याङ्कानुक्रमं च द्वारार्थं तु सुरालये ॥ 19 ॥

रूप यानी 1 से आरम्भ करके रस या 6 और दिगन्त यानी 10 तक, इसके उपरान्त शून्य यानी 0 और तत्व यानी 5 तक क्रम से अङ्कानुक्रम का प्रस्तार सुरालयों के द्वारों के लिए करना चाहिए।

दशादौ दशवृद्धिश्च तत्त्वयुग्मान्तगाः क्रमात्।
पृथुत्वं च तदर्धेन शुभं स्यात्तु कलाधिके ॥ 20 ॥

प्रारम्भ के 10 में 10 की वृद्धि करते हुए तत्वयुग्मान्त 5 × 2 = 10 तक क्रम से प्रासाद के द्वार का विस्तार उसकी ऊँचाई के आधे से एक कला यानी 1/16 की अधिकता रखते हुए बनाए तो शुभ होता है।

रूपस्त्वेको रसैः षट् च दिशं दश प्रस्तारयेत्।
पञ्चाशच्छून्यतत्त्वानि प्रस्तारस्य क्रमो भवेत् ॥ 21 ॥

उक्त प्रस्तार क्रम में रूप का अर्थ एक 1 समझें, रस को 6 और दिशा को 10 समझें। इस तरह 5005 प्रस्तार क्रम होता है।

एकहस्तादिप्रासादाः पञ्चाशद्धस्तकावधि।
षट् तथा दिक् संस्थानेषु कार्या अङ्काः सुसञ्ज्ञकाः ॥ 22 ॥

एक गज की चौड़ाई के प्रासाद से 50 गज की चौड़ाई तक के प्रासाद तक छह तथा दिक् यानी 10 संस्थानों में सुसंज्ञक अङ्क रखें।

दिग्भिर्दश पञ्च तत्त्वैर्युग्मं द्वाभ्यां क्रमागतम्।
इति चाङ्गुलप्रस्तारं द्वारार्थं तु प्रकल्पयेत् ॥ 23 ॥

दिग् अर्थात् 10, तत्त्व अर्थात् 5, युग्म अर्थात् 2 क्रम से यह अङ्गुल प्रस्तार द्वारों के लिए बताया गया है।

एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं विद्यादृशाङ्गुलम्।
दशाङ्गुलं प्रतिकरं यावत् षड्हस्तकं भवेत्॥ 24॥

इस तरह से एक गज के चौड़े प्रासाद के लिए द्वार की ऊँचाई 10 अङ्गुल की और इस तरह 6 गज तक प्रति गज के प्रासाद में 60 अङ्गुल की ऊँचाई का द्वार होगा।

अतऊर्ध्वं दिक्करानतं वृद्धिः पञ्चाङ्गुला भवेत्।
द्वयङ्गुला च ततो वृद्धिः पञ्चाशद्धस्तकावधि॥ 25॥

इसके ऊपर 10 गज तक के चौड़ाई के प्रासाद के लिए प्रति गज 5 अङ्गुल वृद्धि करें। उदाहरणार्थ— 10 गज के चौड़े प्रासाद के 60 + 20 = 80 अङ्गुल की ऊँचाई का द्वार होगा। उसके बाद 50 हाथ यानी गज तक की चौड़ाई वाले प्रासाद तक प्रति गज 2 अङ्गुल की वृद्धि करते जाए। अतः उदाहरणार्थ— 50 गज के चौड़ाई के प्रासाद के लिए 80 + 80 = 160 अङ्गुल अथवा 6 गज, 16 अङ्गुल ऊँचा द्वार बनेगा।

पृथुत्वं च तदर्धेन शुभं स्यात्तु कलाधिकम्।
द्राविडे द्वारविस्तारः प्रयुक्तो वास्तुवेदिभिः॥ 26॥

इस द्वार की चौड़ाई उसकी ऊँचाई के आधे से 1/16 अधिक रखने पर शुभ माना जाता है। इस तरह का द्वार विस्तार वास्तुविदों ने द्राविड़ प्रासाद के लिए प्रयुक्त किया है।

वराटमिश्रकाद्यन्यप्रासादद्वारमानं —

विमाने भूमिजे मानं वराटेषु तथैव च।
मिश्रके लतिने चैव मानं शस्तं च नागरम्॥ 27॥

विमान, भूमिज मान से और वराट संज्ञक प्रासाद में भी ऐसा ही रखें किन्तु मिश्रक, लतिन में नागर प्रासाद में प्रयुक्त मान को प्रशस्त माने।

दशहस्तात्परं चैव सान्धारे कामदं तथा।
विमाननागरच्छन्दे कुर्याद्विमानपुष्पके॥ 28॥

दस गज के ऊपर के सान्धार और कामद, विमान नागर छन्द में विमान पुष्पक छन्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।

नागरं शोभनं द्वारं तथा सिंहावलोकने।
वलभ्यां भूमिजं मानं द्राविडं फांसनाकृतौ॥ 29॥

नागर द्वार शोभायुक्त होता है। उसके सिंहावलोकन या झरोखे भी सुन्दर होते हैं। वलभी के भूमिज मान रखें और द्राविड़ के फांसनाकृति के मान का प्रयोग करें।

धातुजे रत्नजे चैव दारुजे च रथारुहे।
यश्छन्दश्चैव प्रासादे द्वारं तन्मानकं भवेत्॥ 30॥

धातुज, रत्नज, दारुज और रथारुह में जो-जो प्रासाद जिस-जिस छन्द का हो, उसका द्वार भी उसी छन्द मान में बनाए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदवोचार्योक्तापराजितपृच्छायां समस्तजातीयप्रासादद्वारप्रमाणाधिकारो नाम त्रिंशदुत्तशततमं सूत्रम्॥ 130॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सर्व जातीय प्रासाद द्वार प्रमाण अधिकार संज्ञक एक सौ तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 130॥

प्रासादविभक्तिद्वारनिर्णयो नामैकत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 131॥

अधुना पद्मिनीमुकुलीहस्तिनीमालिनीनन्दिनीगान्धारीसुभगासुप्रभास्मरेत्येकादि नवान्तशाखानामानि। विश्वकर्मोवाच —

तदनन्तरमुद्दिष्टं द्वाराणां लक्षणं शुभम्।
ज्येष्ठं-मध्यं-कनिष्ठं च प्रत्येकं त्रिविधं तथा॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि इसके बाद द्वारों के उद्दिष्ट यानी सज्जादि के शुभ लक्षणों को बताता हूँ। ये, ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ और इनमें भी प्रत्येक के तीन प्रकार के होते हैं।

पद्मिनी नवशाखं च सप्तशाखं तु हस्तिनी।
नन्दिनी पञ्चशाखं तु त्रिविधं चोत्तमं भवेत्॥ 2॥

इनमें पद्मिनी नव शाखा की, हस्तिनी सप्त शाखा की और नन्दिनी पाँच शाखा की— ये तो तीन प्रकार की उत्तम होती है।

मुकुली मालिनी ज्येष्ठा गान्धारी सुभगा तथा।
मध्यमेति द्विधा प्रोक्ता कनिष्ठा सुप्रभा स्मृता॥ 3॥

मुकुली और मालिनी ज्येष्ठा है। गान्धारी और सुभगा मध्यम तथा सुप्रभा व स्मृता को कनिष्ठा कहा हैं।

मुकुली चाष्टशाखं च षट्शाखं चैव मालिनी।
गान्धारी च चतुःशाखं त्रिशाखं सुभगा स्मृता॥ 4॥

मुकुली आठ शाखा की, मालिनी छह शाखा की, गान्धारी चार शाखा की और सुभगा तीन शाखा की कही है।

सुप्रभा तु द्विशाखं चैकशाखं स्मरकीर्तितम्।
नवान्तमेकशाखादि लक्षणं कथ्यतेऽधुना॥ 5॥

सुप्रभा दो शाखा की और स्मर को एक शाखा की कहा है। इस तरह से एक से लेकर नव शाखा तक के द्वार लक्षणों का यहाँ कहा गया।

पद्मिन्यादिशाखानामायदोषविशुद्धिः —

नखशाखे **ध्वजश्चैको वृषकः** पञ्चशाखिके।
त्रिशाखे च तथा सिंहः सप्तशाखे गजः स्मृतः ॥ 6 ॥
द्विशाखे धूम इत्युक्तमग्निकर्मगृहं **भवेत्।**

(आयानुसार) नव शाखा व एक शाखा को ध्वज आय देनी चाहिए। पञ्च शाखा को वृषभ आय, तीन शाख को सिंह आय; सात शाखा को गज आय और दो शाखा को धूम आय देनी चाहिए जिससे कि अग्नि सम्बन्धी गृह होता है।

चतुःशाखे तु कर्तव्यः श्वानः कारुत्वजीविनाम् **॥ 7 ॥**
षट्शाखे **चैव कर्तव्यः रजकादेः खरः स्मृतः।**
ध्वाङ्क्षश्चैवाऽष्टशाखे तु विहङ्गोदस्तथा **स्मृतः ॥ 8 ॥**

चार शाखा वाले द्वार को श्वान आय दें जिससे कि कारीगरी के सहारे जीवन-यापन करने वालों के लिए गृह बनता है। छह शाखा को खर आय दें जहाँ रजक या धोबी काम करते हैं। आठ शाखा के द्वार को ध्वांक्ष आय दें, जहाँ पक्षी आदि रखे जाते हैं।

देवेशानां **नखशाखं सप्तशाखं** दिवौकसाम्।
सार्वभौमे **पञ्चशाखं त्रिशाखं मण्डलेश्वरे ॥ 9 ॥**
द्विशाखं तु प्रकर्तव्यं शूद्र-वैश्य-द्विजन्मनाम्।

देवेशों के प्रासाद के लिए नवशाख के द्वार तथा देवताओं के प्रासादों के लिए सात शाखा के द्वार तथा सर्वभौम के लिए पाँच शाखा के द्वार, मण्डलेश्वर के लिए तीन शाखा के द्वार बनाएँ। शूद्र, वैश्य, द्विज लोगों के लिए दो शाखा के द्वार वाला गृह बनाएँ।

नवान्तमेकशाखादि आयदोषविशोधनम् **॥ 10 ॥**
यथा शास्त्रं यथा मानं युक्तिर्विधीयते।
तथा द्वाराणि सर्वाणि कर्तव्यान्येव शिल्पिभिः **॥ 11 ॥**

यहाँ नव शाखा से लेकर एक शाखा तक के आय-दोष को विशोधित करके बताया गया है, जो शास्त्रीय मान तथा युक्ति है। इसी अनुसार, सभी शिल्पियों को सभी द्वारों को बनाना चाहिए।

सार्धैरर्धैरङ्गुलैर्वा कुर्याद्धीनं तथाऽधिकम्।
आयदोषविशुद्ध्यर्थं ह्रस्ववृद्धी न दूषिते॥ 12॥

द्वार की ऊँचाई को आधे अङ्गुल से लेकर डेढ़ अङ्गुल तक आयदोष की शुद्धि के लिए न्यूनाधिक रखा जा सकता है और इस प्रकार की न्यूनाधिक्यता में कोई दोष नहीं होता।

प्रासादतलच्छन्दानुसारतो द्वारशाखानिर्णयः —

प्रासादजातिरूपं यत् तद्वद् द्वारं च सूत्रतः।
तलच्छन्दानुसारेण द्वारशाखां विभाजयेत्॥ 13॥

प्रासाद जिस जाति रूप का हो, उसी के सूत्र के अनुरूप उसका द्वार भी होना चाहिए। तलछन्दों के अनुसार ही द्वार शाखा का विभाजन किया जाना चाहिए।

त्र्यङ्गकादिविभेदेन नवाङ्गस्यानुसारतः।
शाखात्रयं त्रयङ्गकेषु पञ्चाङ्गे पञ्च वै लताः॥ 14॥

तीन अङ्गों के विभेद के अनुसार तथा नौ अङ्गों के अनुसार तीन शाखा तीन अङ्ग की और पाँच शाखा के पाँच अङ्ग के लता होते हैं।

सप्तशाखाश्च सप्ताङ्गे नवशाखा नवाङ्गके।
हीनशाखा न कर्तव्या अधिका नैव दूषयेत्॥ 15॥

सात शाखा के सात अङ्ग, नव शाखा के नौ अङ्ग बनाए। हीन शाखा अर्थात् इनसे कम शाखा न बनाए। इनसे अधिक बना दें तो भी कोई दोष नहीं समझें।

एकस्कन्धे यथा वृक्षे शाखा सङ्ख्या ह्यनेकशः।
प्रासादस्य तथा द्वारे हीनशाखा न शस्यते॥ 16॥

जैसे एक वृक्ष के स्कन्ध पर अनेक शाखाएँ होती हैं, वैसे ही प्रासाद के द्वार भी हैं। इनमें हीन शाखा रखना कभी उचित या प्रशस्त नहीं होता।

उभयोः कर्णयुक्तानि विभक्तान्युदकान्तरै।
प्रासादस्य तथाङ्गानि शेषं भद्रस्य भूषणम्॥ 17॥

इसमें दोनों ही कर्ण पर उदकान्तर युक्तिपूर्वक बनाए। प्रासाद के अङ्ग सभी शेष भद्रों या दीवारों के भूषण होते हैं।

अपराजित उवाच–

अर्चालिङ्गं न्यूनाधिकं प्रासादक्रममानतः।
शाखास्थानं कथं चाऽत्र सन्देहो मे वद प्रभो॥ 18॥

इस बीच, अपराजित ने प्रश्न किया कि प्रासाद क्रम मान से प्रतिमा अथवा लिङ्ग की न्यूनाधिकता को और शाखा स्थान के बारे में कहिए। प्रभु! मुझे इसमें सन्देह है, इसे दूर करिएगा।

विश्वकर्मोवाच —

शृणु वत्स महाप्राज्ञ पृष्टोऽहं पृच्छतेऽपरम्।
अर्चा श्रेष्ठा तथा लिङ्गं निलयांशेऽपराजिता ॥ 19 ॥

विश्वकर्मा बोले कि हे महाप्राज्ञ! समझदार पुत्र! सुनो, तुम्हारा यह प्रश्न बड़ा उत्तम है। प्रतिमा तथा लिङ्ग निलयांश अर्थात् प्रासाद के अंशों के अनुरूप ही हे अपराजित! उचित होते हैं।

मानं न्यूनाधिकं शस्तं स्वयम्भुबाणरत्नजे।
घटितेषु विधिः ख्यातो ह्यर्चालिङ्गेषु तत्त्वतः ॥ 20 ॥

इनमें भी मान स्वयम्भू, बाणज और रत्नज लिङ्ग में न्यूनाधिक प्रशस्त है। इस सम्बन्ध में घटित या कृत्रिम रूप से तैयार लिङ्गों के प्रसङ्ग में विधि कही है, जो अर्चा-लिङ्गों में भी तत्वतः सही है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादविभक्तिद्वारनिर्णयाधिकारो नामैकत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 131 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद विभक्ति द्वार निर्णय अधिकार नामक एक सौ इकतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 131 ॥

द्वारशाखाविभक्तिनिर्णयो नाम द्वात्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम् ॥ 132 ॥[1]

अधुना त्रिशाखद्वारविभक्तिः। विश्वकर्मोवाच —

चतुर्भागाङ्कितं कृत्वा त्रिशाखं वर्त्तयेत्ततः।
मध्ये द्विभागिकं कुर्यात् स्तम्भं पुरुषसञ्ज्ञकम् ॥ 1 ॥

(इस सूत्र में तीन से नौशाखीय द्वारों के विभक्ति नियमों के विषय में कहा जा रहा है। द्वार के निर्माण में विशिष्ट अलङ्करण तीन से लेकर नौ स्तर तक होता है, यहाँ शाखा-विभक्ति से यही आशय है) विश्वकर्मा बोले कि त्रिशाखा के लिए विस्तार में चार भाग करें। मध्य के दो भाग में पुरुष रूपस्तम्भ, माणक स्तम्भ करना चाहिए।

---

1. यह सूत्र ज्ञानप्रकाशदीपार्णव के छठे अध्याय में किञ्चित पाठान्तर के साथ मिलता है।

स्त्रीसञ्ज्ञा च भवेच्छाखा पार्श्वयोः पृथुभागिका।
निर्गमश्चैकभागेन रूपस्तम्भे प्रशस्यते॥ 2॥

रूप स्तम्भ का निर्गम यानी निकास एक भाग का रखें। रूपस्तम्भ के एक ओर (द्वार की ओर) पत्रशाखा और दूसरी और खल्वशाखा— ये दोनों पार्श्वों में बनने वाली शाखा स्त्री संज्ञक है।

पट्टके विस्तरः कार्यः प्रवेशश्चतुरंशतः।
कोणिका स्तम्भमध्ये तु भूषणार्थाय पार्श्वतः॥ 3॥
शाखोत्सेधे चतुर्थांशे द्वारपालौ निवेशयेत्।
कालिन्दी वामशाखायां दक्षिणे चैव जाह्नवी॥ 4॥

रूपस्तम्भ पुरुष संज्ञक पट्ट का विस्तार चार अंश प्रवेश का रखें। कोणिका को स्तम्भ के बीच में रखे और दोनों पार्श्वों के भूषण रूप में शाखा की ऊँचाई के चौथे भाग में द्वारपालों को निवेश करें तथा कालिन्दी यानी यमुना को वाम शाखा पर और गङ्गा को दक्षिणी शाखा पर रखें।

गङ्गाऽर्कतनयायुग्ममुभयोर्वाम-दक्षिणे।
गन्धर्वा निर्गमे कार्या एकभागा विचक्षणैः॥ 5॥
तत्सूत्रे खल्वशाखा च सिंहशाखा च भागिका।

इस तरह गङ्गा-यमुना (अर्क तनया) को दोनों ही बायीं व दक्षिणी शाखा पर रखें। इन पर एक भाग के गन्धर्व बनाएँ। खल्वशाखा और सिंहशाखा एक भाग की एक ही सूत्र में सीध में रखें।

नन्दी च वामशाखायां कालो दक्षलताश्रितः॥ 6॥
यक्षाः स्युरन्तशाखायां निधिहस्ताः शुभादयोः।
इति त्रिशाखं सम्प्रोक्तं पञ्चशाखमतः शृणु॥ 7॥

इति त्रिशाखद्वारम्।

वामशाखा पर नन्दी और काल को दक्षिणी शाखा पर बनाएँ। अन्तरशाखाओं में यक्षों को बनाएँ जिनके हाथों में निधियाँ हो (जैसा कि यक्षों को निधिपति कहा है)। इस प्रकार यहाँ त्रिशाख के बारे में कहा गया। अब पञ्चशाख के बारे में सुनो।

पञ्चशाखद्वारविभक्तिः —

शाखाविस्तारमानं च षड्भिर्भागैर्विभाजयेत्।
एकभागा भवेच्छाखा रूपस्तम्भो द्विभागिकः॥ 8॥

निर्गमश्चैकभागेन रूपस्तम्भे प्रशस्यते।

कोणिका स्तम्भमध्ये च उभयोर्वाम-दक्षिणे॥ 9॥

(पञ्चशाखीय द्वार के लिए) शाखा के विस्तार मान के छह भाग करें। इनमें एक भाग की शाखा, दो भाग का रूप स्तम्भ हो जिसका निकास एक भाग का होगा। स्तम्भ-मध्य के दोनों ओर बाएँ-दाएँ कोणिका की रचना होनी चाहिए।

गन्धर्वा निर्गमे कार्या एकभागा विचक्षणैः।

तत्सूत्रे खल्वशाखा च सिंहशाखा च भागिका॥ 10॥

गन्धर्वों को एक भाग निकास के बनाएँ और खल्वशाखा व सिंहशाखा को एक भाग की एक ही सूत्र, सीध में बनाएँ।

सपादः सार्धभागो वा रूपस्तम्भः प्रशस्यते।

उत्सेधे चाऽष्टमांशेन शस्तं शाखोदरं मतम्॥ 11॥

रूपस्तम्भ सदैव सवाये भाग का अथवा डेढ़ भाग का प्रशस्त होता है। शाखोदर की ऊँचाई आठवें भाग यानी अष्टमांश में प्रशस्त मानी गई है।

पत्रशाखा च गन्धर्वा रूपस्तम्भस्तृतीयकः।

चतुर्थी खल्वशाखा च सिंहशाखा ततःपरम्॥ 12॥

पञ्चशाखमिति ख्यातं सङ्क्षेपात् कथितं मया।

इति पञ्चशाखद्वारम्।

इस प्रकार पहली पत्रशाखा, दूसरी गन्धर्वशाखा, तृतीय रूपस्तम्भ, चौथी खल्वशाखा और इसके बाद सिंहशाखा— इस तरह संक्षेप में मेरे द्वारा पञ्चशाखा के बारे में कहा गया।

सप्तशाखद्वारविभक्तिः —

सप्तशाखं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वमपराजित॥ 13॥

शाखाविस्तरमानं तु वसुभागविभाजितम्।

भागभागाश्च शाखाः स्युर्मध्यस्तम्भो द्विभागिकः॥ 14॥

हे अपराजित! अब पञ्चशाखा के बारे में कहता हूँ जिसे सुनो। इसके लिए शाखा के विस्तार मान को समानतः आठ भागों में विभाजित करें। इसमें से एक-एक भाग की शाखा रखें और रूपस्तम्भ दो भाग का बनाएँ।

कोणिका भागपादेन विस्तारे निर्गमे तथा।

निर्गमः सार्धभागेन रूपस्तम्भः प्रशस्यते॥ 15॥

एक पाद यानी चतुर्थांश से कोणिका का विस्तार करें और निकास में भी चतुर्थांश भाग रखें। रूपस्तम्भ का निकास डेढ़ भाग का रखना प्रशस्त है।

निर्गमो भागमेवं च निर्गमश्च तदर्धतः।
... ... शेषं शाखा प्रशस्यते॥ 16॥

इसके अतिरिक्त इसका निर्गम एक भाग का अथवा उसका आधा भी रखा जा सकता है... शेष शाखा का प्रशस्त है।

पञ्चशाखा च गन्धर्वा रूपशाखा तृतीयका।
स्तम्भशाखा भवेन्मध्ये रूपशाखा तु पञ्चमी॥ 17॥
षष्ठी स्यात् खल्वशाखा च सिंहशाखा च सप्तमी।
प्रासादकर्णसहितं सिहशाखाग्रसूत्रतः॥ 18॥

इति सप्तशाखम्।

इसमें पाँचवीं गन्धर्व शाखा, तीसरी रूपशाखा व स्तम्भशाखा मध्य में होती है और रूपशाखा पांचवीं, छठी खल्वशाखा एवं सातवीं सिंहशाखा जो प्रासाद के कर्ण सहित सिंहशाखाग्र यानी आगे के एक ही सूत्र यानी सीध में होती है।[1]

नवशाखद्वारविभक्तिः —

नवशाखं प्रवक्ष्यामि देवानां दुर्लभं सदा।
यत्र विश्राम्यति शिवः सदा त्रिदशसम्युतः॥ 19॥

अब नौशाखों के बारे में कहता हूँ जो सदा देवताओं को भी दुर्लभ रही है। यहाँ तो शिव विश्राम करते हैं और उनके साथ सदा देवतागण रहते हैं।

शाखविस्तारमानं तु रुद्रभाग$_{11}$ विभाजितम्।
द्विभागः स्तम्भ इत्युक्त उभयोः कोणिकाद्वयम्॥ 20॥
निर्गमः सार्धभागेन पादोनद्वयमेव वा।
रूपस्तम्भद्वयं कार्यं गन्धर्वद्वयमेव च॥ 21॥

---

1. दीपार्णव में भी कहा गया है कि शाखा के विस्तार के आठ भाग करें। सभी छहों शाखाएँ एक-एक भाग की करें परन्तु मध्य का रूपस्तम्भ दो भाग का करें। पहली पत्रशाखा, दूसरी गन्धर्वशाखा, तीसरी रूपशाखा, चौथा रूपस्तम्भ, पाँचवीं रूपशाखा, छठी खल्वशाखा और सातवीं सिंहशाखा जाने। प्रासाद में रेखाओं के बराबर सिंहशाखा समसूत्र में करें—सप्तशाखं प्रवक्ष्यामि वसुभाग विभाजितम्। भागभागश्च शाखाः स्युर्मध्यस्तम्भो द्विभागिकः॥ प्रथमा पत्रशाखा च गन्धर्वारूपशाखिका। चतुर्थी स्तम्भशाखा च रूपशाखा च पञ्चमी॥ षष्ठी तु खल्वशाखा च सिंहशाखा च सप्तमी। प्रासादकर्ण सहिते सिंहशाखा समे सूत्रे॥ (दीपार्णव 6, 24-26)

इसके लिए शाखा के कुल विस्तार को ग्यारह भाग में विभाजित करें। इस स्तम्भ के दो भाग की दोनों ओर दो कोणिका करें जिनका निकास डेढ़ भाग का हो अथवा पौने दो भाग का हो। इसमें रूपस्तम्भ दो बनाएँ और गन्धर्व भी दो बनाएँ।

पत्रशाखा च गन्धर्वा रूपस्तम्भस्तृतीयकः।
चतुर्थी खल्वशाखा च गन्धर्वा इति पञ्चमी॥ 22॥

इसके बाद पत्रशाखा एवं गन्धर्वशाखा तीसरी तथा खल्वशाखा चौथी और गन्धर्वशाखा पाँचवीं होती है।

रूपस्तम्भस्तु षष्ठी स्यात् रूपशाखा ततः परा।
खल्वशाखा चाष्टमी स्यात् सिंहशाखा तथान्तिमा॥ 23॥

रूपस्तम्भ छठी और रूपशाखा इसके बाद सातवीं होती है। खल्वशाखा आठवीं और सिंहशाखा अन्तिम यानी नवमी होती है।

पट्टके विस्तरः कार्यः प्रवेशश्चतुरंशतः।
पञ्चांशैश्च प्रकर्तव्यः सार्धचतुष्कतस्तथा॥ 24॥

पट्टक का विस्तार प्रवेश में चार अंश का करें। इसे पाँच भाग का अथवा साढ़े चार भाग का भी रख सकते हैं।

एवं च नवशाखं तु विभक्तं विश्वकर्मणा।
नवाङ्गे चैव प्रासादे नवशाखास्तु कारयेत्॥ 25॥

इति नवशाखद्वारम्।

इस तरह विश्वकर्मा[1] के द्वारा नवशाखा द्वारशाखा का विभाजन किया गया। नवाङ्ग यानी नौ अङ्ग के प्रासाद का द्वार भी नवशाखा का ही करें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
द्वारशाखाविभक्तिनिर्णयोधिकारो नाम द्वात्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 132॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में द्वारशाखा विभक्ति निर्णय अधिकार नामक एक सौ बत्तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 132॥

---

1. बहुत सम्भव है कि यहाँ ग्रन्थकार भुवनदेव के लिए कोई विश्वकर्मीय ग्रन्थ उपस्कारक रहा हो। वैसे यह वर्णन समराङ्गणसूत्रधार में आया है जहाँ अधिकतम नौ द्वारशाखा करने का निर्देश है— क्रमेणानेन कर्तव्याः शाखाः स्वल्पा यदृच्छया। न नवभ्यः परं कार्या द्वारशाखाः कथञ्चन॥ (समराङ्गण. 54, 18) विश्वकर्माकृत ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में भी यह वर्णन मिलता है। परवर्ती ग्रन्थ दीपार्णव में यह भी आया है कि शाखा की ऊँचाई के चौथे भाग का द्वारपाल (दायीं शाखा में) करें। उभयपार्श्व में यमुना और गङ्गा के स्वरूप भी कर सकते हैं। उसके दोनों ओर चामरधारी के स्वरूपों का बनाएँ। उसके ऊपर दण्ड के साथ कमल से शोभित शाखाएँ बनाएँ— वेदांशे द्वारपालाश्च गङ्गायमुनयोस्तथा। परे चामरधारी च ऊर्ध्वे मृणालभूषितम्॥ (दीपार्णव 6, 32)

प्रासादद्वारप्रतिहारानुक्रमो नाम त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 133॥

अधुना शिवायतने द्वारदेवताः प्रतिहारक्रमश्च। विश्वकर्मोवाच —

नन्दी चैव महाकालो हेरम्बो भृङ्गी एव च।
दुर्मुखः पाण्डुरश्चैव सितश्चाऽसित एव च॥ 1॥
वेदांशा द्वारपालाः स्युर्गङ्गायमुनान्यूनतः।
तत्परे चामरधरा ऊर्ध्वं मृणालभूषिताः॥ 2॥

(इस सूत्र में प्रासादों के द्वार पर प्रतिहार या पहरुओं की स्थिति के विषय में कहा जा रहा है। जिस-जिस देवता का जो-जो देवालय हो, वहाँ उसी-उसी देव के द्वारदेवता स्थापित किए जाएँगे) विश्वकर्मा बोले कि शिवालय के द्वारदेवताओं में (पूर्वादि क्रम से) नन्दी, महाकाल, हेरम्ब, भृङ्गी, दुर्मुख, पाण्डुर, सित और असित— ये द्वारपाल होते हैं जो चार भाग प्रमाण से गङ्गा-यमुना के नीचे की ओर होते हैं। वे चामर लिए हुए और कमल से भूषित तत्पर, सदा तत्पर दिखाई देते हैं।[1]

पद्मपत्रं सुशोभाढ्यं स्तम्भं चैवेल्लिकान्वितम्।
मृणालैर्भूषयेदूर्ध्वं कुर्यात्कन्दस्य बाह्यतः॥ 3॥
कन्दवेधं यदा कुर्य्युस्तदा कुप्यन्ति देवताः।
समूलांश्च विनश्यन्ति कर्तृकावरकांस्तथा॥ 4॥

इसी प्रकार पद्मपत्र की शोभा से भरपूर स्तम्भ इल्लिका की खुदाई से युक्त हो। इसके ऊपर कमल के भूषण करें जो कन्द के बाहर की ओर हों। ध्यान रहे कि यदि कन्दवेध होता है तो देवता कुपित होते हैं और उससे प्रासाद के कर्ता व कारीगरों का समूल ही विनाश हो जाता है।

शाखास्यानुक्रमेणैव क्रमात्पट्टोत्तरङ्गयोः।
रूपस्तम्भद्वयं चैव कण्ठकूटसमन्वितम्॥ 5॥

शाखा के प्रमाण के अनुसार ही क्रम में पट्ट और उतरङ्ग बनाएँ। उनको तथा

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में इन प्रतिहारों के दिशा व स्वरूपों का वर्णन आया है— मातुलिङ्ग च नागेन्द्रं डमरुं चाक्षसूत्रकम्। नन्दी मुकुटशोभाढ्यः सर्वाभरणभूषितः॥ खट्वाङ्गं च कपालं च डमरुं बीजपूरकम्। दंष्ट्राकराल वदनं महाकालं तु दक्षिणे॥ तर्जनी च त्रिशूलं च डमरुं गजमेव च। हेरम्बो वामभागे स्याद् भृङ्गीं दक्षिणतः शृणु॥ गजं डमरुखट्वाङ्गं तर्जनीं वामहस्तके। उभौ च दक्षिणे द्वारे भृङ्गी दक्षिणतः शुभः॥ त्रिशूलं डमरुं चैव खट्वाङ्गं च कपालकम्। कपालं डमरुं दण्डं बीजपूरं तथा दधत्॥ दुर्मुखः पश्चिमे वामे पाण्डुरो दक्षिणे तथा। मातुलिङ्गं मृणालं च खट्वाङ्गं पद्मदण्डकम्॥ सितश्चैवोत्तरे द्वारे वामे चैव व्यवस्थितः। पद्मदण्डं च खट्वाङ्गं मृणालं बीजपूरकम्। असितो दक्षिणे भागे उत्तरे द्वार एव च॥ (देवता. 6, 161-167) किञ्चित् प्रकारान्तर से यह वर्णन अपराजित. में भी आगे आया है।

दोनों रूपस्तम्भ भी कण्ठकूट समन्वित हो।

वृषस्थं शङ्करं विद्याद् ब्रह्माणं हंससंस्थितम्।
विष्णुं च गरुडारूढं श्रीकण्ठं नृत्यसंस्थितम्॥ 6॥

इति शिवायतने द्वारदेवता:।

(ताकों आदिकों में) देवस्वरूपों में शङ्कर को वृषभ पर, ब्रह्मा को हंस पर और विष्णु को गरुड़ पर आरुढ़ बनाएँ और श्रीकण्ठ को नृत्य मुद्रा में संस्थित करें।

विष्णवायतने द्वारदेवता: प्रतिहारक्रमश्च —

शङ्खचूड: प्रचण्डश्च जयश्च विजयस्तथा।
धाता चैव विधाता च सुभद्रो भद्र एव च॥ 7॥

विष्णुप्रासाद हो तो (पूर्वादि क्रम से) शङ्खचूड़, प्रचण्ड, जय, विजय, धाता, विधाता, सुभद्र और भद्र प्रतिहार बनाएँ।[1]

दक्षिणोत्तरक्रमेण गङ्गा च यमुना स्थिते।
उत्तरङ्गे भवेल्लक्ष्मी: क्षेत्रपाला उदुम्बरे॥ 8॥

इनके दक्षिणोत्तर क्रम में गङ्गा-यमुना को स्थित करें। उतरङ्ग में लक्ष्मी और उदुम्बर पर क्षेत्रपाल उत्कीर्ण करें।

कण्ठके मातर: कार्या ग्रहास्त्रिपुरुषस्तथा।
वासुदेवादिभेदांश्च द्वारेषु परिकल्पयेत्॥ 9॥

कण्ठक में मातृदेवियों तथा स्त्री-पुरुष, ग्रहों के करें। द्वारों पर वासुदेवादि भेदों से युक्त चतुर्व्यूह की कल्पना करें।

वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नं चानिरुद्धकम्।
चतुर्युगप्रभेदेषु द्वारेषु परिकल्पयेत्॥ 10॥

इस क्रम में वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को कृतादि चारों युगों के भेद के अनुसार द्वार पर परिकल्पित करें।

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में नाम और दिशाक्रम पूर्वादि से क्रमश: चण्ड, प्रचण्ड, जय, विजय, धाता, विधाता, भद्र व सुभद्र— इस प्रकार आया है। ये सब वामन आकार वाले शुभ होते हैं— प्रतीहारांस्ततो वक्ष्ये अष्टो चतुर्षु दिक्षु च। तस्यानुक्रमरूपं च लक्षयेद् यस्य यादृशम्॥ वामनाकाररूपाश्च कर्त्तव्या: सर्वत: शुभा:। तर्जनीं शङ्खचक्रं च दण्डं प्राग्दक्षिणक्रमात्॥ चण्डाभिधानक: प्रोक्तोऽस्यापसव्ये प्रचण्डक:। वामे चण्ड: प्रकर्तव्य: प्रचण्डो दक्षिणे तथा॥ पद्मखड्गं खेटकं च गदां तेषु प्रदक्षिणे। विलोमै: पद्मगदयोर्जयो विजय दक्षिणे। तर्जनीं बाणचापं च गदां तेषु प्रदक्षिणा। गदाऽपि सव्यत: कुर्याद् धाता तस्माद् विधातृक:॥ तर्जनीं पद्मशङ्खं च गदा तेषु प्रदक्षिणा। सव्यापसव्ययोगेन सुभद्रो भद्र एव च॥ (देवता. 5, 110-115)

येषां परिकरा ये स्युस्तांस्तद्द्वारेषु कल्पयेत्।
भवेयुः सुखदा नित्यं कर्तुश्चावरकस्य तु॥ 11॥

इति विष्ण्वायतने द्वारदेवता।

इस प्रकार इन द्वारदेवताओं को परिकर पर सम्बन्धित देव यानी विष्णु के ही द्वारों पर परिकल्पित करें। इसी से ये प्रासाद के कर्ता और काम करने वाले शिल्पियों के लिए भी नित्य सुख देने वाले होते हैं।

ब्रह्मायतने द्वारदेवता: —

सत्यो धर्मः क्रमो जयो विजयो यज्ञभद्रकः।
भवश्च विभवश्चैव ब्रह्मणः प्रतिहारकाः॥ 12॥

(ब्रह्मा के मन्दिर में पूर्वादि के क्रम से) सत्य, धर्म, क्रम, जय, विजय, यज्ञभद्रक, भव और विभव— ये ब्रह्मा के प्रतिहार कहे गए हैं।[1]

ऋषीणामाश्रयः कार्यो देवतानां तु पार्श्वतः।
चतुर्वेदसमायुक्तं ब्रह्माणं सर्वशान्तिदम्॥ 13॥

इति ब्रह्मायतने द्वारदेवता:।

देवताओं के पार्श्व भाग में ऋषियों का आश्रय बनाएँ। यह ज्ञातव्य है कि ब्रह्मा सदैव चारों वेदों के साथ हो तो सर्व शान्तिदायक है।

सूर्यायतने द्वारदेवता: —

दण्डी च पिङ्गलश्चैव आनन्दश्चान्तकस्तथा।
चित्रो विचित्रो ज्ञातव्यः किरणाक्षः[2] सुलोचनः॥ 14॥
भास्करस्य समाख्याता अष्टैते प्रतिहारकाः।
पूर्वदिक्क्रमतः प्रोक्ताः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्॥ 15॥

(सूर्य के प्रासाद में) दण्डी, पिङ्गल, आनन्द, अन्तक, चित्र, विचित्र, किरणाक्ष और सुलोचन—ये आठों प्रतिहार सूर्यदेव के हैं। ये द्वारदेवता पूर्व दिशा से प्रदक्षिणा

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में सत्य, धर्म, प्रियोद्भव, जय, विजय, यज्ञभद्र, भव और विभव— ये पूर्वादि क्रम से प्रतिहार बताए गए हैं। ये पुरुषाकार, गम्भीर स्वभाव वाले, दाढ़ी-मूँछ वाले व मुकुटधारी होते हैं— ब्रह्मणोऽष्टौ प्रतीहाराः कथयिष्याम्यनुक्रमात्। पुरुषाकारगम्भीराः सकूर्चा मुकुटोज्ज्वलाः॥ पद्मं स्रुचाक्षरं दण्डं सत्यनामा तु वामतः। सव्यापसव्ययोगेन पद्मं दण्डश्च धर्मकः॥ अक्षं पद्मागमौ दण्डं करैर्धत्ते प्रियोद्भवः। दण्डागमस्रुचाफलैर्जयः स्यात् सर्वकामदः॥ अक्षसूत्रं गदाखेटं दण्डश्च विजयनामकः। अधोहस्तापसव्येन खेटकोः यज्ञभद्रकः॥ अक्षपाशाङ्कुशान् दण्डो भवः स्यात् सर्वकामदः। दण्डाङ्कुशपाशोत्पलं विभवः सर्वकामदः॥ (देवता. 4, 16-20)
2. '**ज्ञातव्याः किरणाख्यः**' इति प्रकाशित पाठः। (तुलनीय—देवता. 4, 40)

क्रम में होते हैं।[1]

भास्करेषु द्वादशसु एषां कार्याश्च मूर्तयः।
सुप्रशस्ताः परिकराः शान्तिदाः सर्वकामदाः॥ 16॥

इति सूर्यायतने द्वारदेवताः।

सभी बारह सूर्यों[2] के लिए इनकी मूर्तियाँ करनी चाहिए। ऐसे परिकर प्रशस्त हैं और सभी कामनाओं को पूरी करने वाले एवं शान्ति देने वाले होते हैं।

गणेशायतने द्वारदेवताः —

अविघ्नो विघ्नराजश्च सुवक्त्रो बलवानथ।
गजकर्णश्च गोकर्णः सुसौम्यः शुभदायकः॥ 17॥

(गणेश के मन्दिर में पूर्वादि के क्रम से) अविघ्न, विघ्नराज, सुवक्त्र, बलवान, गजकर्ण, गोकर्ण, सुसौम्य और शुभदायक (संज्ञक द्वारदेवता हैं।)[3]

दिग्द्वारस्था युग्मतश्च एते विघ्नविनाशनाः।
इत्यष्टा च गणेशस्य प्रतिहाराः शुभप्रदाः॥ 18॥

इति गणेशायतने द्वारदेवताः।

ये दिशाओं के द्वारस्थ-युग्म विघ्नविनाशक हैं। ये आठों प्रतिहार गणेश के शुभ फलदायी हैं।

गौर्यायतने द्वारदेवताः —

जया च विजया चैव अजिता त्वपराजिता।

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में कहा गया है कि सुख-शान्ति को चाहने वालों को इन आठों द्वारपालों की मूर्तियाँ पुरुषाकार बनवानी चाहिए और पूर्वादि क्रम से चारों द्वारों पर स्थापित करनी चाहिए। इनका स्वरूप निम्नानुसार होगा— सर्वे च पुरुषाकाराः कर्त्तव्याः शान्तिमिच्छता। चतुर्द्वारेषु च स्थाप्या दिशाश्चैव प्रदक्षिणे॥ प्रतर्जन्यूर्ध्वकिरणं ताम्रचूडं दण्डायुधम्। दण्डी वामविभागे तु पिङ्गलः स्यादतः शृणु॥ किरणे तु यदा शक्तिः किरणं ताम्रचूडके। तर्जनी दण्डपूर्वं च पिङ्गलः पूर्वदक्षिणे॥ तर्जन्यौ द्वे वज्रदण्डौ दधानाऽऽनन्दकः स्मृतः। तर्जनीदण्डापसव्यं स भवेदन्तकः शुभः॥ द्वे तर्जन्यौ पद्मदण्डौ चित्रो धत्ते स वामतः। तर्जनी दण्डापसव्ये विचित्रो दक्षिणे स्थितः॥ तर्जन्यौ किरणं दण्डं किरणाक्षस्तु धारयेत्। तर्जनीदण्डापसव्ये कर्त्तव्यः स सुलोचनः॥ (देवता. 4, 41-46)
2. देवतामूर्तिप्रकरणं में बारह सूर्यों के नाम इस प्रकार आए हैं— धाता मित्रोऽर्यमारुद्रो वरुणः सूर्य एव च। भगो विवस्वान् पूषा च सविता त्वष्ट्रविष्णुकौ॥ (देवता. 4, 34)
3. देवतामूर्तिप्रकरणं में इनके नाम व दिशादि का वर्णन इस प्रकार आया है— सर्वे च वामनाकाराः पुरुषाननसौम्यभाः। तर्जनी परशुं पद्ममविघ्नो दण्डहस्तकः॥ तर्जनीदण्डापसव्ये सभवेत् विघ्नराजकः। तर्जनीखड्गवरदं दण्डहस्तः सुवक्त्रकः॥ तर्जनीदण्डापसव्ये बलवन्तक दक्षिणे। तर्जनीं बाणचापं च दण्डं च गजकर्णकः॥ तर्जनीदण्डापसव्ये गोकर्णाकृतिपश्चिमम्। तर्जनी पद्माङ्कुशं च दण्डहस्तः सुसौम्यकः॥ तर्जनीदण्डापसव्ये च चैव शुभदायकः। पक्षद्वारादिके सर्वे अष्टौ चैव शुभावहः॥ (देवता. 8, 33-37)

विभक्ता मङ्गला कार्या मोहिनी स्तम्भिनी तथा ॥ 19 ॥

(गौरी के मन्दिर में पूर्वादि के क्रम से) जया, विजया, अजिता, अपराजिता, विभक्ता, मङ्गला, मोहिनी और स्तम्भिनी संज्ञक द्वारदेवता (प्रतिहारिका) हैं।[1]

कर्तव्याश्चेच्छता शान्तिमित्यष्टौ प्रतिहारिकाः ।
गौर्यादिनवमूर्तीनां कुर्यात्परिकरांस्तथा ॥ 20 ॥

इति गौर्यायतने द्वारदेवताः ।

जो शान्ति चाहते हैं, उन्हें ये आठों प्रतिहार गौर्यादि नव मूर्तियों के परिकर स्वरूप में करने चाहिए।

चण्डिकायतने द्वारदेवताः —

वैतालः करटश्चैव पिङ्गाक्षौ भृकुटिस्तथा ।
धूम्रकः कङ्कदश्चैव रक्ताक्षश्च सुलोचनः ॥ 21 ॥

(चण्डिका के प्रासाद में पूर्वादि के क्रम से) वैताल, करट, पिङ्गाक्ष, भृकुटी, धूम्रक, कङ्कद, रक्ताक्ष और सुलोचन (प्रतिहार होंगे)।

इत्यष्टौ प्रतिहाराश्च चण्डिकाज्ञाकरास्सदा ।
उक्तो द्वारक्रमश्चेति शस्तः परिकरे सदा ॥ 22 ॥

इति चण्डिकायतने द्वारदेवताः ।

ये आठों प्रतिहार सदा चण्डिका की आज्ञा में रहने वाले हैं। अतः इनको द्वारक्रम में परिकर स्वरूप प्रशस्त माना गया है।

जिनेन्द्रायतने द्वारदेवताः —

हरादिवीतरागान्तं देवानां क्रमयोगतः ।
अष्ट$_{8}$ षोडश$_{16}$ द्वात्रिंश$_{32}$च्चतुःषष्टिमेव$_{64}$ च ॥ 23 ॥

हर अर्थात् महादेव से लेकर वीतराग यानी तीर्थङ्कर तक के देवों के क्रमयोग आठ, सोलह, बत्तीस और चौंसठ होते हैं।

इन्द्रश्चेन्द्रजयश्चैव महेन्द्रो विजयस्तथा ।
धरणेन्द्रः पद्मकश्च सुनाभः सुरदुन्दुभिः ॥ 24 ॥

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में इनका दिशा क्रम व स्वरूप इस प्रकार आया है— अभयाङ्कुशपाशदण्डं जया चैव तु पूर्वतः। सव्यापसव्ययोगेन विजया नाम सा भवेत्॥ अभयाम्बुजपाशदण्डमजितासव्येऽपराजिता। अभयवज्राङ्कुशदण्डं विभक्तासव्ये मङ्गला॥ अभयं शङ्खपद्मदण्डं मोहिनी नाम वामतः। सव्यापसव्ययोगेन सा भवेत् स्तम्भिनी तथा॥ जया च विजया चैव अजिता चापराजिता। विभक्ता मङ्गला चैव मोहिनी स्तम्भिनी तथा॥ गौर्याऽऽयतने शस्ताश्च सृष्ट्यष्टौ द्वारपालिका:॥ (देवता. 8, 18-21)

(जिनालयों में पूर्वादि क्रम से) इन्द्र, इन्द्रजय, महेन्द्र, विजय, धरणेन्द्र, पद्मक, सुनाभ और सुरदुन्दुभि (संज्ञक प्रतिहार होंगे)।

इत्यष्टौ$_8$ प्रतिहाराश्च वीतरागेऽति शान्तिदाः।
अनुक्रमेण संस्थाप्याः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्॥ 25॥

ये आठों प्रतिहार वीतराग के शान्तिदायक होते हैं। इनको पूर्व दिशा से यानी प्रदक्षिण क्रम में स्थापित करना चाहिए।[1]

लाञ्छनं सिंहासनं च चामरं कुसुमाञ्जलिः।
प्रभामण्डलाशोकाश्च दुन्दुभिश्च्छत्रकत्रयम्॥ 26॥

इनमें विशिष्ट लाञ्छन, सिंहासन, चामर, कुसुमाञ्जलि, प्रभामण्डल, अशोक द्रुम, दुन्दुभि, तीन छत्रक (ये लक्षण होंगे)।

वीतरागेऽतिविख्याता देवानां तु प्रतिक्रमाः।
यक्षशासनदेवीश्च कुर्यादुभयपार्श्वतः॥ 27॥

इति जिनेन्द्रायतने द्वारदेवताः।

ये सब वीतराग के विख्यात देवता प्रतिक्रम हैं। यक्ष, शासनदेवियों को भी इनके उभय पार्श्व यानी दोनों बाजू में बनाने चाहिए।[2]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादद्वारप्रतिहारानुक्रमाधिकारो नाम त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्। 133॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रासाद द्वार प्रतिहार अनुक्रम अधिकार नामक एक सौ तैंतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 133॥

---

1. देवतामूर्तिप्रकरणं में यही मत आया है— इन्द्र इन्द्रजयश्चैव माहेन्द्रो विजयस्तथा॥ धरणेन्द्रो पद्मकश्च सुनाभः सुरदुन्दुभिः। इत्यष्टौ तु प्रतिहारा वीतरागे तु शान्तिदाः॥ फलवज्राङ्कुशं दण्डमिन्द्रोऽपसव्ये इन्द्रजयस्तथा। द्वौ वज्रौ फलदण्डं तु माहेन्द्रोऽपसव्ये विजयस्तथा॥ तदायुधयोगोद्भवास्त्रिपञ्चाद्रिफणोर्ध्वगाः। धरणेन्द्रः पद्मकश्च सर्वशान्तिकरौ स्मृतौ॥ यक्षरूपाविकाराश्च निधिहस्ताः शुभोदयाः। सुनाभो दुन्दुभिश्चैव सर्वे शान्तिप्रदायकाः॥ इत्यष्टो च प्रतीहारा जिनेन्द्रस्य च शान्तिदाः। नगरादिपुरग्रामे सर्वविघ्नप्रणाशनाः॥ (देवता. 7, 71-75)
2. यह वर्णन ग्रन्थ में आगे आया है। इसके लिए देवतामूर्तिप्रकरणं भी द्रष्टव्य है।

देवतादिग्भागमुखद्वारदोषो नाम चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 134॥

अधुना देवता दिग्मुखं। विश्वकर्मोवाच —

यतो मुखश्च यो देवो यथा वै यत्र पश्यति।
तदहं कथयिष्यामि दृष्ट्वा शास्त्रार्थनिश्चयम्॥ 1॥

(इस सूत्र में प्रासाद में दिशानुसार देवताओं की स्थिति बताई गई है) विश्वकर्मा ने कहा कि जिस देवता का मुख जिधर होता है, उधर ही वह देखता है। इसी को मैं शास्त्र के अर्थ के अनुसार निश्चय करके कहता हूँ।

नोत्तराभिमुखाः कार्या न देवा दक्षिणामुखाः।
आदिदिशोन्मुखः कार्य आदिदेवो दिवाकरः॥ 2॥

देवताओं को कभी भी न तो उत्तराभिमुख करें और न दक्षिणाभिमुख करें। आदि दिशोन्मुख यानी पूर्व दिशा की ओर मुख रखे हुए आदिदेव सूर्य को रखना चाहिए।

चतुर्दिशामुखो ब्रह्मा कार्यो वा पूर्वदिङ्मुखः।
शम्भुर्बाणस्तथा घाट्यो मुखलिङ्गं सनातनम्॥ 3॥
व्यक्ताव्यक्तरूपकश्च विश्वेशः सर्वदिङ्मुखः।
सर्वत्र सर्वतोभद्रश्चतुर्द्वारः शिवालयः॥ 4॥

ब्रह्मा को चारों दिशा की ओर मुख किए हुए बनाए अथवा (प्रधानतः) पूर्व दिशा की ओर मुख किए हुए बनाए। शम्भुलिङ्ग, बाणलिङ्ग, घाट्यलिङ्ग, मुखलिङ्ग, सनातन, व्यक्त, अव्यक्त रूप के विश्वेश शिव को सभी दिशाओं की तरफ मुख किए हुए बना सकते हैं। सर्वत्र शिवालय सर्वतोभद्र अर्थात् चार द्वार का बनाया जा सकता है।

मूर्तिभेदेन यो ज्ञेयश्चतुर्द्वारः प्रकीर्तितः।
होमशाला च कर्तव्या चतुर्द्वारोपशोभिता॥ 5॥[1]

मूर्तिभेद के अनुसार ही जानकर चार द्वार कहे गए हैं। इसी तरह होमशाला को भी चार द्वारों से शोभित बनाना चाहिए।

यक्षराजं रममाणं विदुर्दक्षिणदिङ्मुखम्।
पूर्वापरमुखा ये च वक्ष्यन्ते ते यथार्थतः॥ 6॥

यक्षराज को विद्वान् शिल्पी दक्षिणमुखी बनाते हैं तथा इनको पूर्व और पश्चिम मुखी बनाने का जो कहते है, वे भी ठीक ही कहते हैं।

---

1. दीपार्णव में इसके बाद निम्न श्लोकांश अतिरिक्त है—यज्ञमण्डपवेदीषु चतुर्द्वारः प्रकीर्तितः॥ (दीपार्णव 7, 5)

ब्रह्मा विष्णुः शिवः सूर्य इन्द्रस्कन्धहुताशनाः।
पूर्वापरमुखा ह्येते वास्तुशास्त्रेषु कीर्तिताः ॥ 7 ॥

इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, हुताशन यानी अग्नि आदि को पूर्व और पश्चिम मुखी बनाना (स्थापन) वास्तुशास्त्रों में वर्णित है।[1]

गणेशश्चैव नागेशः क्षेत्रपो भैरवस्तथा।
धनाध्यक्षश्च गन्धर्वा ग्रहमातृगणास्तथा ॥ 8 ॥
नकुलीश्च चण्डीशः कार्या दक्षिणदिङ्मुखाः।

गणेश, नागेश, क्षेत्रपाल, भैरव, धनाध्यक्ष कुबेर, गन्धर्व, ग्रहदेव, मातृगण, नकुलीश, चण्डी— इन सबको दक्षिण मुखी बनाना चाहिए।

एवं विदिङ्मुखाः कार्या नान्ये चैव दिवौकसः ॥ 9 ॥
नैर्ऋत्याभिमुखः स्थाप्यो हनूमान्बलबुद्धिमान्।

इस तरह की दक्षिण मुखी अन्य देवताओं की मूर्तियाँ नहीं बनानी चाहिए। बल-बुद्धिमान् हनुमान की स्थापना नैर्ऋत्य दिशाभिमुख करनी चाहिए।

रौद्र एकादशो रुद्रो राक्षसक्षयकारकः ॥ 10 ॥
ऊर्ध्वमूलमधोऽग्रं च विलोमं द्वाःकपाटकम्।
वरुणोत्तरपूर्वेण स्थित्वा चैव [2]सुखावहा ॥ 11 ॥

इसके अतिरिक्त एकादश रुद्रों को जो कि राक्षसों का क्षय करने वाले है, ऊर्ध्वमूल और अधो अग्र तथा विलोम दो कपाटयुक्त वरुण के उत्तर-पूर्व में स्थित करना सुखदायक है।

तथा याम्यामुखं द्वारं कर्तव्यं शास्त्रपारगैः।
देवाश्च द्वाराभिमुखा इति शास्त्रार्थनिश्चयः ॥ 12 ॥

इनके दक्षिण मुखी द्वार शास्त्र के जानकार पण्डितों ने बताया है और इनके देवता भी द्वाराभिमुखी हो, ऐसा शास्त्र में निश्चय किया गया है।

दक्षिणोत्तरामुखेन प्राच्यां वै वरुणे तथा।
वीतरागस्य प्रासादः पुरमध्ये सुखावहः ॥ 13 ॥

वीतराग का प्रासाद नगर के मध्य में दक्षिण, उत्तर, पूर्व व पश्चिम— किसी भी

---

1. यहाँ ग्रन्थकार ने निश्चित ही अन्यान्य वास्तुशास्त्रों का उल्लेख किया है। ज्ञानप्रकाशदीपार्णव, जयपृच्छादि में यह विषय रहा है। दीपार्णव में सातवाँ अध्याय अत्यल्प पाठान्तर के साथ यही है। देवतामूर्तिप्रकरणं मूलतः जयपृच्छा का ही अंशभूत माना जाता है। उसमें भी यह नियम आया है।
2. 'सुखास्त्रतः ?॥' इति प्रकाशित पाठः। दीपार्णवे— 'सुशास्त्रतः।' (7, 12)

दिशाभिमुख बनाना सुखावह होता है।

प्रशस्तं च समुत्सेधे [1]गृहस्यार्धभूरङ्गिका ?।
श्रियं शान्तिमीप्सितं **च** कर्तृकावरकावुभौ ॥ 14 ॥

इति देवतादिग्मुखम्।

इनके गृह के आधे के बराबर ऊँचाई पर भूरङ्गिका प्रशस्त कही गई है। जो भी श्रिय और शान्ति चाहते हों, उन्हें यह करना चाहिए।

इत्यमनन्तर मुखद्वारदोषा: —

उक्तमानाधिकं **द्वारं** धनधान्यविनाशकम्।
हीनं पीडां प्रकुरुते वलितं शत्रुविग्रहम् ॥ 15 ॥

सामान्यतः इन निर्दिष्ट द्वारों से अधिक मान के द्वार बनाने से धन-धान्य का विनाश होता है और इनको कम मान के बनाने पर पीड़ा, कमजोरी और शत्रुविग्रह होते हैं।

मृत्युदं चाधोविपुलं पूजाहानिकृदूर्ध्वतः।
यवमध्यसमं द्वारं सदा स्यात्कलिकारकम् ॥ 16 ॥

जो द्वार नीचे से बड़ा हो वह मृत्युदाता होता है और जो द्वार ऊपर से बड़ा हो उससे पूजा में हानि होती है। यवमध्य के समान (बीच में चौड़ा) बनने वाला द्वार सदैव कलहकारक होता है।

स्त्रीरोगकृन्न्यूनशाखं मध्यस्तम्भस्य मानतः।
हीनं पीडां प्रकुरुते अधिकं च धनक्षयम् ॥ 17 ॥

न्यूनशाखा का द्वार स्त्री के लिए रोगकारक होता है। जो मध्य स्तम्भ के मान से हीन है, वह पीड़ाकारी है और जो अधिक है उससे धनक्षय होता है।

दारुजे तु विलोमे च पूजाहानिर्धनक्षयः।
विपरीतं कपाटं तु सदा स्यात्कलिकारकम् ॥ 18 ॥

दारुज यानी काष्ठ का विलोम (विपरीत जातियों के काष्ठों से तैयार) हो तो पूजा हानि और धन का क्षयकारक है। विपरीत कपाट वाला तो सदा कलह या झगड़े कराने वाला होता है।

---

1. 'गृहस्यार्धभूरङ्गका ?' इति प्रकाशित पाठः।
उक्त श्लोक ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में भी आए हैं— प्रशस्तं च समुत्सेधे गृहस्यार्धभूरंगिका। श्रियं शान्तिमीप्सितं च कृर्त्तः कारयितुस्तथा॥ (दीपार्णव 7, 17) उसके सम्पादक की टिप्पणी है कि भूरङ्गिका की प्रथा उत्तर भारत में प्रचलित रही है।

तथोर्ध्वमूलाधोग्रा च विलोमा द्वाःकपाटिका।
भ्रमच्छब्दकपाटं च कलिकृद्विपरीतकम्॥ 19॥

इसी तरह ऊपर को मूल हो जाए और नीचे से आगे निकल जाए और दोनों किंवाड़ विलोम हो. भ्रम विपरीत हो, कर्कश ध्वनि करने वाले किंवाड़ हो तो कलह को करने वाले होते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां देवतादिग्भागमुखद्वारदोषाधिकारो नाम चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 134॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में देवता दिग्भाग मुख द्वारदोष अधिकार नामक एक सौ चौतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 134॥

देवतापदसंस्थानो नाम पञ्चत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 135॥

अधुना प्रासादगर्भमण्डलं। विश्वकर्मोवाच —

प्रासादानां समस्तानां विभक्तिर्गर्भभित्तितः।
गर्भमध्ये सर्वतश्च देवताः क्रमतः स्थिताः॥ 1॥

(इस सूत्र में प्रासाद में स्थापित होने वाले देवताओं के पद स्थान के विषय में कहा जा रहा है। ज्ञानप्रकाशदीपार्णव के आठवें अध्याय में भी यह नियम आया है और बहुत सम्भव है कि जयपृच्छा में भी यह विषय रहा हो) विश्वकर्मा बोले कि सभी प्रकार के प्रासादों की गर्भभित्ति के अनुसार गर्भ के मध्य में सभी देवता क्रमानुसार ही स्थित होते हैं।

चतुरश्रे आयते च वृत्ते वृत्तायते तथा।
अष्टाश्रे च तथा प्रोक्तो गर्भः प्रासादरूपतः॥ 2॥

सामान्यतः प्रासादों के गर्भ का रूप चतुरश्र (चौकौर), आयत (लम्ब चौकोर), वृत (गोलाकार), वृत्तायत (लम्बगोल) तथा अष्टाश्र (आठ भुज) का होता है।

ब्रह्मस्थानादिगर्भं च भित्तिपर्यन्तमेखलम्।
मण्डलं भवनाकारं विभक्तिक्रमच्छन्दतः॥ 3॥

आदिगर्भ के ब्रह्मस्थान अर्थात् केन्द्र से भित्तिपर्यन्त मेखला होती है। इस मेखला से बनने वाले मण्डल से विभक्ति क्रमछन्द से भवन का आकार बनता है।

अष्टाविंशतिसङ्ख्याकं$_{28}$ मध्यगर्भानुरूपतः।
क्रमादेकैकदेवानां निवासो मण्डले स्थितिः॥ 4॥

इस मण्डल में मध्यगर्भ के अनुरूप से क्रमानुसार एक-एक देवता का निवास होता है जिससे मण्डल में इनकी स्थिति की संख्या 28 बनती है।

तस्याष्टाविंशतिभागेषु पृथक् पृथक् प्रतिमापादसंस्थानम् —

प्रथमं मण्डलं चैव यद्भवेद् गर्भमध्यतः।
शिवस्य परमं स्थानं तन्मेरोरिव मध्यतः॥ 5॥

इसमें गर्भमध्य से जो पहला मण्डल बनता है वह शिव का परम स्थान कहा गया है और वह मेरुपर्वत की तरह मध्य में रहता है।

यवैर्यवार्द्धैस्तु किञ्चित् कुर्यादीशानमाश्रितम्।
समस्तैव मण्डलार्धं ततः सूत्रेण देवताः॥ 6॥

इसको एक यव के अथवा आधे यव के प्रमाण से मध्य से हटकर ईशान कोण की ओर बनाना चाहिए। समस्त मण्डलों के आधे से सूत्र में, सीध में अन्य देवताओं को स्थित करें।

पादपद्माग्रसंस्थाने स्वकीयपदमध्यतः।
पदस्य गर्भसंस्थाने पार्श्वगर्भाद्यादिकम् ?॥ 7॥

उनके चरण कमलों के संस्थान उनके ही चरणों के मध्य से पद का गर्भ संस्थान तथा पार्श्व गर्भादिक का संस्थान करें।

कर्णपिप्पिलिकासूत्रं भुजगर्भे तु संस्थितम्।
पादगुल्फगर्भसूत्रे पदगर्भेषु देवता॥ 8॥

उनके कानों के पिप्पलिका सूत्र को उनकी भुजा के गर्भ में रखें। इसी तरह उनके चरणों के गुल्फ यानी टखनों के गर्भसूत्र में देवता के चरणगर्भ को रखें।

द्वितीय हेमगर्भश्च नकुलीशस्तृतीयके।
चतुर्थे चैव सावित्री रुद्रस्स्यात् पञ्चमे पदे॥ 9॥
षष्ठे तथा षण्मुखश्च सप्तमे च पितामहः।
अष्टमे वसुदेवश्च नवमे च जनार्दनः॥ 10॥
विश्वदेवाश्च दशमे अग्निरेकादशे तथा।
द्वादशे भास्करश्चैव दुर्गा चैव त्रयादेशे॥ 11॥
चतुर्दशे विघ्नराजो ग्रहाः पञ्चदशे तथा।
षोडशे मातृकाश्चैव गणास्सप्तदशे तथा॥ 12॥
अष्टादशे भैरवश्च क्षेत्रपालस्ततोऽधिके।
यक्षराजो विंशतिके हनूमानेविंशके॥ 13॥

द्वाविंशे च भृगुश्चैव घोरश्चैव ततोऽधिके।
चतुर्विंशे भवेद् दैत्यो राक्षसश्च पदेऽधिके॥ 14॥
पिशाचश्चैव षड्विंशे भूतानि च तथाऽपरे।
तदग्रे च पदं शून्यं क्रमेण मण्डलस्थिता:॥ 15॥

इस तरह से मण्डलों में दूसरा हेमगर्भ का, तीसरा नकुलीश, चौथा सावित्री गर्भ, पाँचवाँ रुद्र, छठा कार्तिकेय, सातवाँ पितामह ब्रह्मा, आठवाँ वासुदेव, नवाँ जनार्दन, दसवाँ विश्वदेवता, ग्यारहवाँ अग्निदेव, बारहवाँ भास्कर सूर्य, तेरहवाँ दुर्गा, चौदहवाँ विघ्नराज गणेश, पन्द्रहवाँ ग्रहों यानी नवग्रहों, सोलहवाँ षोडश मातृकाओं, सत्रहवाँ गणों, अठारहवाँ भैरव, उन्नीसवाँ क्षेत्रपाल, बीसवाँ यक्षराज, इक्कीसवाँ हनुमान, बाईसवाँ भृगु, तेईसवाँ घोर का, चौबीसवाँ दैत्यों, पच्चीसवाँ राक्षसों, छब्बीसवाँ पिशाचों, सत्ताईसवाँ भूतों और अट्ठाइसवाँ शून्य (आकाश)—इस क्रम से मण्डल में इनकी स्थिति होती है।

विष्णुस्थाने **उमादेवी ब्रह्मस्थाने सरस्वती।**
सावित्री मध्यदेशे तु लक्ष्मीं सर्वत्र दापयेत्॥ 16॥

विष्णुस्थान में उमादेवी को रख सकते है। ब्रह्मस्थान में सरस्वती को रख सकते है। मध्यदेश में सावित्री को रखें तथापि लक्ष्मी को सर्वत्र रख सकते हैं।

वीतरागो विघ्नराजे यथोक्तं जिनशासने।
मातृमण्डलमध्यये **तु समस्ता देवतास्तथा॥ 17॥**

वीतराग को विघ्नराज के स्थान में रख सकते है जैसा कि जिनशास्त्रों में कहा है।[1] इसके अतिरिक्त मातृमण्डल के मध्य में ही समस्त देवता होते हैं।

पर्यङ्कासनोर्ध्वस्थानि विष्णुरूपाणि यानि च।
विष्णुस्थाने जलशायी वाराहस्तत्पदे स्थित:॥ 18॥

ऊर्ध्वस्थान पर पर्यंकासन[2] पर विष्णु रूपों को और विष्णु के स्थान पर जलशायी, वाराह उनके पद पर स्थित करें।

---

1. प्रतिष्ठासारोद्धार के एक प्राचीनपाठ में इस प्रकार का मत आया है। इस सम्बन्ध में वसुनन्दी कृत प्रतिष्ठासार भी देखना चाहिए। जयपृच्छा के प्रासादतर देवतान्यासाधिकार में आया है— चण्डिका गणेशश्चैव जिनार्क: ब्रह्मणस्तथा॥ यामूर्ति मध्यदेशे तु पृष्ठिभद्रे तथैव च। अन्येन परिणा प्राज्ञ सर्वदेव स्वयं विधि॥ (जयपृच्छा 22, 17-18)
2. विवेकविलास में पर्यङ्कासन इस प्रकार कहा है कि आसनस्थ प्रतिमा में दाहिनी जङ्घा और पिण्डी के ऊपर बायाँ पाँव और बायाँ हाथ स्थापित करें। इसके बाद बायीं जङ्घा और बायीं पिण्डी के ऊपर दाहिना चरण और दाहिना हाथ रखना चाहिए— वामो दक्षिणजङ्घोर्वोरुपार्यङ्घ्रि: करोऽपि च। दक्षिणो वामजङ्घोर्वोस्तत्पर्यङ्कासनं मतम्॥ (विवेक. 1, 129)

विष्णुरूपाणि सर्वाणि नवमे च पदे तथा।
कल्की च रममाणश्च पदे वाराहके तथा॥ 19॥

इसी प्रकार सभी विष्णु रूपों को नवें पद तथा कल्कि के सुन्दर पद पर वाराह को स्थिति देनी चाहिए।

अर्धनारीश्वरं देवं रुद्रस्थाने च स्थापयेत्।
हरिशङ्करोमामूर्तिं विष्णुस्थाने प्रकल्पयेत्॥ 20॥

अर्धनारीश्वर देव को रुद्र के स्थान पर स्थापित करें। हरिशङ्कर और उमा की मूर्ति विष्णु स्थान पर प्रकल्पित करें।

सप्तमे ब्रह्मसंस्थाने मिश्रमूर्तिं च स्थापयेत्।
त्रिदेवं मिश्रयेच्चैव हरिहरपितामहम्॥ 21॥

सातवें ब्रह्मस्थान में मिश्र स्वरूप की मूर्ति की स्थापना करें। इनमें तीन देवों को यानी हरि, हर और पितामह ब्रह्मा को मिश्रित करने से हरिहरपितामह स्वरूप होता है।

चन्द्रार्कपितामहं च स्थापयेद्भास्करे पदे।
वेदांश्च ब्रह्मासंस्थाने ऋषीन्वै भास्करे पदे॥ 22॥

इसी प्रकार चन्द्रार्कपितामह यानी चन्द्र, सूर्य व ब्रह्मा को सूर्य के पद पर स्थापित करें। वेद को ब्रह्मा के संस्थान पर ऋषिगणों को सूर्य के पद पर स्थपित करें।

अतः परे तु ये देवा ग्रन्थेषूक्ता महत्तरैः।
सान्निध्यं सर्वकाले तु परिकरस्य च दापयेत्॥ 23॥

इति प्रतिमापादसंस्थानम्।

इसके बाद तो जो देवगण विविध ग्रन्थों में महत्तर कहे गए हैं, उनको सब समय में परिकर की सन्निधि में उत्कीर्ण या स्थापित करना चाहिए।

वर्णविषयकलिङ्गप्रतिष्ठास्थानम् —

लिङ्गं प्रतिष्ठास्थानं च वर्णानां हितकामदम्।
प्रतिष्ठाप्यं प्रकृतिभिः शाश्वतं च शुभप्रदम्॥ 24॥

चतुर्वर्णों के हित की कामना से शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा उक्त स्थान पर प्रकृतियों के साथ करने से शाश्वत शुभप्रद होता है।

यवैर्यवार्धैस्तु किञ्चित् कर्तव्यं च दिशाश्रितम्।
प्राच्यां शुभप्रदं विप्रे क्षत्रियाणां तु दक्षिणे॥ 25॥
वारुणे वैश्यजातीनां शूद्राणां तु तथोत्तरे।

चतुष्टयं समं ख्यातं चतुर्वर्णफलप्रदम्॥ 26॥

शिवलिङ्ग की स्थापना में यव प्रमाण अथवा आधे यव जितना कुछ भाग दिशाश्रित रखें। पूर्व दिशा की और बढ़ाकर रखने पर विप्र या ब्राह्मणों के लिए शुभप्रद है। क्षत्रियों के लिए दक्षिण की ओर रखना शुभप्रद, वेश्यों के लिए पश्चिम की और शुभप्रद और शूद्रों के लिए उत्तर की और रखते हुए शुभप्रद होता है। यह चारों वर्णों के लिए शुभफलप्रद नियम ठीक तरह से बता दिया गया।

शाश्वतं सर्ववर्णानां शिल्पिसन्तोषकारकम्।
ईशान्यां यत् स्थितं लिङ्गं पूज्यं चन्द्रार्कतारकैः॥ 27॥

सभी वर्णों के लिए और शिल्पियों के लिए शाश्वत सन्तोषकारक है। ईशान कोण की ओर को स्थित शिवलिङ्ग ही चन्द्र, सूर्य व तारकों के साथ पूज्य है।

अग्न्युपजीविभिर्लोकैराग्नेयीं दिशमाश्रितम्।

जो लोग अग्नि के द्वारा उपजीविका कमाते हैं (स्वर्णकार, लोहार, भड्भारा, भरावा आदि) वे शिवलिङ्ग को आग्नेय दिशा की और रखते हुए स्थापित करें।

वेश्याकुलालरजकैर्वस्त्ररङ्गकभण्डकैः॥ 28॥
नैर्ऋतीमाश्रितं लिङ्गं शाश्वतं च शुभप्रदम्।
वायव्ये नर्तकनटैलिङ्गं स्थाप्यं विचक्षणैः॥ 29॥

वेश्या, कुलाल (बर्तन विक्रेता), रजक (धोबी), वस्त्र रङ्गने वाले छीपा-रङ्गकर्मी और भाण्डगण शिवलिङ्ग को नैर्ऋत्य कोण की और रखते हुए स्थापित करें तो शुभप्रद होगा। नर्तक और नट समुदाय शिवलिङ्ग को वायव्य दिशा की ओर रखते हुए स्थापित करें— ऐसा विचक्षणजनों ने कहा है।

हस्तार्धं च ततोऽर्धं च ततोऽप्यर्धं त्रिभागतः।
तस्यार्धं च तदर्धार्धमेतत् किञ्चित्प्रमाणतः॥ 30॥

इस स्थापना कार्य में गज का आधा, आधे का आधा तथा उसका भी आधा अथवा तीसरा भाग तथा उसका भी आधा व उस आधे का भी आधा—इतने किञ्चित् प्रमाण कहे हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
देवतापदसंस्थानाधिकारो नाम पञ्चत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 135॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में देवता पद
संस्थान अधिकार नामक एक सौ पैंतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 135॥

त्रिपुरुषप्रतिष्ठासूर्यमण्डलादिव्योमलक्षणं षट्त्रिंशदुत्तशततमं सूत्रम्॥ 136॥

अधुना त्रिपुरुषन्यूनाधिकमानं। विश्वकर्मोवाच —

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रत्वेकस्मिन्वा पृथग्गेहे।
भूयो न्यूनन्यूनतश्च रुद्रौ हरिः पितामहः॥ 1॥
अंशोनश्च हराद्विष्णुर्विष्णोरर्धं पितामहः।
वामदक्षिणयोगेन मध्ये रुद्रं च स्थापयेत्॥ 2॥

(इस सूत्र में त्रिपुरुष प्रतिमा के विषय में कहा जा रहा है। यह पूर्व-मध्यकाल की एक विशिष्ट शैली[1] के वर्णन के रूप में है किन्तु इसका प्रवर्तन गुहाकालीन प्रतिमाओं से आरम्भ होता है।) विश्वकर्मा बोले कि ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र एक ही स्थान में हों अथवा पृथक् गृह में हो इससे कोई न्यूनता-अन्यूनता नहीं होती। रुद्र, हरि और पितामह ब्रह्मा में हर, शिव से एक अंश विष्णु कम है और विष्णु से आधे अंश में ब्रह्मा पितामह कम हैं। इनको बाएँ-दाएँ योग से स्थापित करके मध्य में रुद्र की स्थापना करनी चाहिए।

संस्थाप्यं च शुभं कर्ता नृपाद्याः सुजनाः प्रजाः।
प्रकर्तव्यं त्यज विप्राद्याः समेयान्ति समन्वितम्?॥ 3॥

नृपाद्या यानी राजा से लेकर सुजन प्रजा इस तरह रुद्र की स्थापना के जो शुभ कर्ता है, उन्हें एकत्रित होकर विप्रों के सिवाय, समेय यानी सम्मेलन करने चाहिए।

ताभ्यां ह्रस्वो यदा रुद्रः क्षयो राज्ञि जने मृतिः।
राष्ट्रक्षोभो नृपयुद्धं ब्रह्मविष्णु समौ यदा॥ 4॥

इनमें यदि रुद्र की प्रतिमा प्रमाण से कम हो तो राजा व प्रजा का क्षय होता है। यदि ब्रह्मा की प्रतिमा विष्णु के समान बनती है तो राष्ट्र में क्षोभ, भय उत्पन्न होता है और राजाओं में युद्ध की आशंका होती है।

अनावृष्टिर्जने मारिर्ब्रह्मह्रस्वे जनार्दने।

---

1. मेवाड़ से लेकर पश्चिम भारत के कई मन्दिरों में एक ही मुख में तीनों रूपों का स्थैतैक्य मिलता है, अकेले चित्तौड़गढ़ पर त्रिपुरुषनारायण का मन्दिर क्रमशः भोज और महाराणा रायमल के काल के बने हुए माने जाते हैं, इनमें रायमलकालीन कहे जाने वाला निश्चित ही पुरातन हो सकता है क्योंकि रायमल के पिता कुम्भा के काल में दुर्ग के पश्चिमी भाग का विकास हुआ था जबकि उक्त प्रासाद पूर्वीभाग में बना हुआ है। यह पहले ही बन चुका होगा किन्तु इसका उद्धार रायमल के काल में हुआ होगा, इस बात की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है।

विपर्यये नृपाद्याश्च अस्वस्था भ्रमति प्रजा ॥ 5 ॥

इति न्यूनाधिकमानम्।

यदि ब्रह्मा से जनार्दन कम हो तो अनावृष्टि और महामारी का भय होता है। अतएव इस प्रकार के विपर्यय यानी उलट-फेर से राजा से लेकर प्रजा तक सभी अस्वस्थ होते होते हैं और दर-दर भटकने वाले हो जाते हैं।

त्रिपुरुषस्थानप्रतिष्ठामाह —

आदौ ब्रह्मा हरिर्मध्ये चाऽन्ते रुद्रो यदा भवेत्।
ब्राह्मणोपद्रवो लोकास्तथा स्युर्दुष्टचेतसः ॥ 6 ॥

प्रारम्भ में ब्रह्मा हो, मध्य में हरि (विष्णु) हो और अन्त में यदि शिव हो तो ब्राह्मणों में उपद्रव होता है और लोक में मनुष्यमात्र दुष्ट चित्तवाले हो जाते हैं।

विष्णुस्थाने यदा ब्रह्मा ब्रह्मस्थाने जनार्दनः।
तत्र राजभयं विद्यादुद्वेगमनसो जनाः ॥ 7 ॥

इसी तरह यदि विष्णु स्थान में ब्रह्मा और ब्रह्मा के स्थान में जनार्दन या विष्णु हो तो वहाँ राजभय समझें और जनता के मन में उद्वेग होता है।

मध्ये ब्रह्मा हरिश्चान्ते आदौ रुद्रः प्रतिष्ठितः।
संहारो जायते तत्र व्याधिशोकाकुलो जनः ॥ 8 ॥

इसके अतिरिक्त, यदि मध्य में ब्रह्मा की स्थापना करके विष्णु की स्थापना अन्त में की जाए और आदि में शिव की स्थापना हो तो वहाँ जनता में व्याधि और शोकाकुल होने से संहार, मारकाट की प्रवृत्ति मच जाती है।

ब्रह्मणश्च यदा विष्णुर्विष्णुस्थाने पितामहः।
तस्करोपहता लोका उद्वृत्तजनसङ्कुलाः ॥ 9 ॥

ब्रह्मा के स्थान पर विष्णु और विष्णु के स्थान पर ब्रह्मा हो तो जनता को चोरों-तस्करों की मार सहनी पड़ती है और समाज में उद्वृत यानी आपाधापी मच जाती है।

रुद्रस्थाने हरिश्चैव हरिर्यत्र हरस्तथा।
जायन्ते स्त्रीजिता लोका अधर्मरतचेतसः ॥ 10 ॥

यदि रुद्र के स्थान पर विष्णु अथवा विष्णु के स्थान पर रुद्र की स्थापना हो तो समस्त लोक की जनता अधर्म चित्त वाली होकर स्त्रियों के वश में हो जाती है और नीच कर्मरत हो जाती है।

ब्रह्मस्थाने यदा विष्णुर्विष्णुस्थाने चतुर्मुखः।
रुद्रः स्वस्थानसंस्थस्तु सर्वकामफलप्रदम्॥ 11॥

इसलिए यही सर्वश्रेष्ठ सर्वकाम फलप्रद है कि ब्रह्मा के स्थान पर विष्णु और विष्णु के स्थान पर ब्रह्मा हो तो भी रुद्र को तो अपने ही स्थान में स्थापित करें।

रुद्रवक्त्रत्रिभागोनो हरिरर्धः पितामहः।
तत्तुल्या वै उमादेवी सुखदा सर्वकामदा॥ 12॥

रुद्र के मुख से तीन भाग कम हरि का मुख और हरि के मुख से आधा पितामह ब्रह्मा का मुख तथा ब्रह्मा के मुख के समान ही उमादेवी का मुख रखना सदा सुखदायी और सब कामनाओं को पूरा करने वाला होता है।

न्यूनाधिका हरिर्ब्रह्मा उमादेवी च शङ्करः।
सर्वार्थाश्च गतास्तत्र यथोक्तफलमादिशेत्॥ 13॥

इति त्रिपुरुषस्थानप्रतिष्ठा।

अस्तु, हरि और ब्रह्मा तथा उमादेवी और शङ्कर में न्यूनाधिक रखने से सभी अर्थगत यथोक्त फल प्राप्त होते हैं।

सूर्यमण्डलाधिव्योमलक्षणमाह —

सर्वे लिङ्गाश्रिता देवा लिङ्ग देवाश्रितं शुभम्।
अन्योन्यतः प्रदातव्यं लिङ्गं नाऽन्यत्र दापयेत्॥ 14॥

सभी देवता लिङ्ग के आश्रित है। अतः लिङ्ग के आश्रित यानी लघु होने से ही देवताओं को शुभ माना जाता है। अन्य देवता एक दूसरे से दब सकते है परन्तु लिङ्ग को किसी से भी दबता हुआ नहीं रखें।

हरिर्ब्रह्मा च सविता शक्रश्चैव स्मरस्तथा।
स्कन्धसूत्रस्य चाऽधस्यात् स्थाणुसूत्रप्रमाणतः॥ 15॥

सामान्यतः हरि, ब्रह्मा, सविता या सूर्य, इन्द्र, कामदेव को सदा स्कन्धसूत्र से नीचे, स्थाणुसूत्र की सीध में रखें।

कटिमेढ्रसमस्थाने रतिमूर्तिप्रकल्पना।
शङ्खचक्रधरा चैव ऋषयो दण्डपिङ्गलौ॥ 16॥
रतिस्कन्धसमौ तौ तु अधस्ताच्चिबुकौ तथा।

कटि और मेढ्र के बराबरी तक ही रति की मूर्ति की परिकल्पना यानी निश्चय करें। शङ्ख और चक्र को धारण किए हुए दण्ड और पिङ्गल ऋषियों की मूर्तियाँ बनाएँ और इनकी ऊँचाई रति के चिबुक-ठोड़ी से नीचे रखें।

एकपृष्ठोपरि **कार्या न पृष्ठे न च विस्तृताः ॥ 17 ॥**

पादपद्मागतः सूत्रं मध्यं मध्येऽपि जायते।

नायकश्च रतिश्चैव क्रमशो युक्तिमाश्रितौ ॥ 18 ॥

इनको एक ही पीठ पर बनाएँ, आगे-पीछे नहीं बनाएँ। न फैले हुए यानी बड़े बनाएँ। इनके चरण कमलों के आगे से मध्य में यानी बीचों बीच रखें तथा नायक और रति को क्रमशः युक्ति सहित बनाएँ।

पादपृष्ठसमं सूत्रमर्चामानेन **कारयेत्।**

अष्टधा भाजयेत् सर्वमुपपीठोपरिस्थितम् ॥ 19 ॥

पाद पीठ के समस्त में सूत्र रखकर अर्चा का मान, नाप-तौल करें। उपपीठ पर स्थित सभी मूर्तियों को आठ भागों में विभाजित करें।

द्वौ भागौ शृङ्गमुत्सेधे **पद्मं कुर्यात्** सुवृत्तकम्।

पद्मपीठं तु भागेन भागौ द्वौ कण्ठकोच्छ्रयः ॥ 20 ॥

दो भागों में शृङ्गों की ऊँचाई, शिखरों की ऊँचाई पर पूरे गोलवृत्त में पद्म या कमल को करें। एक भाग में पद्मपीठ और दो भागों में कण्ठ की ऊँचाई रखें।

पीठं भागत्रयं कुर्यात् प्रवेशान्तरनिर्गमम्।

पादं पद्मसमुत्सेधे ऊरुजानुहृदिस्थितम् ॥ 21 ॥

तीन पीठ भागों के बराबर प्रवेश और निकास को रखें। एक पाद पद्म की ऊँचाई रखकर जङ्घा, उरु एवं हृदय को स्थित करें।

इत्यमनन्तर व्योमलक्षणमाह —

सुशृङ्गं केशराढ्यं च अष्टपत्रं सकर्णकम्।

एवं विधं प्रकर्तव्यं सूर्याग्रे व्योमलक्षणम् ॥ 22 ॥

सूर्य के आगे बनाए जाने वाले व्योम के शिखर सुन्दर हों, केशर से भरे-पूरे हों और अष्टपत्र अर्थात् स्वर्ण के कर्ण के लक्षण युक्त हों।

पीठं च मण्डलं प्रोक्तं प्रतिधारा च नासिका।

वेदी व्योम तथा कुण्डं पञ्चाङ्गं सूर्यमण्डलम् ॥ 23 ॥

पीठ को ही मण्डल कहते हैं और प्रतिधारा को नासिका कहते हैं। इनके अतिरिक्त वेदी, व्योम और कुण्ड— सूर्य मण्डल के ये पाँचों अङ्ग हैं।

मेरुस्तस्याऽग्रतः कार्यस्त्रिगर्भान्तरसंस्थितः।

पञ्चसप्तनवान्तः स्थो ह्यत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ 24 ॥

इसके आगे की ओर मेरु पर्वत बनाएँ जो तीन गर्भभाग की दूरी पर हो अथवा पाँच या सात भाग या नौ भाग के अन्त तक की दूरी पर हो। इससे अधिक दूर नहीं बनाएँ।

हंसो वृषोऽथ गरुडो व्योम वै ज्येष्ठमध्यतः।
इषुस्थानेषु **कर्तव्यं** नाऽन्यपदाश्रितं **भवेत्॥ 25॥**

देवताओं के वाहनों में हंस, वृष, गरुड़, व्योम और ज्येष्ठ मध्य से इनको पाँचों स्थानों में बनाना चाहिए, किसी अन्य पद के आश्रित नहीं बनाएँ।

अर्चायामेन विस्तीर्णं सपादं सार्धमेव च।
विस्तरोच्छ्रयतुल्यं च उपपीठं त्रिभागतः॥ 26॥

इति व्योमलक्षणाधिकारः।

यहाँ अर्चा के नाप के बराबर विस्तीर्ण अथवा सवाया या डेढ़ा विस्तार के तुल्य में ऊँचाई हों। इस तरह उपपीठ तीन भाग की करें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां (त्रिपुरुषप्रतिष्ठा)व्योमलक्षणाधिकारो नाम षट्त्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 136॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में त्रिपुरुष प्रतिष्ठा व्योम लक्षण अधिकार नामक एक सौ छत्तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 136॥

द्वारदृष्टिनिर्णयो नाम सप्तत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 137॥

अधुना द्वारक्रमेणदृष्टिसंस्थानं। विश्वकर्मोवाच —

ब्रह्मा विष्णु शिवस्तान्तं[1] सोदुम्बरान्तकम्।

---

1. प्रकाशितपाठे इतः पूर्वं न लभ्यते।

विशेष— यह वर्णन ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में भी आया है। वहाँ विश्वकर्मा ने कहा है कि द्वार की ऊँचाई के (शाखा के) 32 भाग करें। उसमें ऊपर के तीन भाग छोड़ दें और नीचे से आठवें भाग से शिवलिङ्ग, दसवें और ग्यारहवें भाग में किसी देव की दृष्टि नहीं कही है। बारहवें भाग में शयित विष्णु, जलशायी शेष नारायण, चौदहवें भाग में मातृका देवियाँ, सोलहवें भाग में यक्षों की, अट्ठारहवें भाग में शिव, पार्वती, लक्ष्मीनारायण और ब्रह्मा-सावित्री- ऐसे त्रिपुरुष, युग्ममूर्ति की दृष्टि रखनी चाहिए— द्वात्रिंशद् द्वारमुत्सेधमूर्ध्वके त्रीणि वर्जयेत्। अधोऽष्टमे शिवं प्रोक्तो दशैकादशहीनकम्॥ द्वादशे तु समुत्सेधे कुर्याच्च जलशायिनम्। चतुर्दशे मातृदेवीं षोडशे यक्षमेव च॥ अष्टादशे तु कर्तव्याकुभौ रुद्रौ च श्रीहरिः। ब्रह्मयुग्मं च कर्त्तव्यमत ऊर्ध्वं तथा शृणु॥ (दीपार्णव 8, 1-3) इसी प्रकार जयपृच्छा के 17वें अध्याय में भी देवतादृष्टिपद का वर्णन हुआ है। विवेकविलास में कहा है कि देवालय में सम्मुख द्वार की शाखा के नीचे से 8 भाग कर उसमें आठवाँ भाग सबके ऊपर आया हुआ त्याग दें और उसके नीचे का जो सातवाँ भाग हो उसके नीचे के पुनः सात भाग करें और उन सातों में से नीचे के भागों को छोड़ दें और ऊपर का जो सातवाँ भाग रहे उसमें अष्टमांश सम्भव है। उस अंश में प्रासाद के अन्दर रही हुई प्रतिमा

स्थापयेच्छिवलिङ्गानि द्वारार्धं न व्यतिक्रमेत्॥ 1॥

(प्रतिमा की स्थापना के प्रसङ्ग में द्वार दृष्टि अर्थात् प्रतिमा की द्वार से स्थिति पर विचार अपेक्षित है, इसी शिल्प कथ्य को इस सूत्र में कहा गया है) विश्वकर्मा बोले कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव का अन्त उदुम्बर के अन्त तक है। शिवलिङ्गों को द्वार के आधे (गर्भगृह का जो द्वार हो, उसके मध्य भाग के प्रमाण) में स्थापित करें, इसमें कोई परिवर्तन नहीं करें।

द्वारोच्छ्रयस्य मध्यं तु वसु$_8$ भागविभाजितम्।
शुभाशुभदृष्टिस्थानं हिताहितफलप्रदम्॥ 2॥

द्वार की ऊँचाई के मध्य भाग को आठ भागों में विभाजित करें। इसमें शुभ और अशुभ दृष्टि स्थान रखने से ही हित और अहित फल जानना चाहिए।

पदमेकैककं भूयो ह्यष्टधा$_8$ प्रविभाजितम्।
चतुःषष्ठ्यंशोच्छ्रितं$_{64}$ स्यादुदुम्बरदशान्तकम्॥ 3॥

इसके बाद, एक-एक भाग को भी आठ-आठ भागों में पुनः विभाजित करें। इस तरह से उदुम्बर के अन्त तक 8 × 8 = 64 अंशों की ऊँचाई होगी।

विषमांशेषु सर्वेषु देवतादृष्टियोगतः।
दृष्टिस्थानानि द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशच्च विलोमतः॥ 4॥

जितने भी विषम अंश हैं, उनमें देवता की दृष्टियोग करना उचित है। इस तरह दृष्टि स्थान 32 होते हैं और विलोम स्थान भी 32 होते हैं।

विषमस्था शुभा चैवं विषमे चाशुभोद्गमः।
दृष्टिदोषविपाकेन स्थाननाशो धनक्षयम्॥ 5॥

विषम स्थान में दृष्टि को रखना शुभ है और समस्थान में दृष्टि रखना अशुभ का कारक है। दृष्टि दोष के कारण स्थान का नाश और धन का क्षय होता है।

नगरे च पुरे ग्रामे राष्ट्रे तीर्थे तपोवने।
वाहदृष्टिहतं यच्च न पुनस्तरत्प्ररोहति॥ 6॥

किसी भी नगर में, ग्राम में, पुर में, राष्ट्र में, तीर्थ में, तपोवन में जो भी दृष्टि पात से हत हुआ है, वह कभी पुनः नहीं पनप सकता है।

की दृष्टि शिल्पियों को रखनी चाहिए—द्वारशाखाष्टभिर्भागैरधःपक्षाद्विर्धायते। मुक्त्वाष्टमविभागं च यो भागः सप्तमः पुनः॥ तस्यापि सप्तमे भागे गजांशस्तत्र सम्भवेत्। प्रासादे प्रतिमादृष्टिर्नियोज्या तत्र शिल्पिभिः॥ (विवेक. 1, 158-159)

उदुम्बरादितः प्रोक्तमुत्तरङ्गोदरादधः।
देवताक्रमसंस्थानं कथयामि यथाविधि॥ 7॥

इसलिए मैं उदुम्बर के आदि से उत्तरङ्ग के नीचे तक, देवताओं के क्रम से दृष्टि संस्थान को यथाविधि कहता हूँ।

शिवप्रोक्त नवतत्त्वानि —

आदिः सृष्टिश्च तत्त्वं च अधिष्ठं चायुर्लक्ष्यकम्।
विज्ञा प्रज्ञा शान्तिः शिवोक्तानि तत्त्वानि वै नव॥ 8॥

शिव के द्वारा ये नौ तत्त्व कहे गए हैं— 1. आदि, 2. सृष्टि, 4. तत्त्व, 4. अधिष्ठ, 5. आयु, 6. लक्ष्य, 7. विज्ञा, 8. प्रज्ञा और 9. शान्ति।

द्वात्रिंशद्विषमस्थानानि तेषु प्रतिमाश्च —

प्रथमे च भवेदादिः सृष्टिश्चैव तृतीयके।
पञ्चमे च भवेत्तत्त्वमधिष्ठं सप्तमे स्थितम्॥ 9॥
आयुःस्थानं च नवमे लक्ष्ममेकादशे स्थितम्।
त्रयादशे भवेद्विज्ञा प्रज्ञा पञ्चदशस्थिता॥ 10॥
शान्तिः सप्तदशस्था च शिवतत्त्वकसंस्थितिः।

इनमें प्रथम भाग पर आदि$_1$ की स्थिति है, तीसरे भाग पर सृष्टि$_2$, पाँचवें भाग पर तत्त्व$_3$, सातवें भाग पर अधिष्ठ$_4$, नवें स्थान पर आयु$_5$, एकादश स्थान पर लक्ष्य$_6$, तेरहवें स्थान पर विज्ञा$_7$, पन्द्रहवें स्थान पर प्रज्ञा$_8$ और सत्रहवें स्थान पर शान्ति$_9$ और इस प्रकार शिवतत्त्वों की संस्थिति पूरी होनी है।

व्यक्ताव्यक्ते तदूर्ध्वे तु क्रमेण च सुसंस्थिते॥ 11॥
व्यक्तपदं च विज्ञेयमेकोनविंशत्यंशके।
व्यक्ताव्यक्तं त्वेकविंशे त्रयोविंशे च व्यक्तकम्॥ 12॥

इसमें व्यक्त और अव्यक्त इसके ऊर्ध्व क्रम में सुसंस्थित है। व्यक्त पदों को 19 अंश के भागों के तथा व्यक्ताव्यक्त भी 21 के और 23 अंश व्यक्त के कहे हैं। अर्थात् व्यक्ताव्यक्त मुखलिङ्ग 21 व अव्यक्त स्वरूप 19 भाग में होंगे जबकि 23 भाग व्यक्त या उमा-रुद्र के होंगे।[1]

पञ्चविंशे फालना स्यात् तत्र कामफलोदयः।
सप्तविंशे समुत्सेधे कुर्याच्च जलशायिनम्॥ 13॥

1. इस प्रकार शिवलिङ्ग, तत्त्व स्वरूप के लिए क्रमशः 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13, 15, 17, 19 व 21 का क्रम है।

इसमें 25 फालना यानी शेषनाग की दृष्टि होती है जो कामना पूर्ति करती है। इसके अतिरिक्त 27 भाग की ऊँचाई में जलशायी नारायण को करें।

द्व्यधिके वैनतेयं च मातरस्त्वेकत्रिंशके।
त्रयस्त्रिंशे भवेद्यक्षो द्व्यधिके भृङ्गशूकरः ॥ 14 ॥

उक्त प्रमाण से दो अधिक अर्थात् 29वें भाग में गरुड़ और 31वें भाग में मातर की, 33 में यक्ष और इनमें दो अधिक अर्थात 35 पर भृङ्ग व शूकर या वाराह की दृष्टि करें।

सप्तत्रिंशे उमारुद्रं द्व्यधिके बुद्ध एव च।
एकचत्वारिंशके च ब्रह्मयुग्मं च कारयेत्॥ 15 ॥

इसी प्रकार 37 में उमा-रुद्र को और इनसे दो अधिक अर्थात् 39 पर बुद्ध तथा 41वें भाग पर ब्रह्मा का युग्म यानी ब्रह्मा-सावित्री को करें।

दुर्वाससं च द्व्यधिके अगस्त्यं नारदं तथा।
पञ्चचत्वारिंशके च लक्ष्मीनारायणं विदुः ॥ 16 ॥
सप्तचत्वारिंशके च स्थाप्यो धाता यथाविधि।

इनसे दो अधिक अर्थात् 43 पर दुर्वासा को, अगस्त्य और नारद को, 45 पर लक्ष्मीनारायण को, 47वें भाग पर धाता की यथाविधि स्थापना करें।

एकोनपञ्चाशत्तमे गणेशं च सरस्वतीम्॥ 17 ॥
ततश्च द्व्यधिके कुर्याच्छ्रियं पद्मासनां स्थिताम्।

इसी प्रकार 49वें भाग गणेश और सरस्वती को तथा इससे दो अधिक अर्थात् 51वें भाग पर लक्ष्मी को पद्मासनस्थ स्थित करें।

त्रिपञ्चाशत्तमे कुर्याद्धरसिद्धिं च कामदाम्॥ 18 ॥
ब्रह्मविष्णोश्च सूर्यस्य वीतरागस्य च क्रमात्।
पञ्चपञ्चाशत्तमे च ऊर्ध्वार्चादृष्टिसंस्थितिः ॥ 19 ॥

इसके अतिरिक्त 53वें भाग पर हरिसिद्धि जो कि कामनापूर्ति करने वाली है, को करें। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, वीतराग (तीर्थङ्कर)[1] को क्रम से 55वें भाग से ऊपर की ओर दृष्टियुक्त बनाएँ।

रुद्रार्चा ततो द्व्यधिके चण्डिकैकोनषष्ठिके।
द्व्यधिके भैरवश्चैव वेतालाश्च त्रिषष्ठिके॥ 20 ॥

---

1. दिगम्बराचार्य वसुनन्दी कृत प्रतिष्ठासार में द्वारोदय के नौ विभाग कर सातवें भाग से जिनदृष्टि करने का निर्देश है।

रुद्र (अघोररुद्र) की प्रतिमा को उक्त प्रमाण से दो अधिक अर्थात् 57वें भाग, चण्डिका को 59 की, भैरव की इससे दो अधिक अर्थात् 61 और वेताल की 63वें भाग पर करें।

वाहनदृष्टिं —

तदूर्ध्वे च पदं शून्यं महामर्म क्षयावहम्।
पादेऽर्चायाः कटिर्यावत् **कार्या** वाहनदृक् **तथा॥ 21॥**

इसके ऊपर शून्य पद है जो महामर्मयुक्त क्षयकारक कहा गया है। अर्चा के चरण से कटि तक ही वाहन की दृष्टि रखें।

धर्मार्थकाममोक्षाणां दृष्टिस्थापनपूजनात्।
सर्वार्चादृष्टिसंस्थानं भुक्तिमुक्तिप्रदं **भवेत्॥ 22॥**

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हेतु दृष्टि स्थापना की पूजा से सभी अर्चाओं के दृष्टि संस्थान भोग और मुक्ति प्रद होते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां द्वारदृष्टिनिर्णयाधिकारो नाम सप्तत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 137॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में द्वार दृष्टि निर्णय अधिकार नामक एक सौ सैंतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 137॥

प्रासादस्योर्ध्वमाननिर्णयो नामाष्टत्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 138॥

अधुना देवालयस्योर्ध्वमानं। विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादस्योर्ध्वलक्षणम्।
तलच्छन्दविभक्त्या तदूर्ध्वमानं विशेषतः॥ 1॥[1]

(यहाँ से प्रासाद के शिखरादि के विषय में वर्णन आरम्भ होता है) विश्वकर्मा बोले कि अब मैं प्रासाद की ऊँचाई के लक्षणों को कहता हूँ ये तलछन्द विभक्ति के अनुसार विशेषतः ऊर्ध्वमान होते हैं।

विभक्ते तु तलच्छन्दे शिखरोर्ध्वं तु कारयेत्।
शिखरे शुकाग्रसूत्रे उच्छ्रयो मण्डपस्य च॥ 2॥

---

1. सूत्रधार मण्डन के पुत्र सूत्रधार गोविन्द ने अपनी 'कलानिधि' में इस अध्याय को ज्यों का त्यों उद्धृत किया है। इससे पूर्व केवल यह मङ्गलाचरण आया है— भुवनेश्वर मानस्य तत्प्रणीताद्यः तन्त्रतः। विधीयते सुरागारशिखरार्थं कलानिधिः॥ बहुधा शिखराणिस्युरेकस्था पित्तलस्य हि। प्रासाद जातयो नामान्यतः ऊर्ध्वानुसारतः॥ (कलानिधिः सम्पादक- श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली 2006, प्रथम प्रकाश 1)।

पहले तलछन्द के विभाग कर लें। तदोपरान्त शिखर की ऊँचाई को करें। इसमें मण्डप की ऊँचाई शिखर के शुकनास के सूत्र में रखें।

प्रासादकाग्रशुकवन्मण्डपाग्रे चतुष्किका।
जगत्युत्तानपट्टं च शालाद्याः परितः क्रमात्॥ 3॥

प्रासाद के आगे शुक के समान एक मण्डप आगे चौकी होती है। प्रासाद की जगती पीठ के ऊपरी पट्ट से प्रासाद शाला का आरम्भ क्रम पूर्वक होता है।

जगत्यां लोपयेच्छालां शालायां मण्डपं तथा।
मण्डपे नैव प्रासादो ग्रस्तश्चेद् दोषकारकः॥ 4॥

जगती को शाला ढक देती है और शाला को मण्डप ढक देता है। मण्डप प्रासाद को ग्रस्त नहीं करें, यह निर्माण में अपेक्षित है। यदि वह करें तो दोषकारक होगा।

एवमादिगुणाः प्रोक्ताः सूत्रशास्त्रार्थबोधकैः।
विशिष्टगुणमाख्यास्ये प्रोक्तं वै वास्तुवेदिभिः॥ 5॥

इस प्रकार से आरम्भ में ही सूत्रशास्त्र, वास्तुशास्त्र के जानकारों ने कह दिया है। अब मैं वास्तुविदों के द्वारा कहे गए विशेष गुणों को कहता हूँ।

प्रासादस्य विशिष्टगुणमाह —

निरन्धारेषु सर्वेषु नागरे मिश्रकेऽपि वा।
विमाननागरच्छन्दे कुर्याद्विमानपुष्पके॥ 6॥

सभी निरन्धार प्रासादों, नागर प्रासादों और मिश्रक प्रासादों के विमान नागरछन्द के और विमानपुष्पक छन्द के करें।

भित्तेः पृथुत्वे यन्मानं तच्छृङ्गक्रम ऊर्ध्वतः।
गर्भमध्ये यदा रेखा महामर्मक्षयावहा॥ 7॥

भित्ति की चौड़ाई का मान जितना हो, उतना ही ऊँचाई शृङ्गक्रम यानी शिखर रखें। गर्भ के मध्य में यदि रेखा आए तो वह महामर्म समझे, जो क्षयकारक है।

एकद्वित्रिकमा उक्ता भित्तिमध्ये यथोत्तरम्।
अधिका नैव कर्तव्या पीडिते च कुलक्षयः॥ 8॥

एक, दो, तीन क्रम में भित्ति के मध्य से उत्तरोत्तर शिखर चढ़ा सकते हैं। रेखा अधिक भी न हो और कम हो तो भी कुलक्षय होता हैं।

एकादिग्रहसङ्ख्यान्तमुरःशृङ्गं क्रमोद्गतम्।
अधःस्थेन भवेल्लुप्तमुरःशृङ्गं तु पश्चिमम्॥ 9॥

भद्र पर उरुशृङ्ग एक से लेकर क्रमशः नौ तक कर सकते है। इसमें नीचे का पश्चिमी उरुशृङ्ग लुप्त होगा।

सप्त सप्त ह्यधोलुप्ताः ऊर्ध्वस्थांशास्त्रयोदश।
एकवृद्ध्या घण्टबाह्ये **स्कन्धे स्कन्धं तु कारयेत्॥ 10॥**
एकैकं युक्तिसूत्रेण **कुर्याद्वै** सर्वकामदम्।
सूत्रयित्वा **क्रमयोगे** मूलसूत्रानुसारतः॥ 11॥

उरुशृङ्ग की ऊँचाई के 13 भाग करें। उनमें सात नीचे के लुप्त करके दूसरा ऊरुशृङ्ग बनाएँ। ऊरुशृङ्ग को स्कन्ध तक ही माने और आमलसार, घण्टों को उससे बाहर समझें। उनको एक-एक को इसी युक्तिपूर्वक, एक के ऊपर एक ऊरुशृङ्ग चढ़ाते जाएँ जो सब कामना को पूरी करता है। इसको मूल सूत्र के क्रमयोग में अवश्य रखें।

छन्दभेदो **न कर्तव्यो** जातिभेदो **न वा पुनः।**
उद्भवेच्च **महामर्म** जातिभेदे **कृते सति॥ 12॥**

प्रासाद रचना में छन्द भेद अथवा जाति भेद नहीं करना चाहिए। इनमें भेद करने पर महामर्म का उद्भव होता है।

यदि छन्दे नास्ति छन्दो नाऽऽद्यमाद्ये प्रतिष्ठितम्?।
तत्प्रासादफलं नास्ति ततो मोक्षो न विद्यते॥ 13॥

जिस प्रासाद का छन्द नहीं, उसकी आद्यप्रतिष्ठा भी नहीं, उस प्रासाद का कोई फल भी नहीं और उससे मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं होती।

प्रासादस्य पुरो-भागे निर्वाणं मूलशृङ्गकम्।
तदग्रे शुक्रवत्कार्यमुरुशृङ्गाद्यनुक्रमात्॥ 14॥

प्रासाद के अग्रभाग में मूलशृङ्ग निर्वाण रूप है। उसके आगे ही शुकनास तक उरुशृङ्ग आद्य-क्रमानुसार करें।

एकत्रिपञ्चसप्ताङ्कसिंहस्थानानि **कारयेत्।**
तेषां विभक्तिसूत्रं **तु** कोलिकायामसूत्रतः॥ 15॥

ये एक, तीन, पाँच, सात तक सिंहस्थान किए जा सकते हैं। उनके विभाग कोलिका की सीध में ही होते हैं।

षट्कोल्यामाह —

अञ्चिता कुञ्चिता शस्या त्रिधोदितक्रमागता।
मध्यस्था भ्रमा सभ्रमा षट्कोल्यः परिकीर्तिताः॥ 16॥

कोलियों को अञ्चिता, कुञ्चिता, शस्या— इन तीन क्रमों में उदित कहा गया है। मध्यस्था, भ्रमा, सभ्रमा— इस प्रकार ये षट्कोल्या कही है।

प्रासादे दशधा भक्ते भूमिसीमा विचक्षणः।
अञ्चिता च द्विभागा स्यात् त्रिभागा कुञ्चिता तथा॥ 17॥
शस्या चैवं चतुर्भागा **त्रिधा** चोक्तक्रमागता।
------------------------------- ॥ 18॥

विचक्षणों ने प्रासाद की भूमि सीमा को दस भागों में विभाजित किया है। इनमें 1. अञ्चिता दो भागों की, 2. कुञ्चिता तीन भागों की और 3. शस्या चार भागों की— इस क्रम में होती है।

प्रासादपदमध्यस्था **द्रमा** सद्यत्रिभागतः।
अर्धे तु सभ्रमा कार्या प्रासादस्य प्रमाणतः॥ 19॥

प्रासाद के भागों के मध्य में भ्रमा प्रासाद के तीसरे भाग तक होती है। प्रासाद के प्रमाण से आधे तक भी सभ्रमा कह सकते हैं।

अग्रे कोली कपोलं तु शुकनासस्तु **नासिका।**
सान्धारे स्तम्भरेखा **च कर्तव्या** मध्यकोष्ठके॥ 20॥

आगे की कोली को कपोल और शुकनास को नासिका तथा सान्धार में स्तम्भरेखा मध्य कोष्ठक में करनी चाहिए।

भ्रमणी बाह्यभित्तिश्च क्रमात्सङ्ख्यां प्रकल्पयेत्।
शृङ्गोरुशृङ्गप्रत्यङ्गं गणयेदण्डकानि च॥ 21॥

भ्रमणी बाह्यभित्ति की क्रम से संख्या प्रकल्पित करें। शृङ्ग, ऊरुशृङ्ग, प्रत्यङ्ग तक अण्डकों की गणना करें।

सिंहकर्णं **तवङ्गं तिलकं** प्रासादभूषणम्।
कर्णं रथं प्रतिरथं सुभद्रं प्रतिभद्रकम्॥ 22॥
सलिलान्तरमार्गेण शुद्धान्येवाङ्गसङ्ख्यया।

सिंहकर्ण, तवङ्ग, तिलक— ये प्रासाद के भूषण है। कर्ण, रथ, प्रतिरथ, सुभद्र, प्रतिभद्रक, सलिलान्तर मार्गों से इन अङ्गों की संख्या शुद्ध बनती हैं।

इहैवाङ्गप्रमाणेन **सपादं** शृङ्गमुच्छ्रये॥ 23॥
स्कन्धस्यार्धोदये **घण्टा** सर्वकामफलप्रदा।

इसी प्रकार के अङ्ग प्रमाण से शृङ्ग की ऊँचाई सवाए मान की होती है। स्कन्ध की चौड़ाई का आधा ऊँचा घण्टा, आमलसार बनाना सब कामनाओं को पूरी करता है।

प्रहारांशं पुनर्दद्यात् **पुनः शृङ्गाणि कारयेत्**॥ 24॥

शृङ्गे शृङ्गे च प्रासादं विभक्तमिव कल्पयेत्।

समस्तानामधोभागे कुर्याच्छाद्यं विभूषितम्॥ 25॥

प्रहार अंशों को पुनः देकर पुनः शृङ्ग रचना करें अर्थात् शृङ्ग पर पुनः 13 भाग करके 7 भागों पर पुनः शृङ्ग रचना करें। इसी तरह प्रत्येक शृङ्ग करें। इन सब के नीचे के भाग में विभूषित अलङ्करण युक्त छाद्य करें।

अधः शृङ्गं पक्षभागे ऊर्ध्वशृङ्गोद्गमोद्गमम्।

उरुशृङ्गं यदा लुप्तं रेखाकर्णजलान्तरैः॥ 26॥

तत्र कारयितुः **पीडा कर्तुश्चापि** महद्भयम्।

नीचे के शृङ्गों के पक्षभाग में ऊपर के शृङ्गों का उद्गम होता है। यदि उरुशृङ्ग में रेखाकर्ण और जलान्तर लुप्त होते है तो यह कर्ता को और काम करने वालों के लिए पीड़ा और महाभय कारक होता है।

मूलशिलात **उदये प्रासादे** कलशान्तके॥ 27॥

भागे विभक्ते विंशत्या अधऊर्ध्वं प्रकल्पयेत्।

प्रासाद की ऊँचाई मूल शिला के लेकर कलश के अन्त तक मानी जाती है। उसे बीस भागों में विभक्त करके ऊँचा नीचा प्रकल्पित करें।

त्रिविधमण्डोवरप्रमाणमाह —

अष्टभागोदये **ज्येष्ठः** सार्द्धमष्टौ **च मध्यमः**॥ 28॥

कनिष्ठो नवभिर्भागैस्त्रिधा **मण्डोवरो मतः**।

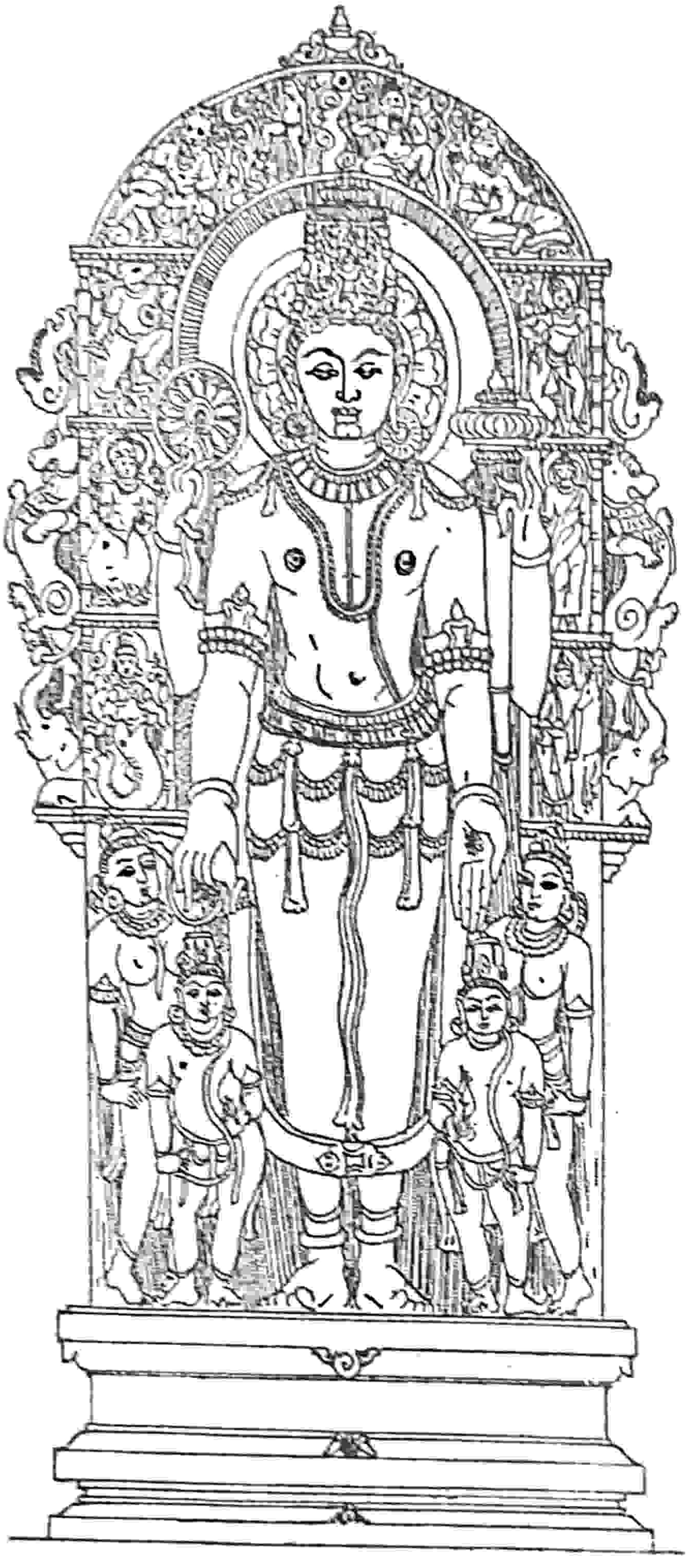
शेषा ये ऊर्ध्वभागास्तैः **कर्तव्यः** शिखरोदयः॥ 29॥

इदं मानं समुद्दिष्टं प्रोक्तं वै वास्तुवेदिभिः।

इसमें आठ भाग ऊँचाई वाला ज्येष्ठ मण्डोवर, साढ़े आठ वाला मध्यम और नौ भागों वाला कनिष्ठ मण्डोवर माना गया हे। शेष जो भाग बचें, उन पर शिखर की ऊँचाई करे। इस मान-प्रमाण को वास्तुविदों ने समुदिष्ट यानी ऊँचाई-सज्जा के प्रसङ्ग में कहा हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रासादस्योर्ध्वमाननिर्णयोधिकारो नामाष्टात्रिंशदुत्तरशततमं सूत्रम्॥ 138॥

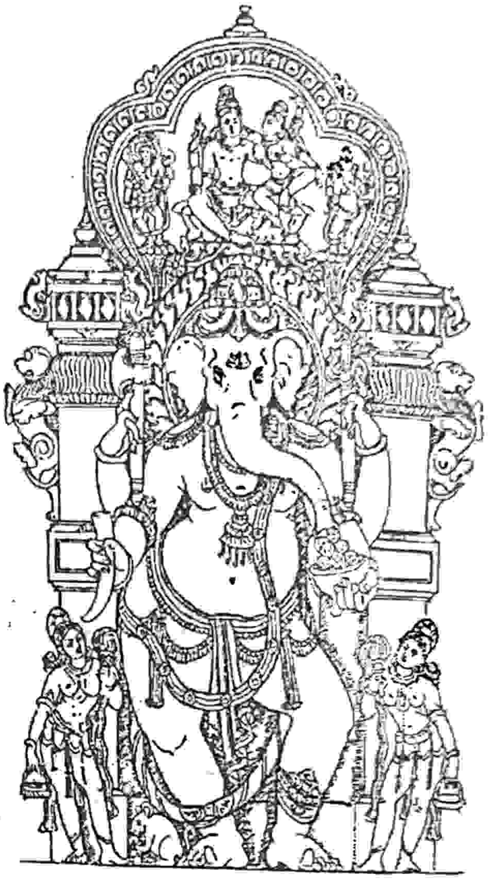
इस प्रकार भुवनदेवाचार्य **कृत** सूत्रसन्तानगुणकीर्ति **प्रकाश** या अपराजितपृच्छा **में प्रासाद** ऊर्ध्वमान निर्णय अधिकार नामक एक सौ अड़तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 138॥



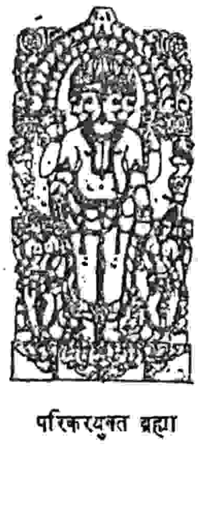
दशावतार-परिकरयुक्त विष्णु



रामपंचायन परिकरयुक्त मारुति



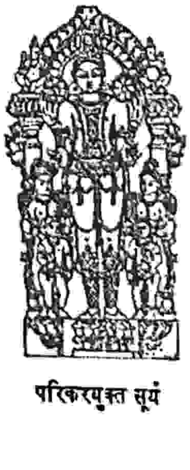
शीवपंचायन परिकरयुक्त विनायक



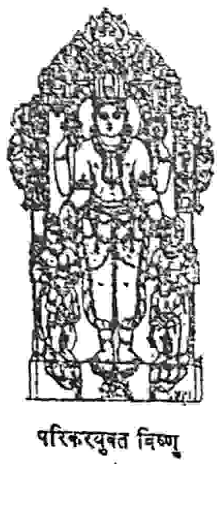
परिकरयुक्त ब्रह्मा



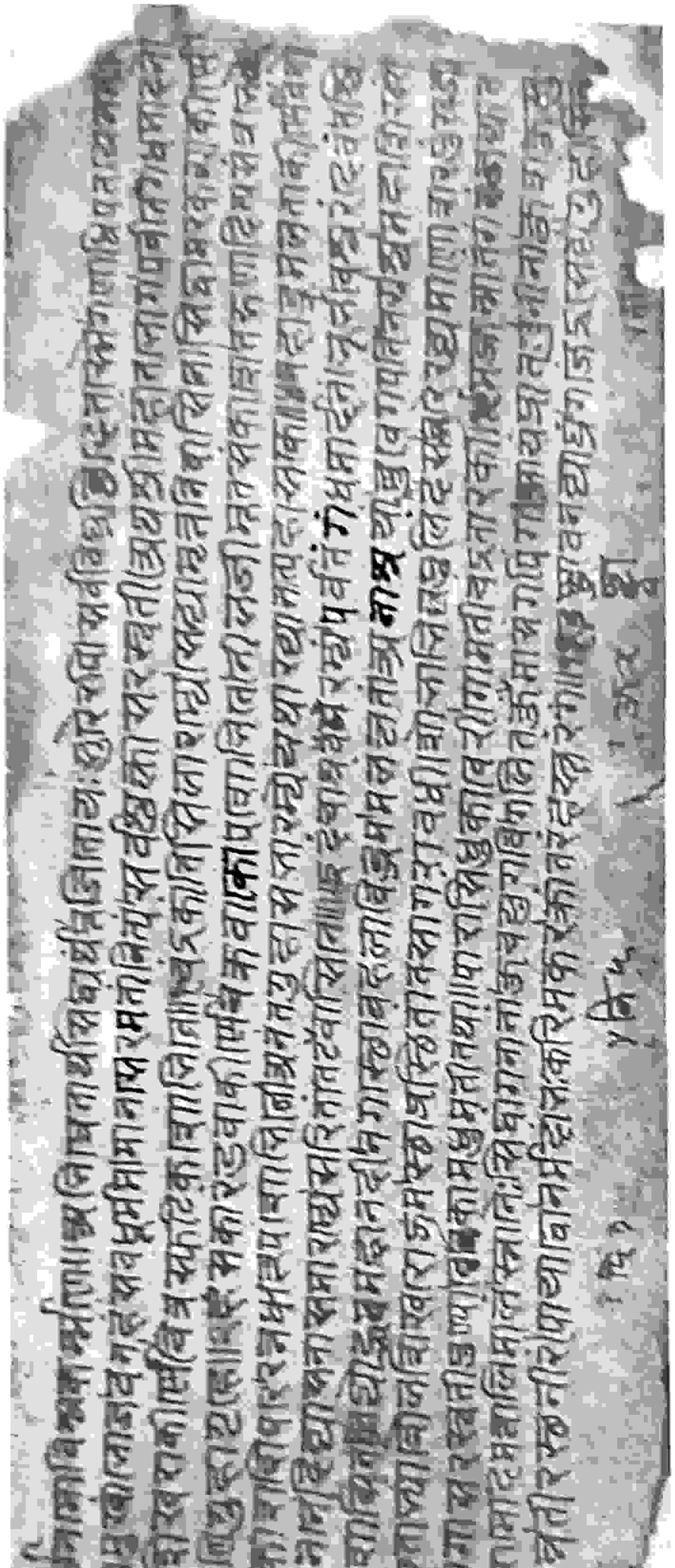
महिषासुरमर्दिनी



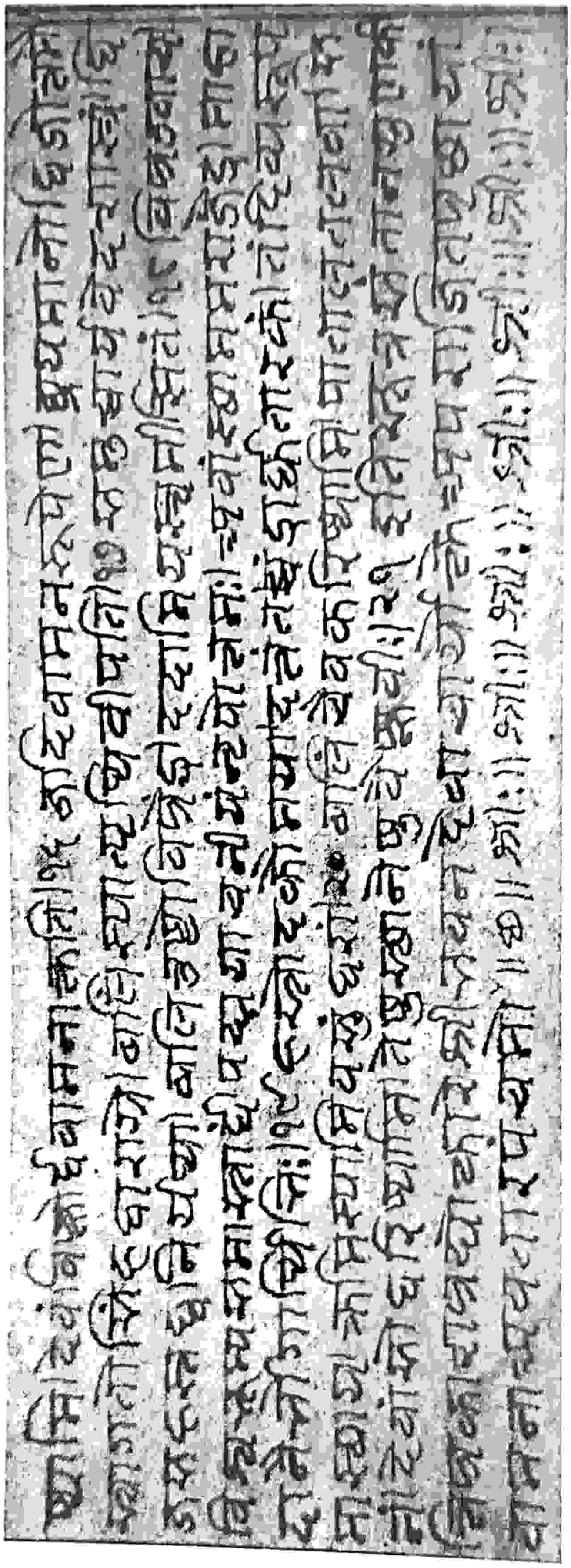
परिकरयुक्त सूर्य



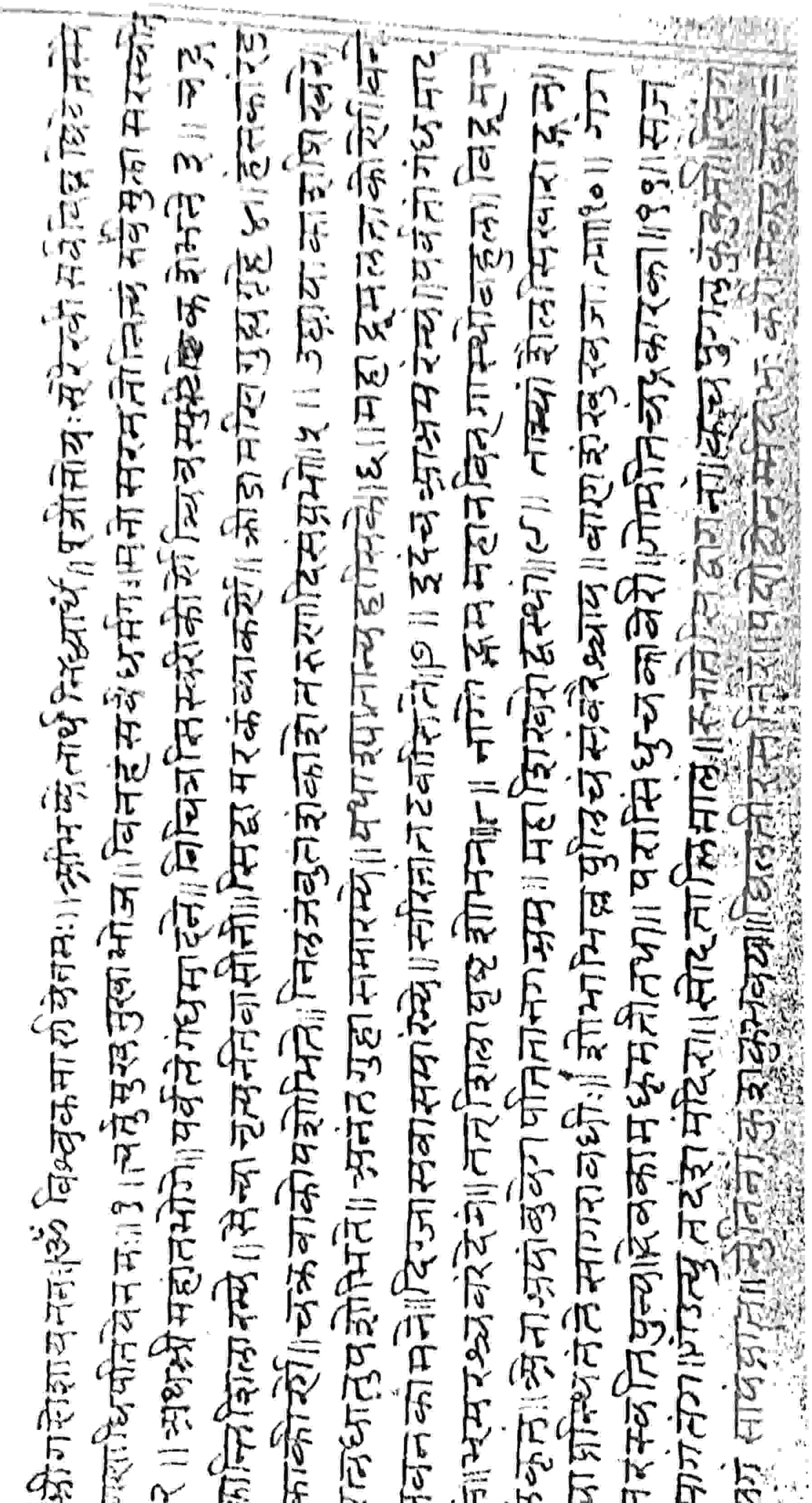
परिकरयुक्त विष्णु



बड़ौदा (गुजरात) स्थित ऑरियण्टल इंस्टिट्यूट में विद्यमान अपराजितपृच्छा की 'क' संज्ञक पांडुलिपि का प्रथम पृष्ठ



बड़ौदा के ऑरियण्टल इंस्टिट्यूट में विद्यमान अपराजितपृच्छा की एक पांडुलिपि में वामनावतार सूत्र का पुष्पिका सहित पृष्ठ



डूंगरपुर (राजस्थान) के शिल्पी श्री रघुनाथ सोमपुरा के संग्रह में विद्यमान अपराजितपृच्छा की पांडुलिपि का प्रथम पृष्ठ



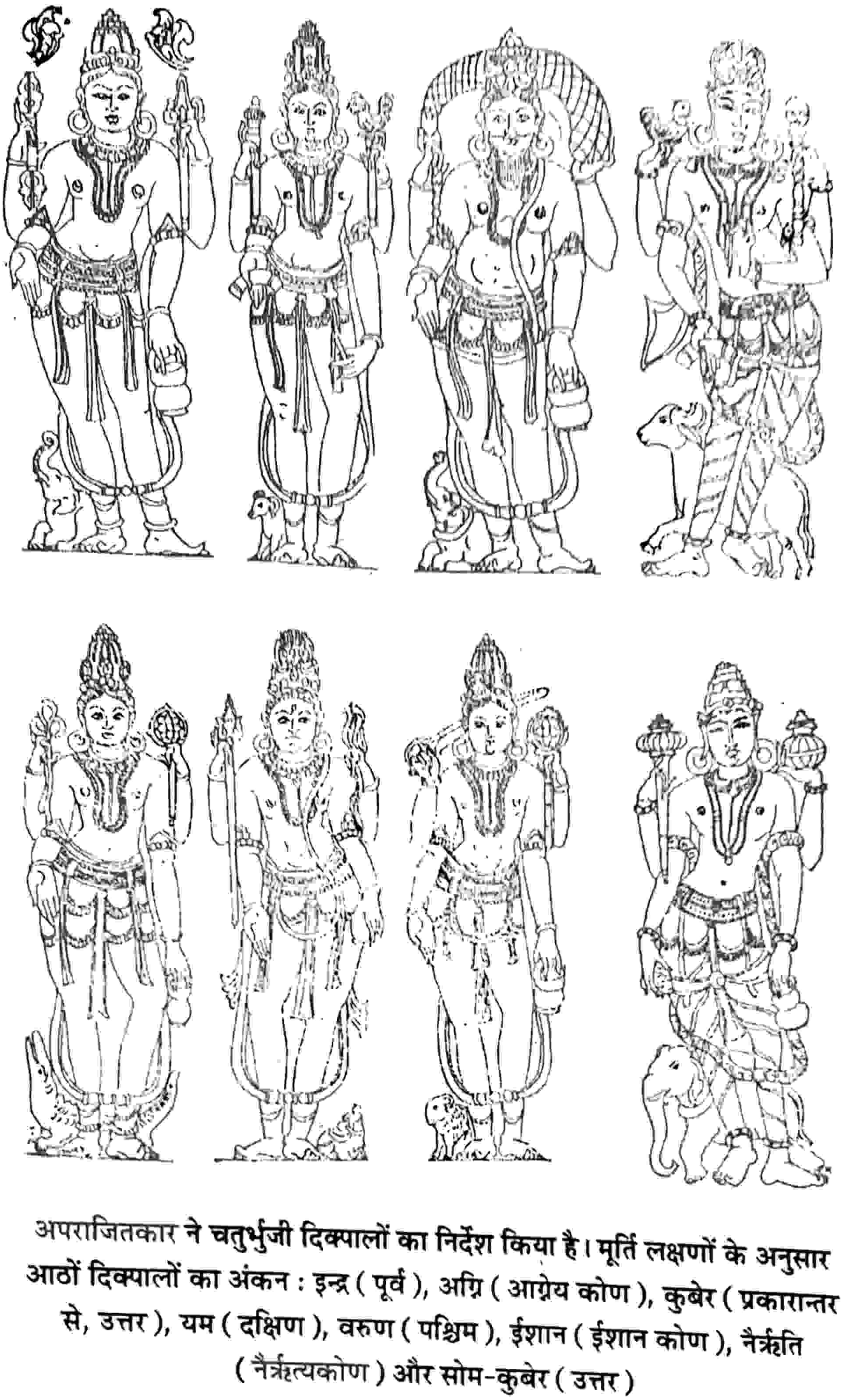
जोधपुर-राजस्थान स्थित प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में मौजूद अपराजितपृच्छा की खण्डित पांडुलिपि (संख्या 18078–12) का एक पृष्ठ जिसमें राजगृहलक्षण अधिकार आया है



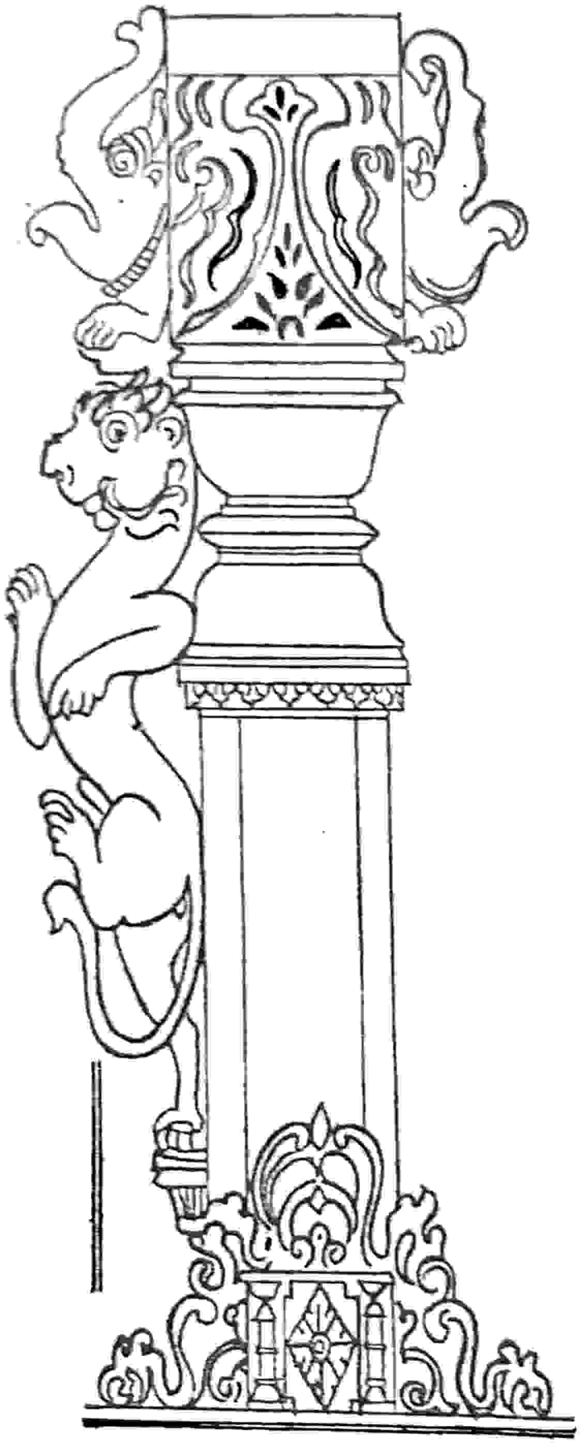
ग्रन्थोपदेष्टा भगवान् विश्वकर्मा अपने मानस पुत्रों जय,
विजय, सिद्धार्थ और अपराजित के साथ



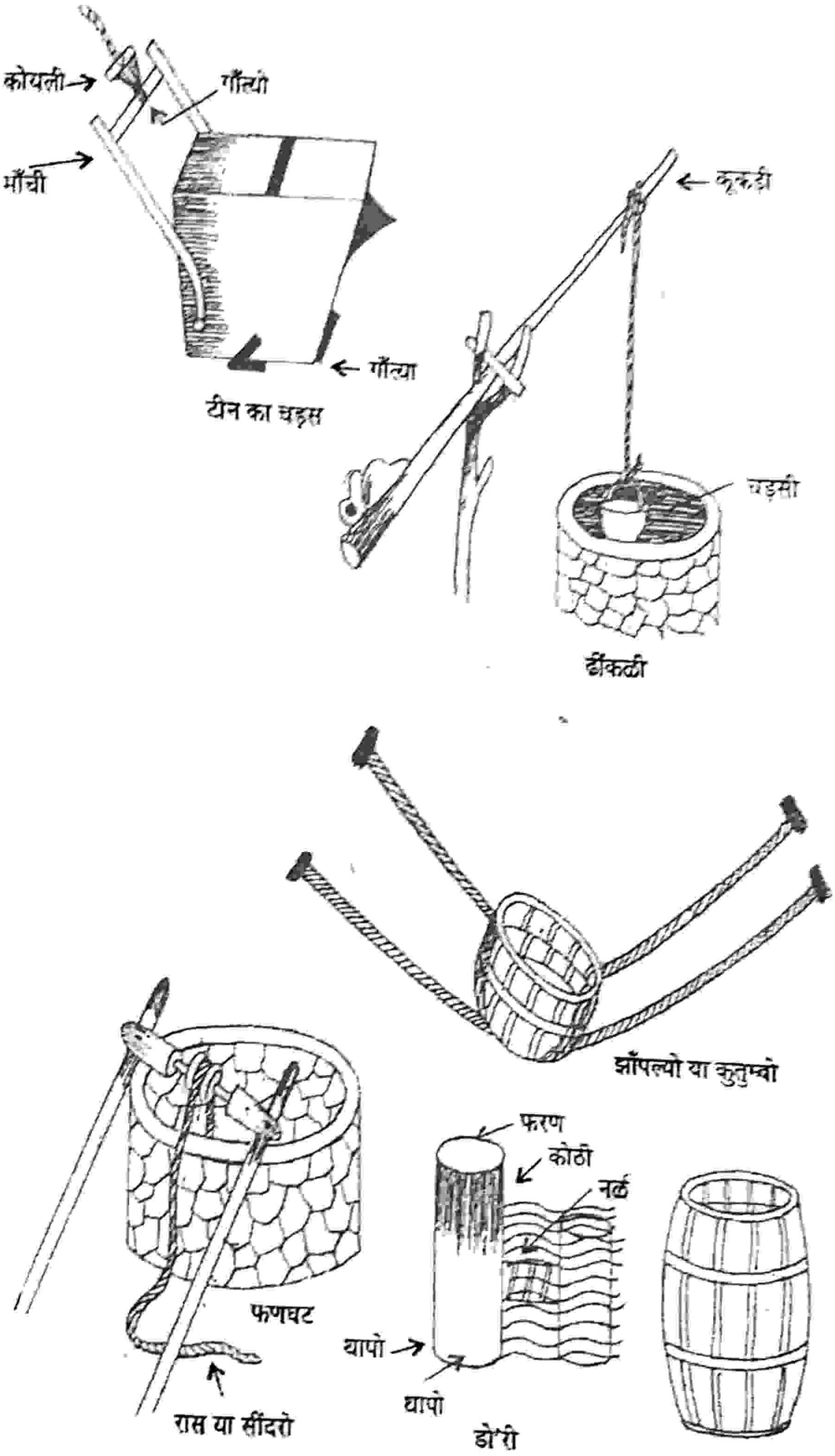
पृथ्वी गौ के स्वरूप में और महाराज पृथु-संवाद का परिकल्पित चित्र।
(अपराजितपृच्छा एवं वायु आदि पुराणों सहित समरांगण सूत्रधार में यह मिथक कथा



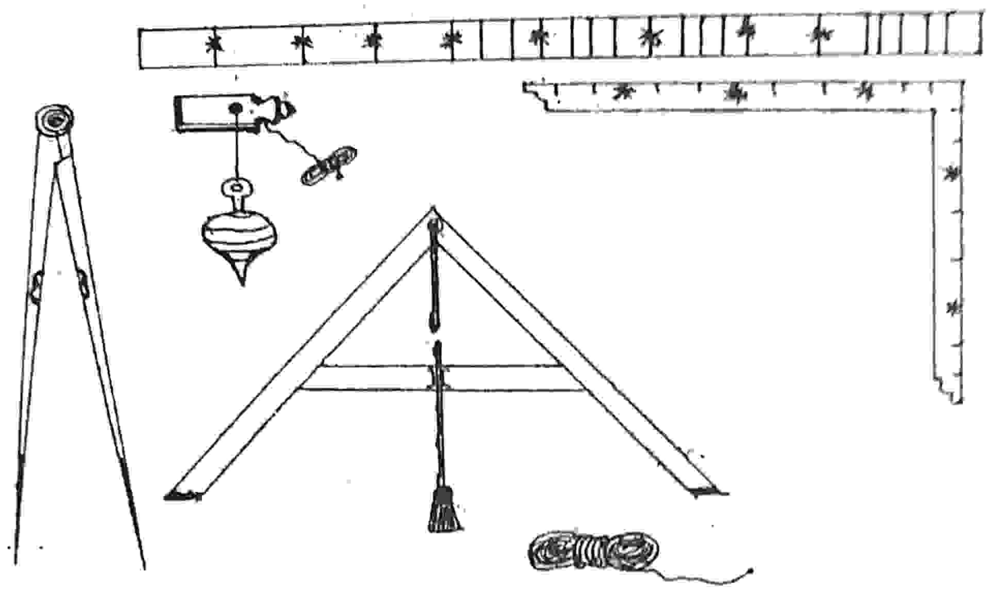
अपराजितकार ने चतुर्भुजी दिक्पालों का निर्देश किया है। मूर्ति लक्षणों के अनुसार आठों दिक्पालों का अंकन : इन्द्र (पूर्व), अग्नि (आग्नेय कोण), कुबेर (प्रकारान्तर से, उत्तर), यम (दक्षिण), वरुण (पश्चिम), ईशान (ईशान कोण), नैर्ऋति (नैर्ऋत्यकोण) और सोम-कुबेर (उत्तर)



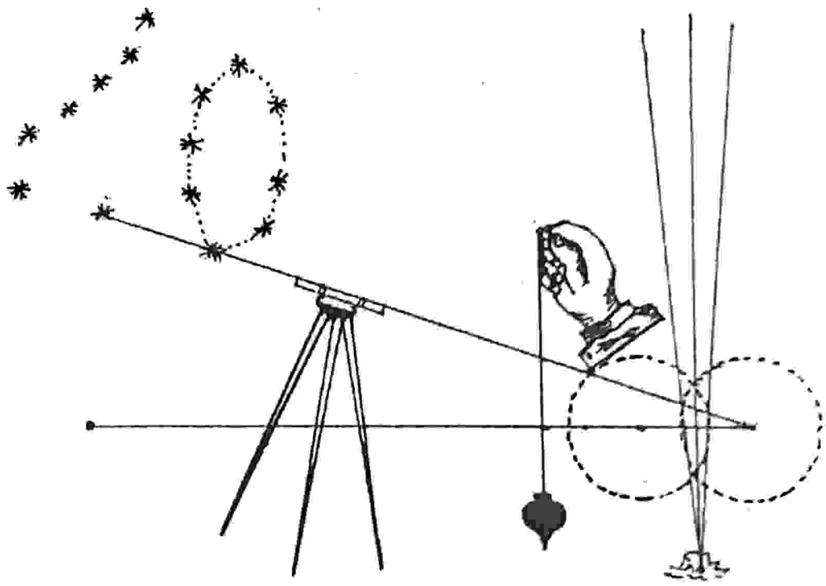
विरालिका



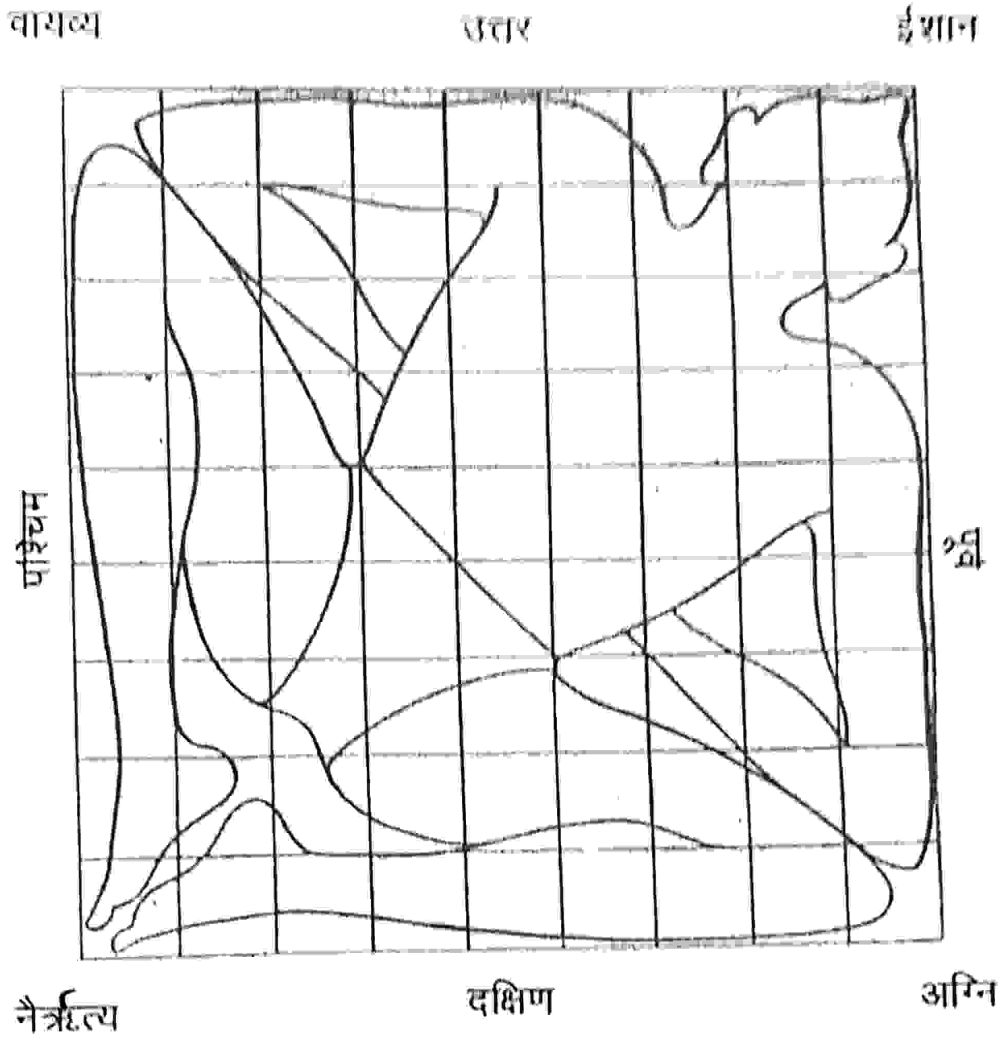
सिंचाई के लिए उपयोगी पारंपरिक साधन



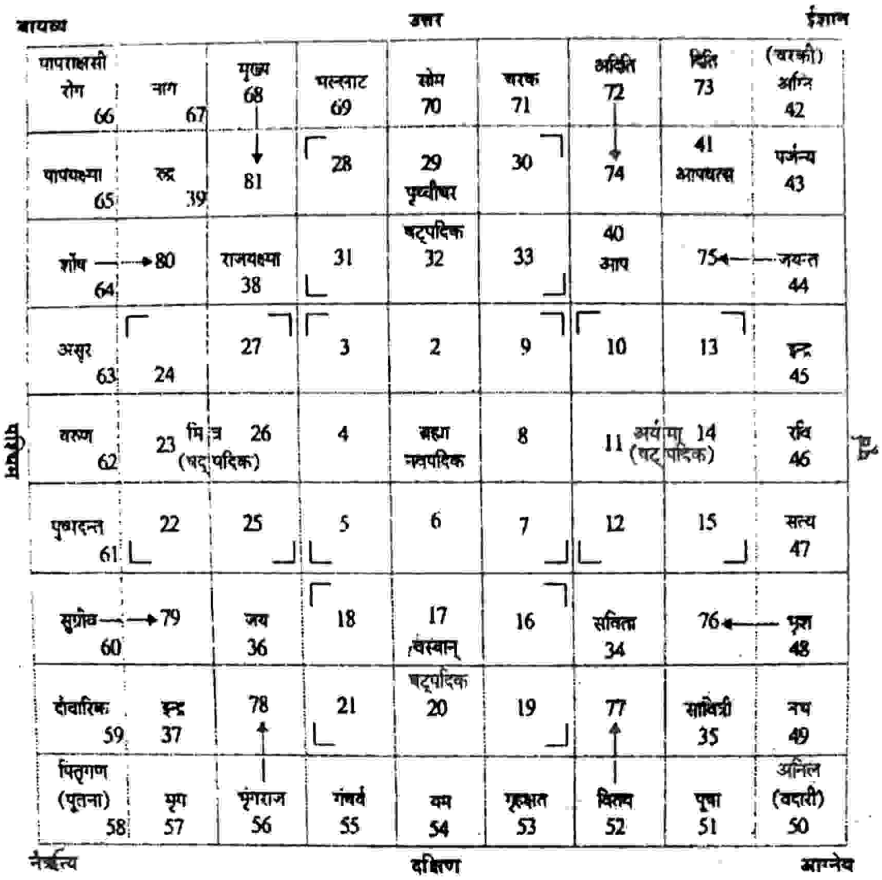
शिल्पियों और सूत्रधारों के विविध औजार : परकाल, गज, गुणिया, काठखुणा, लेवल-सांधणी, डोर आदि



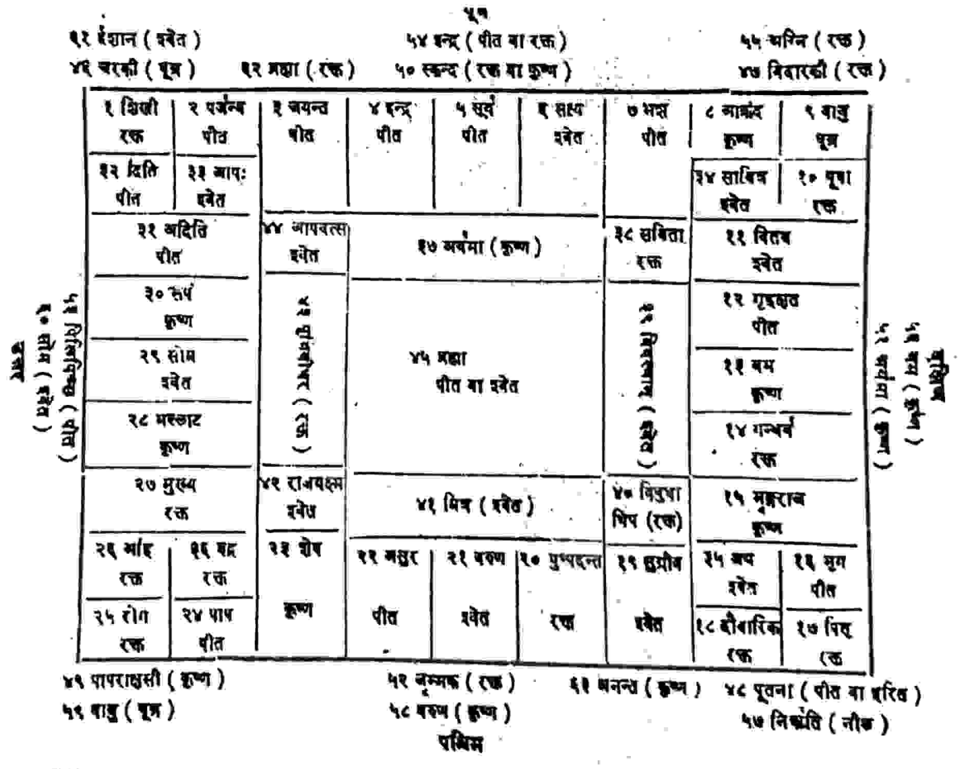
रात्रि में दिशा शोधन की प्राचीन मार्कटिक तारा और ध्रुवादि सम्मत विधि। यह विधि कुतुबनुमा के चलन के बाद लुप्त हो गई किंतु रात्रि में काफिलों पर चलने वाले आज भी ताराओं, कृतिका के आधार पर ही दिशा और समय का ज्ञान कर लेते हैं।



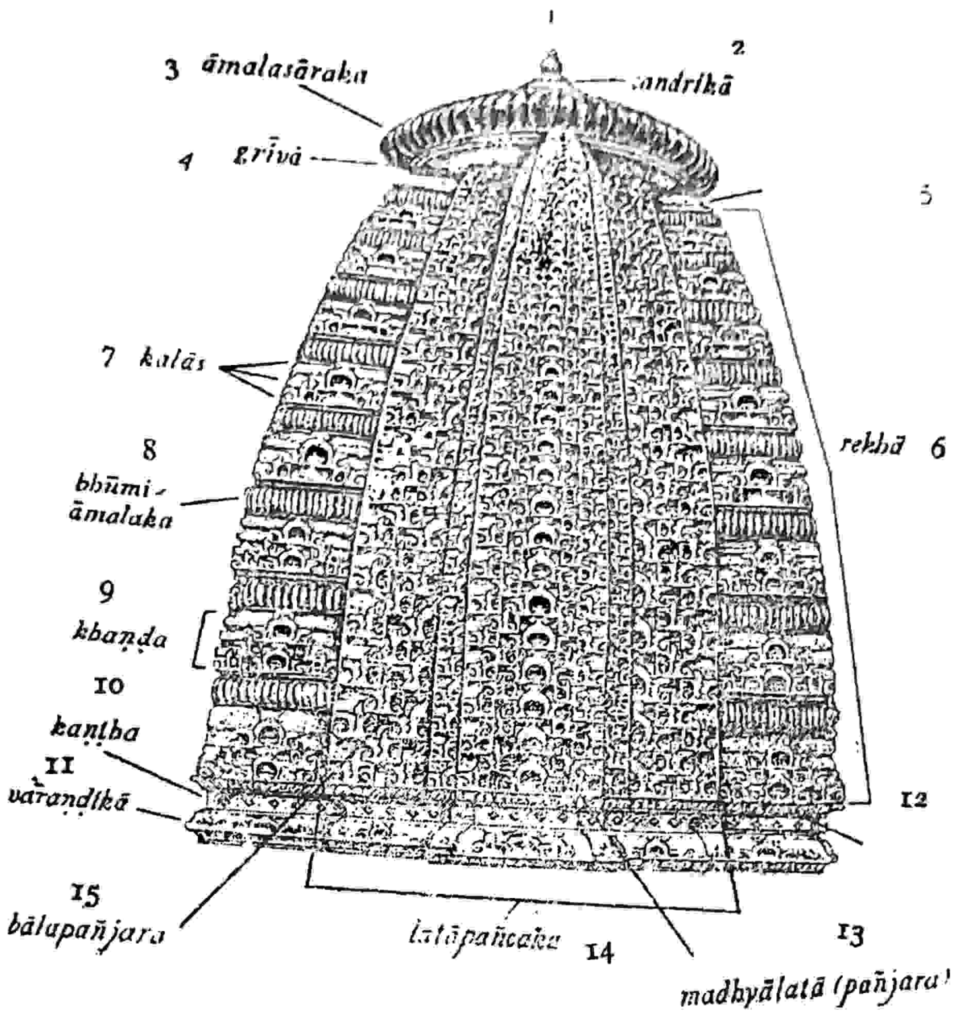
भूमि पर वास्तुपुरुष की शयित स्थिति। विदिशानुसार सिर, कोहनी, घुटना और चरणतलियों की स्थिति रहती है।



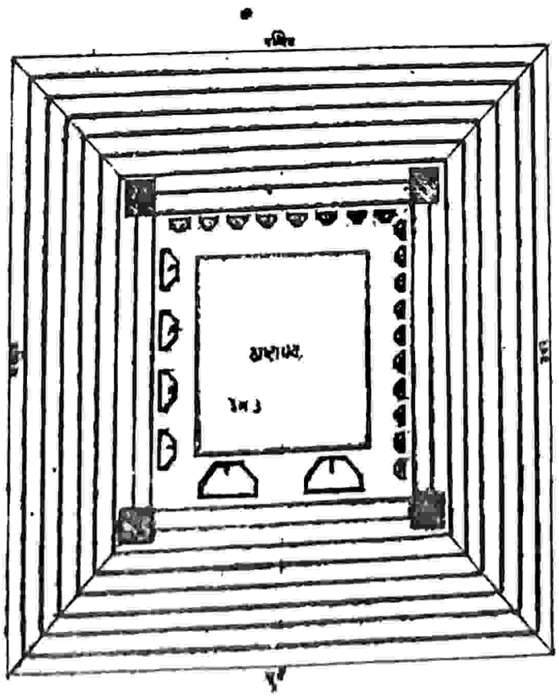
परमशायिक वास्तुपद विन्यास। (81 पदानुसार)



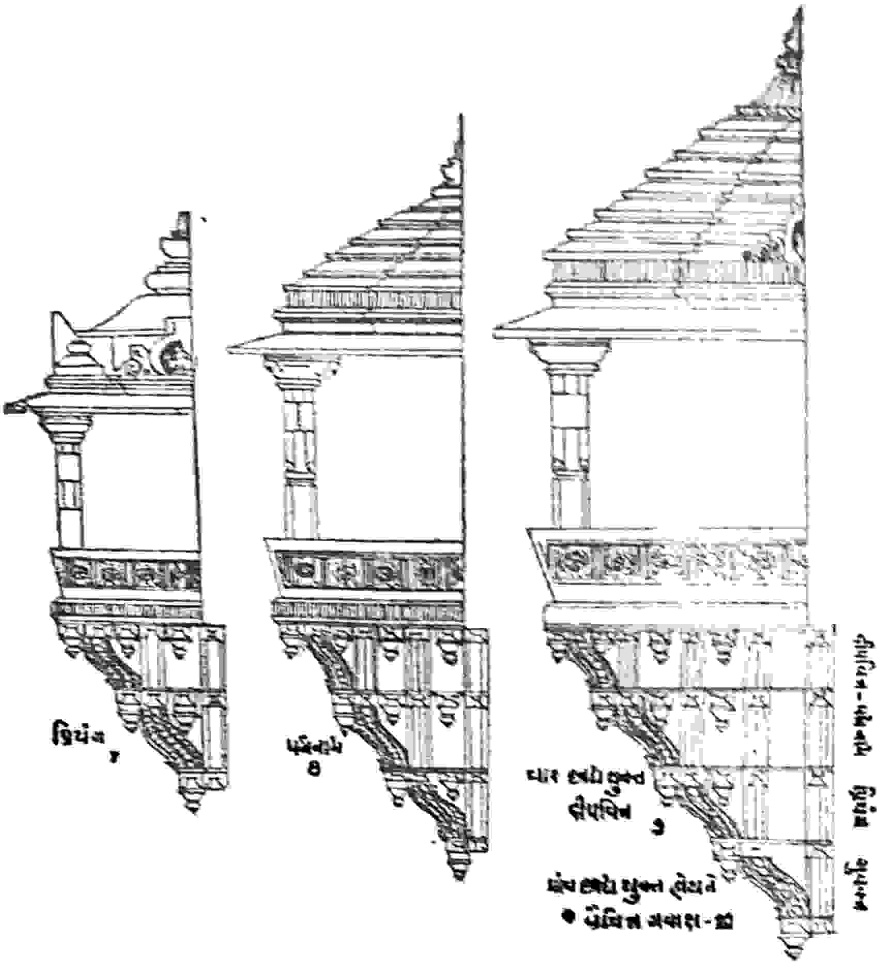
एकाशीतिपद(81 पद) सम्मत वृत्त वास्तु में देवताओं का न्यास क्रम। गोलाकार दीर्घ रचना, नाट्य प्रेक्षागृह, बुर्ज और अन्य वृत्तीय निर्मितियों के लिए यह योजना ज्ञेय है



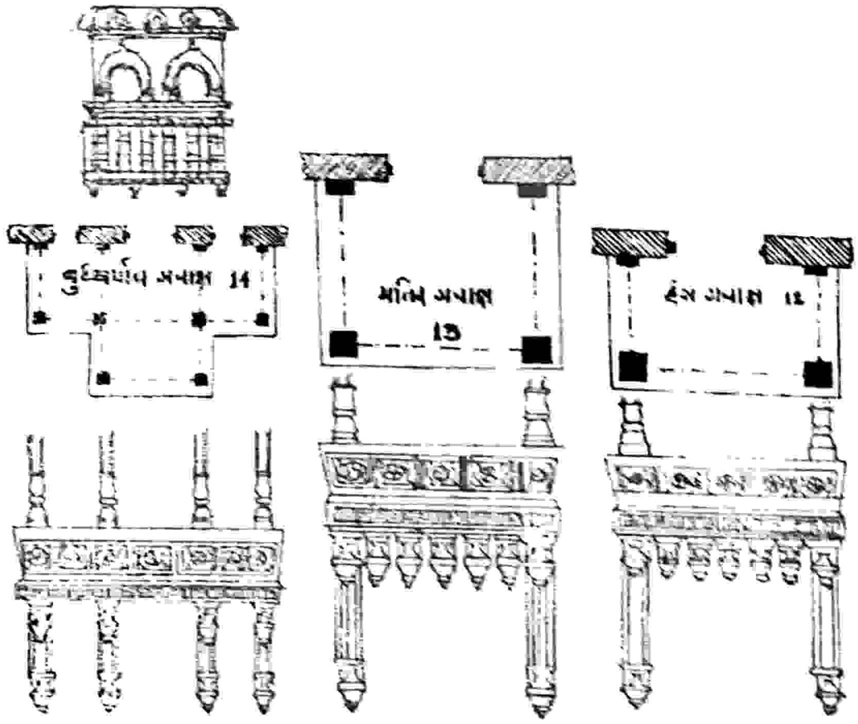
एक लतिन प्रासाद का शिखर



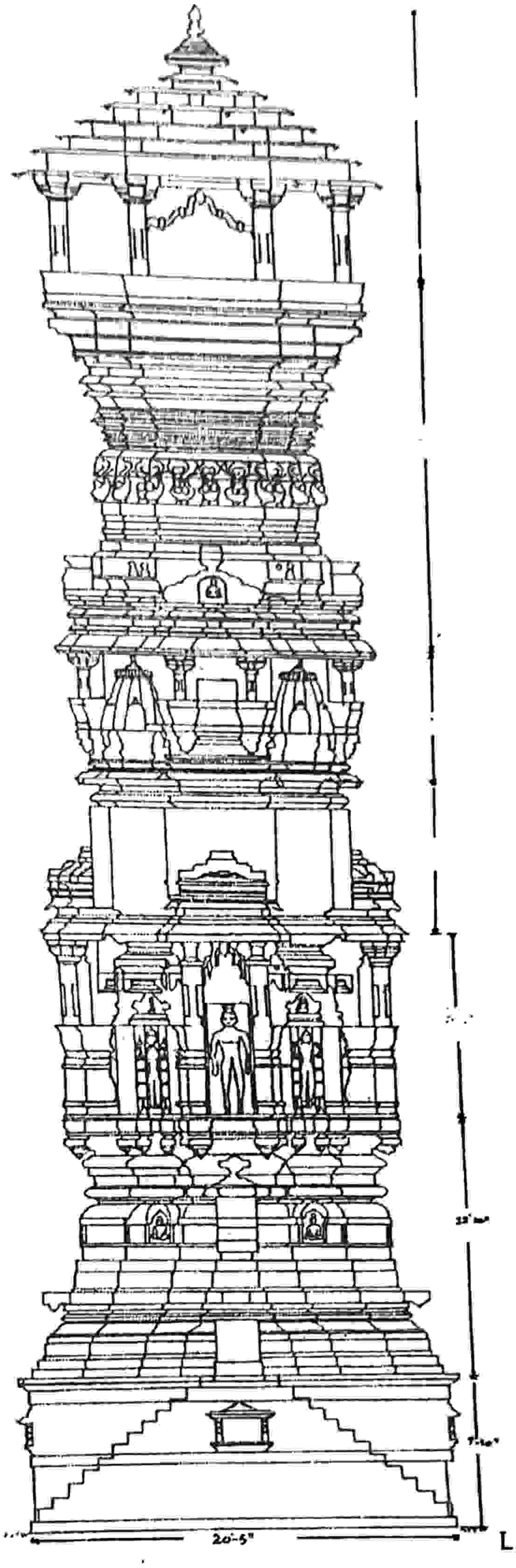
अष्टापद तलदर्शन



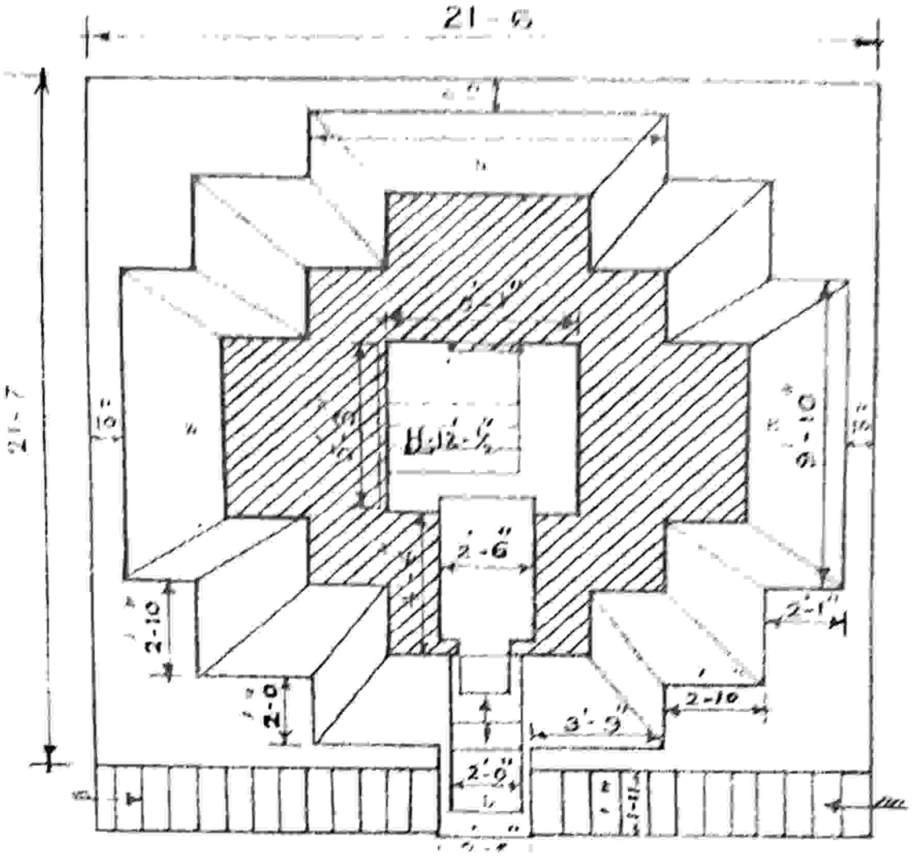
प्रियंगादि गवाक्ष जिनका निर्माण छाद्यानुक्रम से होता है



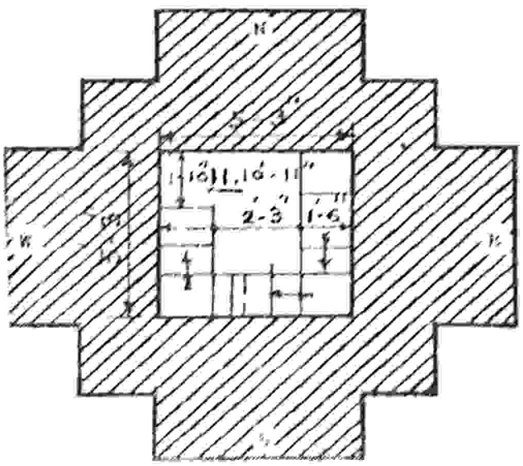
मतिदादि गवाक्ष और उनका तलीय विन्यास



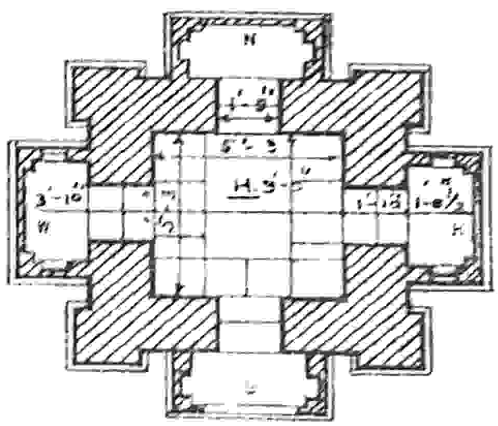
राजप्रासादों और दुर्गों की दर्शनीयता के प्रयोजन से कीर्तिस्तम्भ-जय स्तम्भ आदि का निर्माण होता रहा है। चित्तौड़गढ़ के जैन कीर्तिस्तम्भ के एक छोर का दर्शन।



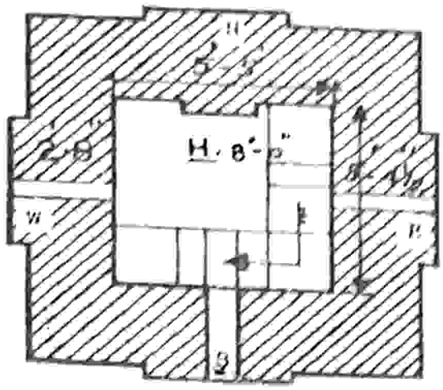
कीर्तिस्तम्भ की प्रथम तल योजना



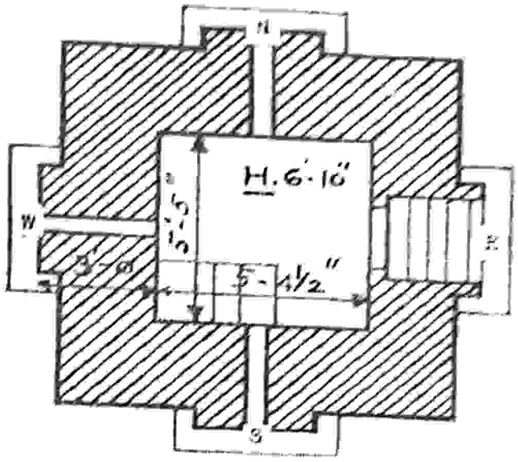
कीर्तिस्तम्भ की द्वितीय तल योजना



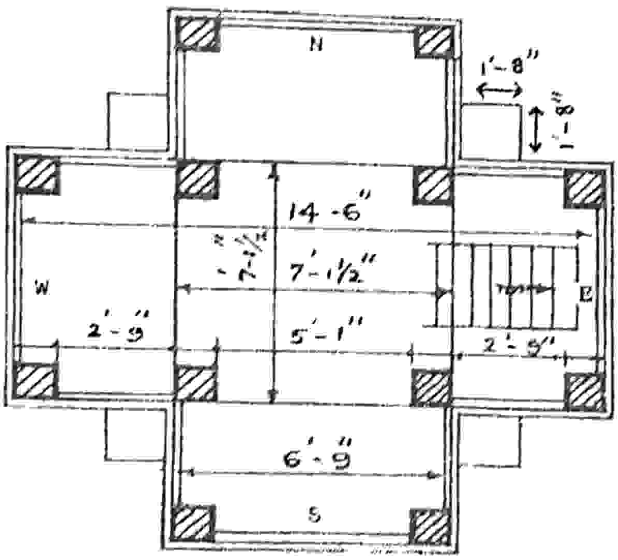
कीर्तिस्तम्भ की तृतीय तल योजना



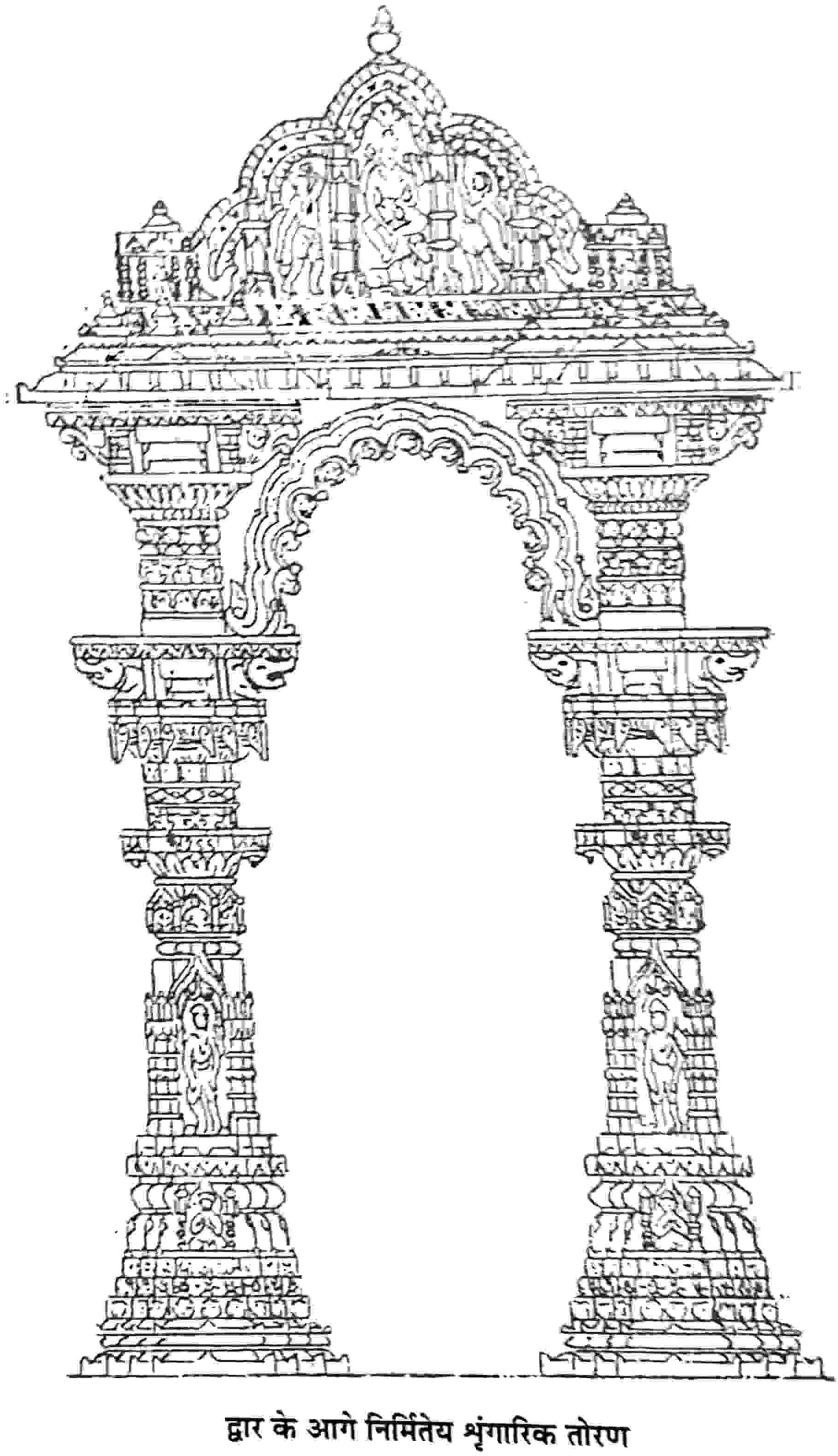
कीर्तिस्तम्भ की चतुर्थ तल योजना



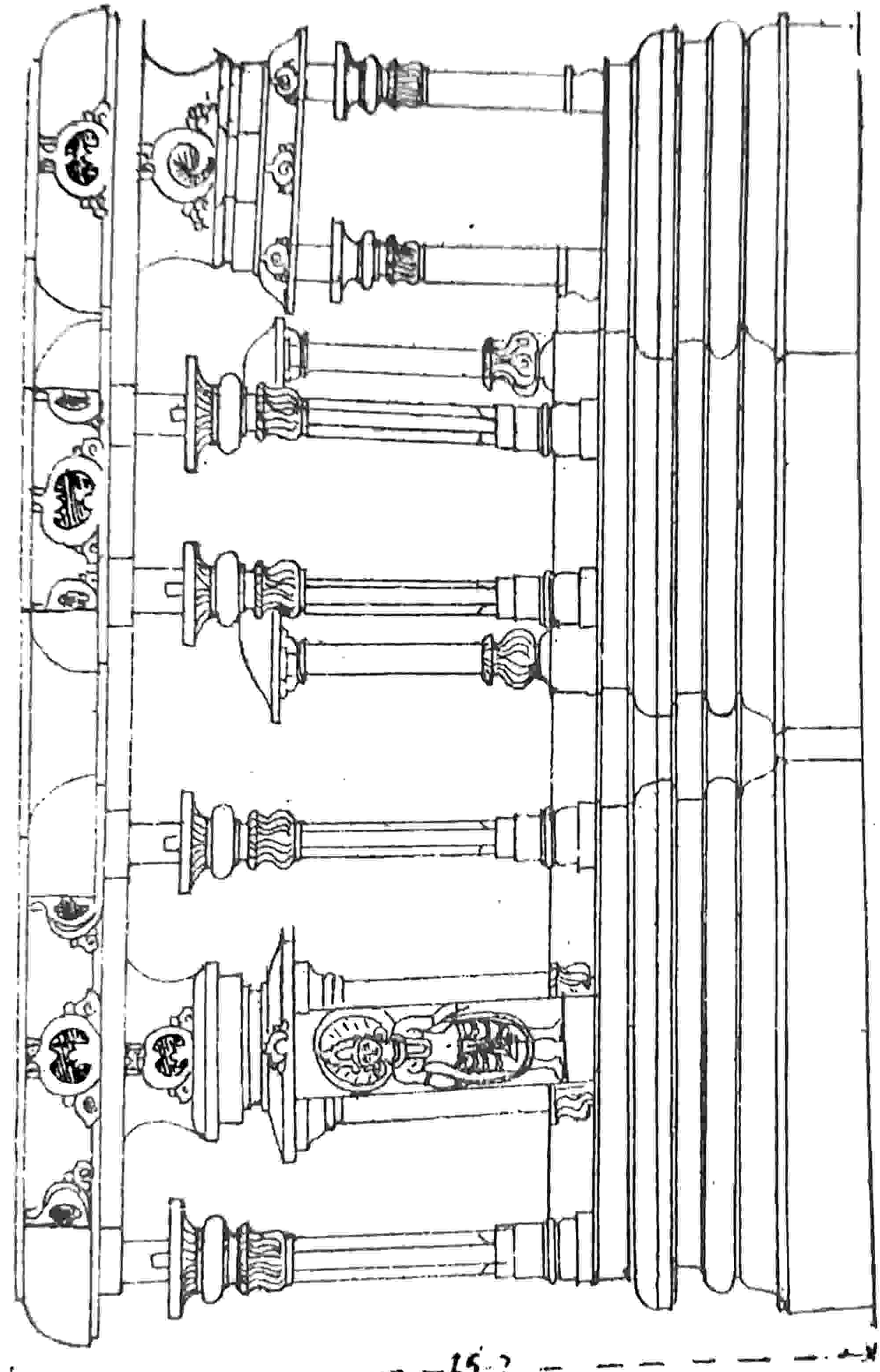
कीर्तिस्तम्भ की पंचम तल योजना



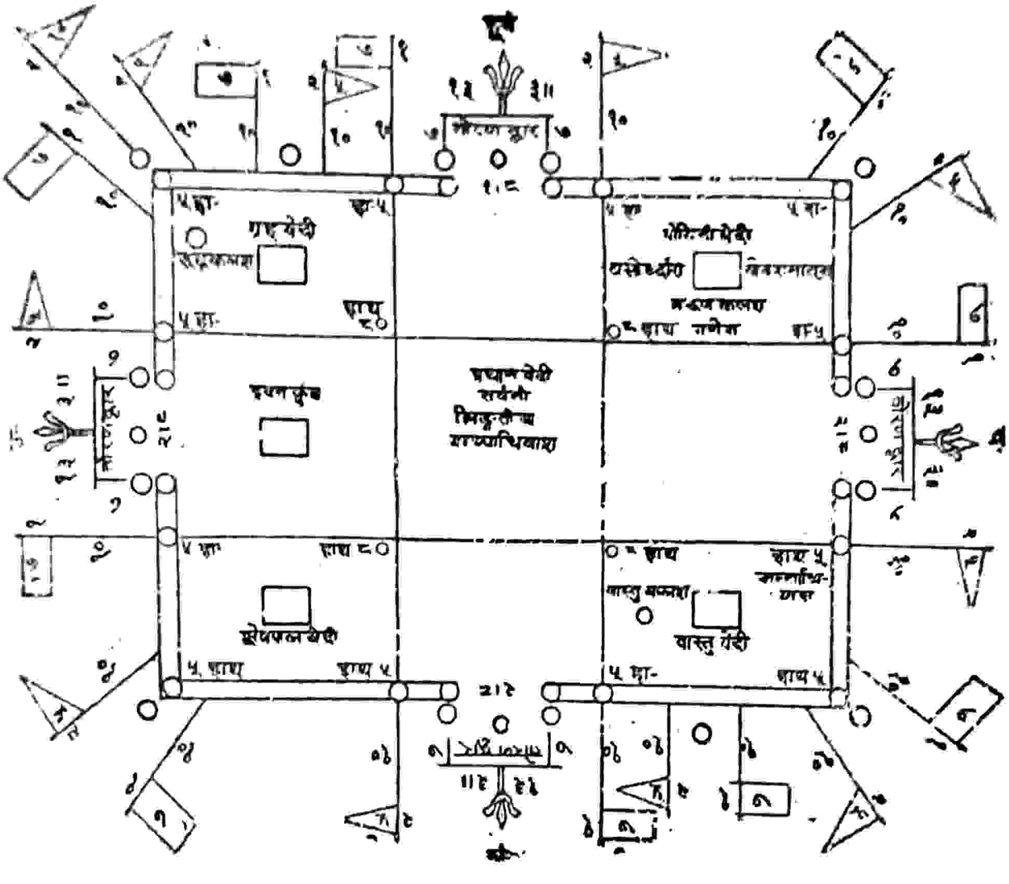
कीर्तिस्तम्भ की षष्ठ तल योजना



द्वार के आगे निर्मितेय श्रृंगारिक तोरण



आंध्रप्रदेश के मंडोवर कुलपाक, हैदराबाद



जलाशयादि की प्रतिष्ठा के लिए कुण्ड-मण्डप विधान के लिए
ध्वजादण्ड का वर्ण और स्वरूप।